श्रीवनके समीप यज्ञ करनेवाले ब्राह्मणोंकी पत्नियोंका ग्वालबालोंसहित श्रीकृष्णको भोजन देना तथा उनकी कृपासे गोलोकधामको जाना, श्रीकृष्णकी मायासे निर्मित उनकी छायामयी स्त्रियोंका ब्राह्मणोंके घरोंमें जाना तथा विप्रपत्नियोंके पूर्वजन्मका परिचय

नारदजी बोले—मुनिश्रेष्ठ! ज्ञानसिन्धो! मैं आपका शरणागत शिष्य हूँ। आप मुझे श्रीकृष्ण-लीलामृतका पान कराइये।

भगवान् श्रीनारायणने कहा—एक दिन बलरामसहित श्रीकृष्ण ग्वालबालोंको साथ ले श्रीमधुवनमें गये, जहाँ यमुनाके किनारे कमल खिले हुए थे। उस समय सब बालक सहस्रों गौओंके साथ वहाँ विचरने और खेलने लगे। खेलते-खेलते वे थक गये और उन्हें भूख-प्यास सताने लगी। तब सब गोपशिशु बड़ी प्रसन्नताके साथ श्रीकृष्णके पास आये और बोले—'कन्हैया! हमें बड़ी भूख लगी है। हम सेवकोंको आज्ञा दो, क्या करें?' ग्वालबालोंकी बात सुनकर प्रसन्नमुख और नेत्रवाले दयानिधान श्रीहरिने उनसे यह हितकर तथा सच्ची बात कही।

श्रीकृष्ण बोले—बालको! जहाँ ब्राह्मणोंका सुखदायक यज्ञस्थान है, वहाँ जाओ। जाकर उन यज्ञतत्पर ब्राह्मणोंसे शीघ्र ही भोजनके लिये अन्न माँगो। वे सभी आङ्गिरस गोत्रवाले ब्राह्मण हैं और श्रीवनके निकट अपने आश्रममें यज्ञ करते हैं। उन्होंने श्रुतियों और स्मृतियोंका विशेष ज्ञान प्राप्त किया है। वे सब निःस्पृह वैष्णव हैं और मोक्षकी कामनासे मेरा ही यजन कर रहे हैं। परंतु मायासे आच्छादित होनेके कारण उन्हें इस बातका पता नहीं है कि योगमायासे मनुष्यरूप धारण करके प्रकट हुआ मैं ही उनका आराध्य देव हूँ। केवल यज्ञकी ओर ही उन्मुख रहनेवाले वे ब्राह्मण यदि तुम्हें अन्न न दें तो शीघ्र ही जाकर उनकी पत्नियोंसे माँगना; क्योंकि वे बालकोंके प्रति दयासे भरी हुई हैं।

श्रीकृष्णकी बात सुनकर वे श्रेष्ठ गोपबालक ब्राह्मणोंके सामने जा मस्तक झुकाकर खड़े हो गये और बोले—'विप्रवरो! हमें शीघ्र भोजन दीजिये।' परंतु उनमेंसे कुछ द्विजोंने तो उनकी बात सुनी ही नहीं और कुछ लोग सुनकर भी ज्यों-के-त्यों खड़े रह गये। तब वे पाकशालामें गये, जहाँ ब्राह्मणियाँ भोजन बना रही थीं। उन बालकोंने ब्राह्मणपत्नियोंको सिर झुकाकर प्रणाम किया। प्रणाम करके वे सब बालक उन पतिव्रता ब्राह्मणियोंसे बोले—'माताओ! हम सब बालक भूखसे पीडित हैं। हमें भोजन दो।'

उन बालकोंकी बात सुनकर और उनकी मनोहर आकृति देखकर उन सती-साध्वी ब्राह्मणियोंने मुस्कराते हुए मुखारविन्दसे आदरपूर्वक पूछा।

ब्राह्मणपत्नियाँ बोलीं—समझदार बालको! तुम लोग कौन हो? किसने तुम्हें भेजा है? और तुम्हारे नाम क्या हैं? हम तुम्हें व्यञ्जनसहित नाना प्रकारका श्रेष्ठ भोजन प्रदान करेंगी।

ब्राह्मणियोंकी बात सुनकर वे सभी स्निग्ध एवं हृष्ट-पुष्ट गोपबालक प्रसन्नतापूर्वक हँसते हुए बोले।

बालकोंने कहा—माताओ! हमें बलराम और श्रीकृष्णने भेजा है। हमलोग भूखसे बहुत पीड़ित हैं। हमें भोजन दो। हम शीघ्र ही उनके पास लौट जायँगे। यहाँसे थोड़ी दूरपर वनके भीतर भाण्डीर-वटके निकट मधुवनमें बलराम और केशव बैठे हैं। वे दोनों भाई भी थके-माँदे और भूखे हैं तथा भोजन माँग रहे हैं।

माताओ! आपको अन्न देना है या नहीं देना है, यह शीघ्र हमें इसी समय बता दो।

गोपोंकी बात सुनकर ब्राह्मणियाँ हर्षसे खिल उठीं। उनके नेत्रोंमें आनन्दके आँसू छलक आये। सारे अङ्ग पुलकित हो उठे। उनके मनमें बड़ी इच्छा थी कि हमें श्रीकृष्ण-चरणोंके दर्शन हों। उन्होंने सोने, चाँदी और फूलकी थालियोंमें प्रसन्नतापूर्वक भाँति-भाँतिके व्यञ्जनोंसे युक्त अत्यन्त मनोहर अगहनीके चावलका भात, खीर, स्वादिष्ट पीठा, दही, दूध, घी और मधु रखकर श्रीकृष्णके निकट प्रस्थान किया। वे मन-ही-मन नाना प्रकारके मनोरथ लेकर जानेको उत्सुक हुईं। ब्राह्मणपत्नियाँ धन्य और पतिव्रतपरायणा थीं। इसीलिये उनके मनमें श्रीकृष्णदर्शनकी उत्कण्ठा जाग उठी। उन्होंने वहाँ पहुँचकर बालकोंसहित श्रीकृष्ण और बलरामके दर्शन किये। श्रीकृष्ण वटके मूलभागके निकट बालकोंके बीचमें बैठे थे; अतः तारोंके बीच विराजमान चन्द्रमाके समान शोभा पा रहे थे। श्याम अङ्ग, किशोर अवस्था और शरीरपर रेशमी पीताम्बरसे वे बड़े सुन्दर लगते थे। मुखपर मन्द मुस्कान खेल रही थी। शान्तस्वरूप राधाकान्त बड़े मनोहर प्रतीत होते थे। उनका मुख शरत्कालकी पूर्णिमाके चन्द्रमाको लज्जित कर रहा था। वे रत्नमय अलंकारोंसे विभूषित थे तथा रत्ननिर्मित दो कुण्डलोंसे उनके गण्डस्थलकी बड़ी शोभा हो रही थी। हाथोंमें रत्नमय केयूर और कङ्कन तथा पैरोंमें रत्ननिर्मित नूपुर उनके आभूषण थे। उन्होंने गलेमें आजानुलम्बिनी शुभ्र रत्नमाला धारण कर रखी थीं। मालतीकी मालासे उनके कण्ठ और वक्षःस्थल दोनों सुशोभित थे। चन्दन, अगुरु, कस्तूरी और कुंकुमसे उनके श्रीअङ्ग चर्चित थे। नखों और कपोलोंका सौन्दर्य देखने ही योग्य था। सुन्दर लाल रंगके ओठ पके बिम्बफलको लज्जित कर रहे थे। वे परिपक्व अनारके दानोंकी भाँति सुन्दर दन्तपङ्क्ति धारण किये थे। सिरपर मोरपंखका मुकुट शोभा दे रहा था। कानोंके मूलभागमें दो कदम्बके फूल उनकी शोभा बढ़ा रहे थे। वे परात्पर परमात्मा योगियोंके भी ध्यानमें नहीं आनेवाले हैं। तथापि भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये व्याकुल रहते हैं। ब्रह्मा, शिव, धर्म, शेषनाग तथा बड़े-बड़े मुनीश्वर उनकी स्तुति करते हैं। ऐसे परमेश्वरके दर्शन करके ब्राह्मणपत्नियोंने भक्तिभावसे उन्हें प्रणाम किया और अपने ज्ञानके अनुरूप उन मधुसूदनकी स्तुति की।

विप्रपत्नियाँ बोलीं—भगवन्! आप स्वयं ही परब्रह्म, परमधाम, निरीह, अहङ्काररहित, निर्गुण-निराकार तथा सगुण-साकार हैं। आप ही सबके साक्षी, निर्लेप एवं आकाररहित परमात्मा हैं। आप ही प्रकृति-पुरुष तथा उन दोनोंके परम कारण हैं। सृष्टि, पालन और संहारके विषयमें नियुक्त जो ब्रह्मा, विष्णु और शिव—ये तीन देवता कहे गये हैं, वे भी आपके ही सर्वबीजमय अंश हैं। परमेश्वर! जिनके रोमकूपमें सम्पूर्ण विश्व निवास करता है, वे महाविराट् महाविष्णु हैं और प्रभो! आप उनके जनक हैं। आप ही तेज और

तेजस्वी हैं, ज्ञान और ज्ञानी हैं तथा इन सबसे परे हैं। वेदमें आपको अनिर्वचनीय कहा गया है; फिर कौन आपकी स्तुति करनेमें समर्थ है? सृष्टिके सूत्रभूत जो महत्तत्त्व आदि एवं पञ्च-तन्मात्राएँ हैं, वे भी आपसे भिन्न नहीं हैं। आप सम्पूर्ण शक्तियोंके बीज तथा सर्वशक्तिस्वरूप हैं। समस्त शक्तियोंके ईश्वर हैं, सर्वरूप हैं तथा सब शक्तियोंके आश्रय हैं। आप निरीह, स्वयंप्रकाश, सर्वानन्दमय तथा सनातन हैं। अहो! आकारहीन होते हुए भी आप सम्पूर्ण आकारोंसे युक्त हैं—सब आकार आपके ही हैं। आप सम्पूर्ण इन्द्रियोंके विषयोंको जानते हैं तो भी इन्द्रियवान् नहीं हैं। जिनकी स्तुति करने तथा जिनके तत्त्वका निरूपण करनेमें सरस्वती जडवत् हो जाती हैं; महेश्वर, शेषनाग, धर्म और स्वयं विधाता भी जडतुल्य हो जाते हैं; पार्वती, लक्ष्मी, राधा एवं वेदजननी सावित्री भी जडताको प्राप्त हो जाती हैं; फिर दूसरे कौन विद्वान् आपकी स्तुति कर सकते हैं? प्राणेश्वरेश्वर! हम स्त्रियाँ आपकी क्या स्तुति कर सकती हैं? देव! हमपर प्रसन्न होइये। दीनबन्धो! कृपा कीजिये।

यों कह सब ब्राह्मणपत्नियाँ उनके चरणारविन्दोंमें पड़ गयीं। तब श्रीकृष्णने प्रसन्नमुख एवं नेत्रोंसे उन सबको अभयदान दिया।

जो पूजाकालमें विप्रपत्नियोंद्वारा किये गये इस स्तोत्रका पाठ करता है, वह ब्राह्मणपत्नियोंको मिली हुई गतिको प्राप्त कर लेता है; इसमें संशय नहीं है।

भगवान् श्रीनारायण कहते हैं—नारद! उन ब्राह्मणपत्नियोंको अपने चरणारविन्दोंमें पड़ी देख श्रीमधुसूदनने कहा—'देवियो! वर माँगो। तुम्हारा कल्याण होगा।' श्रीकृष्णकी यह बात सुनकर विप्रपत्नियोंको बड़ी प्रसन्नता हुई, श्रद्धासे उनका मस्तक झुक गया और वे भक्तिभावसे इस प्रकार बोलीं।

द्विजपत्नियोंने कहा—श्रीकृष्ण! हम आपसे वर नहीं लेंगी। हमारी अभिलाषा यह है कि आपके चरणकमलोंकी सेवा प्राप्त हो; अतः आप हमें अपना दास्यभाव तथा परम दुर्लभ सुदृढ़ भक्ति प्रदान करें। केशव! हम प्रतिक्षण आपके मुखारविन्दको देखती रहें, यही कृपा कीजिये। प्रभो! अब हम पुनः घरको नहीं जायँगी।

द्विजपत्नियोंकी यह बात सुनकर करुणानिधान त्रिलोकीनाथ श्रीकृष्णने 'बहुत अच्छा' कहकर उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। फिर वे बालकोंकी मण्डलीमें बैठ गये। तदनन्तर ब्राह्मणपत्नियोंने उन्हें सुधाके समान मधुर अन्न प्रदान किया। भगवान्‌ने उस अन्नको लेकर गोप-बालकोंको भोजन कराया और स्वयं भी भोजन किया। इसी समय विप्रपत्नियोंने देखा कि आकाशसे एक सोनेका बना हुआ श्रेष्ठ विमान उतर रहा है। उसमें रत्नमय दर्पण लगे हैं। उसके सभी उपकरण रत्नोंके सारतत्त्वसे बने हुए हैं। वह रत्नोंके ही खम्भोंसे आबद्ध है तथा उत्तम रत्नमय कलशोंसे वह और भी उज्ज्वल जान पड़ता है। उसमें श्वेत चँवर लगे हुए हैं। अग्निशुद्ध दिव्य वस्त्र उसकी शोभा बढ़ाते हैं। उस विमानको पारिजातके फूलोंकी मालाओंके जालसे सजाया गया है। उसमें सौ पहिये हैं। मनके समान वेगसे चलनेवाला वह विमान बड़ा मनोहर है। वनमालासे विभूषित दिव्य पार्षद उसे सब ओरसे घेरे खड़े हैं। उन पार्षदोंने पीताम्बर पहन रखा है। वे रत्नमय अलंकारोंसे अलंकृत, नूतन यौवनसे सम्पन्न, श्यामकान्तिवाले, परम मनोहर, दो भुजाओंसे युक्त तथा गोपवेशधारी थे। उनके हाथोंमें मुरली थी। उन्होंने मोरपङ्ख और गुञ्जाकी

मालासे आबद्ध टेढ़े मुकुट धारण कर रखे थे।

वे रथसे तुरंत ही उतरकर श्रीहरिके चरणोंमें प्रणाम करके ब्राह्मणपत्नियोंसे बोले—'आप लोग इस विमानपर चढ़ जायँ।' ब्राह्मणपत्नियाँ श्रीहरिको नमस्कार करके मनोवाञ्छित गोलोकमें जा पहुँचीं। वे मानव-देहका त्याग करके तत्काल दिव्य गोपी हो गयीं। तत्पश्चात् श्रीहरिने वैष्णवी मायाके द्वारा उनकी छायाका निर्माण करके स्वयं ही उन्हें ब्राह्मणोंके घरोंमें भेज दिया। ब्राह्मण लोग अपनी पत्नियोंके लिये मन-ही-मन बहुत उद्विग्न थे और सब ओर उनकी खोज कर रहे थे। इसी समय रास्तेमें उन्हें अपनी पत्नियाँ दिखायी दीं। उन्हें देखकर सब ब्राह्मणोंके मुख और नेत्र प्रसन्नतासे खिल उठे। सम्पूर्ण अङ्ग पुलकित हो गये और वे विनयपूर्वक उनसे बोले।

ब्राह्मणोंने कहा—अहो! तुम सब लोग परम धन्य हो; क्योंकि तुमने साक्षात् परमेश्वरके दर्शन किये हैं। हमारा जीवन व्यर्थ है। हम लोगोंका वेदपाठ भी निरर्थक है। वेद और पुराणमें सर्वत्र विद्वानोंद्वारा श्रीहरिकी ही समस्त विभूतियोंका वर्णन किया गया है। सबके जनक श्रीहरि ही हैं। जप, तप, व्रत, ज्ञान, वेदाध्ययन, पूजन, तीर्थ-स्नान और उपवास—सबके फलदाता श्रीकृष्ण ही हैं। जिसने श्रीकृष्णकी सेवा कर ली, उसे तपस्याओंके फलोंसे क्या प्रयोजन है? जिसे कल्पवृक्षकी प्राप्ति हो गयी, वह दूसरे किसी वृक्षको लेकर क्या करेगा? जिसके हृदयमें श्रीकृष्ण विराजमान हैं, उसे यज्ञादि कर्मोंके अनुष्ठानकी क्या आवश्यकता है? जिसने समुद्रको पी लिया, उसके लिये कुआँ लाँघनेमें क्या पुरुषार्थ है?*

ऐसा कहकर ब्राह्मणलोग उन श्रेष्ठ कामिनियोंको साथ ले हर्षपूर्वक अपने घरको लौटे और उनके साथ आनन्दपूर्वक रहने लगे। उन सबका क्रीड़ामें तथा अन्य सब कर्मोंमें पहलेवाली स्त्रियोंकी अपेक्षा अधिक प्रेम तथा उदारभाव प्रकट होता था; परंतु मायाशक्तिसे प्रभावित होनेके कारण ब्राह्मणलोग उसका अनुमान नहीं कर पाते थे। उधर सनातन पूर्णब्रह्म नारायणस्वरूप श्रीकृष्ण बलराम तथा ग्वालबालोंके साथ शीघ्र ही अपने घरको चले गये। इस प्रकार मैंने श्रीहरिका सम्पूर्ण उत्तम माहात्म्य कह सुनाया। इसे मैंने पूर्वकालमें अपने पिता धर्मके मुखसे सुना था। नारद! अब तुम और क्या सुनना चाहते हो?

नारदजीने पूछा—ऋषीन्द्र! किस पुण्यके प्रभावसे उन ब्राह्मणपत्नियोंको ऐसी गति प्राप्त हुई, जो बड़े-बड़े मुनीश्वरों तथा योगसिद्ध पुरुषोंके लिये भी दुर्लभ है। पूर्वकालमें ये पुण्यवती स्त्रियाँ कौन थीं और किस दोषसे इस भूतलपर आयी थीं। मेरे इस संदेहका निवारण करनेवाली बात कहिये।

भगवान् श्रीनारायण बोले—नारद! ये देवियाँ सप्तर्षियोंकी सुन्दर रूप-गुण-सम्पन्ना पतिव्रता पत्नियाँ थीं। एक बार अनलदेवने इनका अङ्ग

---

* अहोऽतिधन्या यूयं च दृष्टो युष्माभिरीश्वरः । अस्माकं जीवनं व्यर्थं वेदपाठोऽप्यनर्थकः ॥
वेदे पुराणे सर्वत्र विद्वद्भिः परिकीर्तितम् । हरेर्विभूतयः सर्वाः सर्वेषां जनको हरिः ॥
तपो जपो व्रतं दानं वेदाध्ययनमर्चनम् । तीर्थस्नानमनशनं सर्वेषां फलदो हरिः ॥
श्रीकृष्णः सेवितो येन किं तस्य तपसां फलैः । प्राप्तः कल्पतरुर्येन किं तस्यान्येन शाखिना ॥
श्रीकृष्णो हृदये यस्य किं तस्य कर्मभिः कृतैः । किं पीतसागरस्यैव पौरुषं कूपलङ्घने ॥
(१८। ६६—७०)

स्पर्श कर लिया। इससे सप्तर्षियोंमें अङ्गिराको बड़ा क्षोभ हुआ और उन्होंने अग्निको 'सर्वभक्ष्य' होनेका तथा इन पत्नियोंको मानुषी योनिमें जानेका शाप दे दिया। ये सब रोती हुई बोलीं—'हम लोग निर्दोष हैं, पतिव्रता हैं। हमारा त्याग न करें। आप हम डरी हुई अबलाओंको अभय प्रदान करें।'

इनके करुण-क्रन्दनसे मुनिको दया आ गयी। वे भी दुःखी हो गये। अन्तमें उन्होंने कहा कि तुम्हें मानुषी योनिमें जाना तो होगा; परंतु तुम्हें वहाँ साक्षात् भगवान् श्रीकृष्णके दर्शन प्राप्त होंगे। उनके दर्शन होते ही तुम गोलोकमें चली जाओगी। फिर श्रीहरि अपनी योगमायासे तुम लोगोंकी छायामूर्तिका निर्माण करेंगे। वे तुम्हारी छायामूर्तियाँ कुछ समयतक उन ब्राह्मणोंके घरोंमें रहकर फिर हमारे यहाँ लौट आयेंगी। इस प्रकार तुम अपने छायांशसे पुनः हमारी पत्नियाँ हो जाओगी। अतएव यह मेरा शाप तुम्हारे लिये वरदानसे भी उत्कृष्ट है।

ऐसा कहकर वे मुनि चुप हो गये। उनके मनमें इसके लिये बड़ा दुःख था। वे स्त्रियाँ शापवश भूतलपर आकर उन ब्राह्मणोंकी पत्नियाँ हुईं और श्रीहरिको भक्तिभावसे अन्न समर्पित करके वे उनके धामको चली गयीं। निश्चय ही उनका शाप उनके लिये श्रेष्ठ सम्पत्तिसे भी अधिक महत्त्वशाली हुआ। नीच पुरुषसे मिली हुई सम्पत्ति भी निन्दनीय है; किंतु महात्मा पुरुषसे प्राप्त हुई विपत्ति भी श्रेष्ठ है। अहो! साधुपुरुषोंका कोप तत्काल ही उपकारमें बदल जाता है। विपत्तिके बिना भूतलपर किसीकी महिमा कैसे प्रकट हो सकती है? पतियोंके परित्यागसे भूमिपर उत्पन्न हुई ब्राह्मणपत्नियाँ श्रीहरिके दर्शनसे सदाके लिये भवबन्धनसे मुक्त हो गयीं*। इस प्रकार मैंने श्रीहरिके इस उत्तम चरित्रको पूर्णरूपेण कह सुनाया। उन पुण्यवती ब्राह्मणियोंके मोक्षकी यह मनोरम कथा अद्भुत है। विप्रवर! श्रीकृष्णकी लीला-कथा पद-पदमें नयी-नयी जान पड़ती है। इसे सुननेवालोंको कभी तृप्ति नहीं होती है। भला, श्रेय (कल्याणमयी कथाके श्रवण)-से कौन तृप्त होता है? मैंने पूज्य पिताजीके मुखसे जितना रमणीय भगवच्चरित्र सुना था, उसका वर्णन किया। अब तुम अपनी इच्छा बताओ। फिर क्या सुनना चाहते हो?

नारदजीने कहा—कृपानिधान! जगद्गुरो! आपने पूर्वकालमें पिताके मुखसे श्रीकृष्णकी जो-जो मङ्गलमयी लीलाएँ सुनी हैं, वे सब मुझे सुनाइये।

सूतजी कहते हैं—शौनक! देवर्षिका यह वचन सुनकर भगवान् नारायणने स्वयं ही श्रीकृष्णमहिमाके अन्यान्य प्रसङ्गोंका वर्णन आरम्भ किया। (अध्याय १८)

---

* निन्दनीयाच्च सम्पत्तेर्विपत्तिर्महतो वरा। अहो सद्यः सतां कोपश्चोपकाराय कल्पते॥
विना विपत्तेर्महिमा कुतः कस्य भवेद्भुवि। भूताः कान्तपरित्यागान्मुक्ता ब्राह्मणयोषितः॥
(१८। १२५-१२६)

श्रीकृष्णका कालियदहमें प्रवेश, नागराजका उनपर आक्रमण, श्रीकृष्णद्वारा उसका दमन, नागपत्नी सुरसाद्वारा श्रीकृष्णकी स्तुति, श्रीकृष्णकी उसपर कृपा, सुरसाका गोलोक-गमन, छायामयी सुरसाकी सृष्टि, कालियको वरदान, कालियद्वारा भगवान्‌की स्तुति, उस स्तुतिकी महिमा, नागका रमणक द्वीपको प्रस्थान, कालियका यमुनाजलमें निवासका कारण, गरुडका भय, सौभरिके शापसे कालियदहतक जानेमें गरुडकी असमर्थता, श्रीकृष्णके कालियदहमें प्रवेश करनेसे ग्वालबालों तथा नन्द आदिकी व्याकुलता, बलरामका समझाना, श्रीकृष्णके निकल आनेसे सबको प्रसन्नता, दावानलसे व्रजवासियोंकी रक्षा तथा नन्दभवनमें उत्सव

भगवान् नारायण कहते हैं—नारद! एक दिन बलदेवको साथ लिये बिना ही श्रीकृष्ण अन्यान्य ग्वालबालोंके साथ यमुनाके उस तटपर चले गये, जहाँ कालियनागका निवासस्थान था। स्वेच्छामय शरीर धारण करनेवाले भगवान् नन्दनन्दन यमुना-तटवर्ती वनमें पके हुए फलोंको खाकर जब प्यास लगती, तब वहाँका निर्मल जल पी लेते थे। उन्होंने गोप-शिशुओंके साथ कुछ कालतक गौएँ चरायीं। तत्पश्चात् उन्हें तो एक जगह विश्रामके लिये खड़ी कर दिया और स्वयं साथियोंके साथ खेल-कूदमें लग गये; खेलमें इनका मन लग गया। ग्वालबाल भी बड़े हर्षके साथ उसमें भाग लेने लगे। उधर गौएँ नयी-नयी घास चरती हुई आगे बढ़ गयीं और यमुनाका विषमिश्रित जल पीने लगीं। मुने! दारुण कालकी चेष्टासे वह विषाक्त जल पीकर कालकूटकी ज्वालाओंसे संतप्त हो उन गौओंने तत्काल प्राण त्याग दिये। झुंड-की-झुंड गौओंको मरी हुई देख गोपबालक चिन्तासे व्याकुल और भयभीत हो उठे। उनके मुखपर विषाद छा गया और उन सबने आकर मधुसूदन श्रीकृष्णसे यह बात कही। सारा रहस्य जानकर जगन्नाथ श्रीहरिने उन सब गौओंको जीवित कर दिया। वे गौएँ तत्काल उठकर खड़ी हो गयीं और श्रीहरिका मुँह देखने लगीं। इधर श्रीकृष्ण यमुनातटवर्ती जलके निकट

उत्पन्न हुए कदम्बपर चढ़कर उस सर्पके भवनमें बहुत-से नागोंके बीच कूद पड़े। उनके जलमें पड़ते ही उस कुण्डका पानी सौ हाथ ऊपर उठ गया। नारद! यह देख ग्वालबालोंको पहले तो हर्ष हुआ, फिर वे बड़े दुःखका अनुभव करने लगे। कालियसर्प मनुष्यकी आकृतिमें आये हुए श्रीहरिको देखकर क्रोधसे विह्वल हो उठा और तुरंत ही उन्हें निगल गया। जैसे किसी मनुष्यने जल्दबाजीमें तपे हुए लोहेको थाम लिया हो वैसे ही ब्रह्मतेजसे उसका कण्ठ और पेट जलने लगा।

वह नाग उद्विग्न हो गया और 'हाय! हाय! मेरे प्राण निकले जा रहे हैं'—यों कहकर उसने पुनः उन्हें उगल दिया। श्रीकृष्णके वज्रोपम अङ्गोंको चबानेसे उसके सारे दाँत टूट गये और मुँह लहूलुहान हो गया। भगवान् उस समय रक्तरञ्जित मुखवाले कालिय नागके मस्तकपर चढ़ गये। विश्वम्भरके भारसे आक्रान्त हो कालिय नाग प्राण त्याग देनेको उद्यत हो गया। मुने! उसने रक्त वमन किया और मूर्च्छित होकर वह गिर पड़ा। उसे मूर्च्छित देख सब नाग प्रेमसे विह्वल हो रोने लगे। कोई भाग गये और कोई डरके मारे बिलमें घुस गये। अपने प्रियतमको मरणोन्मुख हुआ देख नागपत्नी सती सुरसा दूसरी नागिनियोंके साथ श्रीहरिके सामने आयी और पति-प्रेमसे रोने लगी। उसने दोनों हाथ जोड़कर शीघ्र ही भयसे श्रीहरिको प्रणाम किया और उनके दोनों चरणारविन्द पकड़कर व्याकुल हो उनसे कहा।

सुरसा बोली—हे जगदीश्वर! आप मुझे मेरे स्वामीको लौटा दीजिये। दूसरोंको मान देनेवाले प्रभो! मुझे भी मान दीजिये। स्त्रियोंको पति प्राणोंसे भी बढ़कर प्रिय होता है। उनके लिये पतिसे बढ़कर दूसरा कोई बन्धु नहीं है। नाथ! आप देवेश्वरोंके भी स्वामी, अनन्त प्रेमके सागर,

उत्तम बन्धु, सम्पूर्ण भुवनोंके बान्धव तथा श्रीराधिकाजीके लिये प्रेमके समुद्र हैं। अतः मेरे प्राणनाथका वध न कीजिये। आप विधाताके भी विधाता हैं। इसलिये यहाँ मुझे पतिदान दीजिये। त्रिनेत्रधारी महादेवके पाँच मुख हैं; ब्रह्माजीके चार और शेषनागके सहस्र मुख हैं; कार्तिकेयके भी छः मुख हैं; परंतु ये लोग भी अपने मुख-समूहोंद्वारा आपकी स्तुति करनेमें जडवत् हो जाते हैं। साक्षात् सरस्वती भी आपका स्तवन करनेमें समर्थ नहीं हैं। सम्पूर्ण वेद, अन्यान्य देवता तथा संत-महात्मा भी आपकी स्तुतिके विषयमें शक्तिहीनताका ही परिचय देते हैं। कहाँ तो मैं कुबुद्धि, अज्ञ एवं नारियोंमें अधम सर्पिणी और कहाँ सम्पूर्ण भुवनोंके परम आश्रय तथा किसीके भी दृष्टिपथमें न आनेवाले आप परमेश्वर! जिनकी स्तुति ब्रह्मा, विष्णु और शेषनाग करते हैं, उन मानव-वेषधारी आप नराकार परमेश्वरकी स्तुति मैं करना चाहती हूँ, यह कैसी विडम्बना है? पार्वती, लक्ष्मी तथा वेदजननी सावित्री जिनके स्तवनसे डरती हैं और स्तुति करनेमें समर्थ नहीं हो पातीं; उन्हीं आप परमेश्वरका स्तवन कलिकलुषमें निमग्न तथा वेद-वेदाङ्ग एवं शास्त्रोंके श्रवणमें मूढ़ स्त्री मैं क्यों करना चाहती हूँ, यह समझमें नहीं आता। आप रत्नमय पर्यङ्कपर रत्ननिर्मित भूषणोंसे भूषित हो शयन करते हैं। रत्नालंकारोंसे अलंकृत अङ्गवाली राधिकाके वक्षःस्थलपर विराजमान होते हैं। आपके सम्पूर्ण अङ्ग चन्दनसे चर्चित रहते हैं, मुखारविन्दपर मन्द मुस्कानकी प्रभा फैली होती है। आप उमड़ते हुए प्रेमरसके महासागरमें सदा सुखसे निमग्न रहते हैं। आपका मस्तक मल्लिका और मालतीकी मालाओंसे सुशोभित होता है। आपका मानस नित्य निरन्तर पारिजात पुष्पोंकी सुगन्धसे आमोदित रहा करता है। कोकिलके कलरव तथा भ्रमरोंके गुञ्जारवसे उद्दीपित प्रेमके कारण आपके अङ्ग उठी हुई पुलकावलियोंसे अलंकृत रहते हैं। जो सदा प्रियतमाके दिये हुए ताम्बूलका सानन्द

चर्वण करते हैं; वेद भी जिनकी स्तुति करनेमें असमर्थ हैं तथा बड़े-बड़े विद्वान् भी जिनके स्तवनमें जडवत् हो जाते हैं; उन्हीं अनिर्वचनीय परमेश्वरका स्तवन मुझ-जैसी नागिन क्या कर सकती है? मैं तो आपके उन चरणकमलोंकी वन्दना करती हूँ, जिनका सेवन ब्रह्मा, शिव और शेष करते हैं तथा जिनकी सेवा सदा लक्ष्मी, सरस्वती, पार्वती, गङ्गा, वेदमाता सावित्री, सिद्धोंके समुदाय, मुनीन्द्र और मनु करते हैं। आप स्वयं कारणरहित हैं, किंतु सबके कारण आप ही हैं। सर्वेश्वर होते हुए भी परात्पर हैं स्वयंप्रकाश, कार्य-कारणस्वरूप तथा उन कार्य-कारणोंके भी अधिपति हैं। आपको मेरा नमस्कार है। हे श्रीकृष्ण! हे सच्चिदानन्दघन! हे सुरासुरेश्वर! आप ब्रह्मा, शिव, शेषनाग, प्रजापति, मुनि, मनु, चराचर प्राणी, अणिमा आदि सिद्धि, सिद्ध तथा गुणोंके भी स्वामी हैं। मेरे पतिकी रक्षा कीजिये, आप धर्म और धर्मीके तथा शुभ और अशुभके भी स्वामी हैं। सम्पूर्ण वेदोंके स्वामी होते हुए भी उन वेदोंमें आपका अच्छी तरह निरूपण नहीं हो सका है। सर्वेश्वर! आप सर्वस्वरूप तथा सबके बन्धु हैं। जीवधारियों तथा जीवोंके भी स्वामी हैं। अतः मेरे पतिकी रक्षा कीजिये।

इस प्रकार स्तुति करके नागराजवल्लभा सुरसा भक्तिभावसे मस्तक झुका श्रीकृष्णके चरणकमलोंको पकड़कर बैठ गयी। नागपत्नीद्वारा किये गये इस स्तोत्रका जो त्रिकाल संध्याके समय पाठ करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो अन्ततोगत्वा श्रीहरिके धाममें चला जाता है। उसे इहलोकमें श्रीहरिकी भक्ति प्राप्त होती है और अन्तमें वह निश्चय ही श्रीकृष्णका दास्य-सुख पा जाता है। वह श्रीहरिका पार्षद हो सालोक्य आदि चतुर्विध मुक्तियोंको करतलगत कर लेता है।

नारदजीने पूछा—नागपत्नीकी बात सुनकर हर्षसे उत्फुल्ल नेत्रोंवाले सर्वनन्दन भगवान् गोविन्दने स्वयं उससे क्या कहा? महाभाग! यह अत्यन्त अद्भुत रहस्य मुझसे बताइये।

भगवान् नारायणने कहा—मुने! नागपत्नी भयसे व्याकुल हो हाथ जोड़कर भगवान्‌के चरणोंमें पड़ी थी। उसकी उपर्युक्त बातें सुनकर श्रीकृष्णने उससे इस प्रकार कहा—

श्रीकृष्ण बोले—नागेश्वरि! उठो, उठो। भय छोड़ो और वर माँगो। मातः! मेरे वरके प्रभावसे अजर-अमर हुए अपने पतिको ग्रहण करो और यमुनाका ह्रद छोड़कर अपने घरको चली जाओ। वत्से! अपने पति और परिवारके साथ अभीष्ट स्थानको पधारो। नागेशि! आजसे तुम मेरी कन्या हुई और तुम्हारे प्राणोंसे भी अधिक प्रियतम यह नागराज मेरे जामाता हुए; इसमें संशय नहीं है। शुभे! मेरे चरणकमलोंके चिह्नसे युक्त होनेके कारण तुम्हारे पतिको अब गरुड कष्ट नहीं देंगे, अपितु भक्तिभावसे स्तुति करके मेरे चरणचिह्नको प्रणाम करेंगे। अब तुम गरुडका भय छोड़ो और शीघ्र रमणक द्वीपको चली जाओ। बेटी! इस ह्रदसे निकलो और इच्छानुसार वर माँगो।

श्रीकृष्णकी यह बात सुनकर सुरसाके नेत्र और मुख हर्षसे खिल उठे। उसकी आँखोंमें आँसू भर आये तथा उसने भक्ति-भावसे मस्तक झुकाकर कहा।

सुरसा बोली—वरदाता परमेश्वर! पिताजी! यदि आप मुझे वर देना चाहते हैं तो अपने चरणकमलोंकी सुदृढ़ एवं अविचल भक्ति प्रदान कीजिये। मेरा मन भ्रमरकी भाँति सदा आपके चरणारविन्दपर ही मँड़राता रहे। मुझे आपके स्मरणकी कभी विस्मृति न हो, मेरा कान्तविषयक सौभाग्य सदा बना रहे और ये मेरे प्राणवल्लभ ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ हो जायँ। प्रभो! यही मेरी प्रार्थना है; इसे पूर्ण कीजिये।

ऐसा कहकर नागपत्नी श्रीहरिके सामने नत हुई खड़ी हो गयी। उसने शरत्पूर्णिमाके चन्द्रमाको लज्जित करनेवाले श्रीहरिके मुखचन्द्रका दर्शन किये। उस सतीने अपने दोनों नेत्रोंसे निमेषरहित होकर गोविन्दके मुखकी सौन्दर्यमाधुरीका पान किया। उसके सारे अङ्ग पुलकित हो उठे। वह आनन्दके आँसुओंमें डूब गयी। श्रीहरिको सुन्दर बालकके रूपमें देखकर वह उनके प्रति पुत्रोचित स्नेह करने लगी और भक्तिके उद्रेकसे आप्लावित हो पुनः इस प्रकार बोली—'गोविन्द! मैं रमणक-द्वीपमें नहीं जाऊँगी। वहाँ मेरा कोई प्रयोजन नहीं है। यह सर्प वहाँ जाकर संसार चलावे, मुझे तो आप अपनी किङ्करी बना लीजिये! हे श्रीकृष्ण! मेरे मनमें सालोक्य आदि चार प्रकारकी मुक्तिके लिये भी इच्छा नहीं है; क्योंकि वह मुक्ति आपके चरणारविन्दोंकी सेवाकी सोलहवीं कलाके बराबर भी नहीं है। जो भारतवर्षमें दुर्लभ जन्म पाकर आपसे आपकी चरणसेवाके अतिरिक्त दूसरे वरकी इच्छा करता है, वह स्वयं ठगा गया*।'

नागपत्नीकी यह बात सुनकर श्रीकृष्णके मुखारविन्दपर मुस्कराहट फैल गयी। उनका मन प्रसन्न हो गया और उन श्रीमान् माधवने 'एवमस्तु' कहकर उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। इसी बीचमें उत्तम रत्नोंके सारतत्त्वसे निर्मित दिव्य विमान वहाँ तत्काल उतर आया। मुने! वह अपने तेजसे उद्दीप्त हो रहा था। उसपर अनेक श्रेष्ठ पार्षद बैठे थे तथा उसे दिव्य वस्त्रों एवं मालाओंसे सजाया गया था। उसमें सौ पहिये लगे थे। वह वायुके समान वेगशाली तथा मनकी गतिसे चलनेवाला था। देखनेमें बड़ा ही मनोहर था। श्यामसुन्दरके श्याम कान्तिवाले सेवक तुरंत ही उस रथसे उतरे और श्रीकृष्णको प्रणाम करके सुरसाको साथ ले उत्तम गोलोकधामको चले गये।

तत्पश्चात् श्रीहरिने अपने तेजसे छायारूपिणी सुरसाकी सृष्टि करके उसे सर्पको दे दिया। कालियनाग यह सब कुछ न जान सका; क्योंकि वह वैष्णवी मायासे विमोहित था। सर्पके मस्तकसे उतरकर करुणानिधान श्रीकृष्णने कृपापूर्वक शीघ्र ही कालियके सिरपर अपना हाथ रखा। हाथ रखते ही उसके शरीरमें चेतना लौट आयी और उसने श्रीहरिको अपने सामने देखा तथा इस बातकी ओर भी लक्ष्य किया कि सती सुरसा दोनों हाथ जोड़े खड़ी है और उसके नेत्रोंसे आँसू बह रहे हैं। यह देख उसने भी गोविन्दको प्रणाम किया और तत्काल प्रेमसे विह्वल होकर वह रोने लगा। कृपानिधान भगवान्‌ने देखा नागराज रो रहा है और सुरसा भक्तिके उद्रेकसे पुलकित हो नेत्रोंसे आँसू बहा रही है; किंतु कुछ बोल नहीं रही है। तब वे दयानिधि स्वयं बोले; क्योंकि योग्य और अयोग्य प्राणीपर भी ईश्वरकी कृपा सदा समान रूपसे ही रहती है।

श्रीकृष्णने कहा—कालिय! तुम्हारे मनमें जो इच्छा हो, उसके अनुसार वर माँगो। वत्स! तुम मुझे प्राणोंसे भी अधिक प्रिय हो। भय छोड़ो और सुखसे रहो। जो मेरा अत्यन्त भक्त हो और मेरे अंशसे उत्पन्न हुआ हो, उसपर मैं विशेष अनुग्रह करता हूँ। उसके अभिमानको मिटानेके लिये उसका किञ्चित् दमन करके मैं पुनः उसपर कृपा करता हूँ। जो लोग तुम्हारे वंशमें उत्पन्न हुए सर्पोंका विनाश करेंगे, उनको महान् पाप लगेगा और वे दुःखोंके भागी होंगे। परंतु जो लोग तुम्हारे कुलमें उत्पन्न हुए सर्पोंको देखकर उनके मस्तकपर उभरे हुए मेरे सुन्दर चरणचिह्नोंको भक्तिभावसे प्रणाम करेंगे, वे समस्त पातकोंसे मुक्त हो जायँगे। तुम शीघ्र रमणक द्वीपको जाओ

* विना त्वत्पादसेवां च यो वाञ्छति वरान्तरम्। भारते दुर्लभं जन्म लब्ध्वासौ वञ्चितः स्वयम्॥ (१९। ५२)

और गरुड़का भय छोड़ दो। तुम्हारे मस्तकपर मेरे चरणचिह्नको देखकर गरुड़ भक्तिभावसे तुम्हें नमस्कार करेंगे। तुमको और तुम्हारे वंशजोंको गरुड़से कभी भय नहीं होगा। आजसे मेरा वर पाकर अपनी जातिके सर्पोंमें तुम सर्वश्रेष्ठ हो जाओ। वत्स! तुमको और कौन-सा उत्तम वर अभीष्ट है? उसे इस समय माँगो। मैं तुम्हारा दुःख दूर करनेवाला हूँ; अतः भय छोड़कर मुझसे मनकी बात कहो।

श्रीकृष्णकी बात सुनकर कालियनाग, जो भयसे काँप रहा था, दोनों हाथ जोड़कर उनसे बोला।

कालियने कहा—वरदायक प्रभो! दूसरे किसी वरके लिये मेरी इच्छा नहीं है। प्रत्येक जन्ममें मेरी आपके चरणकमलोंमें भक्ति बनी रहे और मैं सदा आपके उन चरणारविन्दोंका चिन्तन करता रहूँ; यही वर मुझे दीजिये। जन्म ब्राह्मणके कुलमें हो या पशु-पक्षियोंकी योनियोंमें, सब समान है। वही जन्म सफल है, जिसमें आपके चरणकमलोंकी स्मृति बनी रहे। यदि आपके चरणोंका स्मरण न हो तो देवता होकर स्वर्गमें रहना भी निष्फल है। जो आपके चरणोंके चिन्तनमें तत्पर है, उसे जो भी स्थान प्राप्त हो, वही सबसे उत्तम है। उस पुरुषकी आयु एक क्षणकी हो या करोड़ों कल्पोंकी, अथवा उसकी आयु तत्काल ही क्षीण होनेवाली क्यों न हो; यदि वह आपकी आराधनामें बीत रही है तो सफल है, अन्यथा उसका कोई फल नहीं है—वह व्यर्थ है। जो आपके चरणारविन्दोंके सेवक हैं, उनकी आयु व्यर्थ नहीं जाती, सार्थक होती है। उन्हें जन्म-मरण, रोग-शोक और पीड़ाका कुछ भी भय नहीं रहता—वे इनकी कुछ भी परवाह नहीं करते। भक्तोंके मनमें आपके चरणोंकी सेवाको छोड़कर इन्द्रपद, अमरत्व अथवा परम दुर्लभ ब्रह्मपदको भी पानेकी इच्छा नहीं होती। आपके भक्तजन सालोक्य आदि चार प्रकारकी मुक्तियोंको अत्यन्त फटे पुराने वस्त्रके चिथड़ेके समान तुच्छ देखते हैं*। ब्रह्मन्! मैंने भगवान् अनन्तके मुखसे ज्यों ही आपके मन्त्रका उपदेश प्राप्त किया, त्यों ही आपकी भावना करते-करते आपके अनुग्रहसे मैं आपके समान वर्णवाला हो गया। मैं अपक्व भक्त था अर्थात् मेरी भक्ति परिपक्व नहीं हुई थी। यह जानकर ही स्वयं सुदृढ़ भक्ति धारण करनेवाले गरुड़ने मुझे देशसे दूर कर दिया और धिक्कारा था। परंतु वरदेश्वर! अब आपने मुझे अविचल भक्ति दे दी है। गरुड़ भी भक्त हैं, मैं भी भक्त हो गया हूँ; अतः अब वे मेरा त्याग नहीं कर सकते हैं। आपके चरणारविन्दोंके चिह्नसे अलंकृत मेरे श्रीयुत मस्तकको देखकर गरुड़ मुझे सदोष होनेपर भी गुणवान् मानेंगे; अतः इस समय मेरा त्याग नहीं कर सकेंगे। अब तो वे यह मानकर कि नागेन्द्रगण हमारे आराध्य हैं, मुझे कष्ट नहीं देंगे। परमेश्वर! अब मैं उनका वध्य नहीं रहा। उन गुरुदेव अनन्तके सिवा मुझे कहीं किसीसे भी भय नहीं है। देवेन्द्रगण, देवता, मुनि, मनु और मानव—जिन्हें स्वप्नमें तथा ध्यानमें भी नहीं देख पाते हैं—वे ही परमात्मा इस समय मेरे

---

* तन्निष्फलः स्वर्गवासो नास्ति यस्य स्मृतिस्तव । त्वत्पदध्यानयुक्तस्य यत्तत् स्थानं च तत्परम्॥
क्षणं वा कोटिकल्पं वा पुरुषायुश्च यस्तथा । यदि त्वत्सेवया याति सफलो निष्फलोऽन्यथा॥
तेषां चायुः क्षयो नास्ति ये त्वत्पादाब्जसेवकाः । न सन्ति जन्ममरणरोगशोकार्तिभीतयः॥
इन्द्रत्वे चामरत्वे वा ब्रह्मत्वे चातिदुर्लभे । वाञ्छा नास्त्येव भक्तानां त्वत्पादसेवनं विना॥
सुजीर्णपटखण्डस्य समं तन्नूनमेव वा । पश्यन्ति भक्ताः किं चान्यत् सालोक्यादिचतुष्टयम्॥
(१९। ७६—८०)

नेत्रोंके विषय हो रहे हैं। प्रभो! आप तो भक्तोंके अनुरोधसे साकार रूपमें प्रकट हुए हैं; अन्यथा आपको शरीरकी प्राप्ति कैसे हो सकती है? सगुण-साकार तथा निर्गुण-निराकार भी आप ही हैं। आप स्वेच्छामय, सबके आवासस्थान तथा समस्त चराचर जगत्के सनातन बीज हैं। सबके ईश्वर, साक्षी, आत्मा और सर्वरूपधारी हैं। ब्रह्मा, शिव, शेष, धर्म और इन्द्र आदि देवता तथा वेदों और वेदाङ्गोंके पारङ्गत विद्वान् भी जिन परमेश्वरकी स्तुति करनेमें जडवत् हो जाते हैं, उन्हीं सर्वव्यापी प्रभुका स्तवन क्या एक सर्प कर सकेगा? हे नाथ! हे करुणासिन्धो! हे दीनबन्धो! आप मुझ अधमको क्षमा कीजिये। श्रीकृष्ण! मैंने अपने खल स्वभाव और अज्ञानके कारण आपको चबा डालनेका प्रयत्न किया; परंतु आप तो आकाशकी भाँति सर्वत्र व्यापक तथा अमूर्त हैं; अतः किसी भी अस्त्रके लक्ष्य नहीं हैं। न तो आपका अन्त देखा जा सकता है और न लाँघा ही जा सकता है। न तो कोई आपका स्पर्श कर सकता है और न आपपर आवरण ही डाल सकता है। आप स्वयं प्रकाशरूप हैं।

ऐसा कहकर नागराज कालिय भगवान्के चरणकमलोंमें गिर पड़ा। भगवान् उसपर संतुष्ट हो गये। उन्होंने 'एवमस्तु' कहकर उसे सम्पूर्ण अभीष्ट वर दे दिया। जो नागराजद्वारा किये गये स्तोत्रका प्रातःकाल उठकर पाठ करता है, उसे तथा उसके वंशजोंको कभी नागोंसे भय नहीं होता। वह भूतलपर नागोंकी शय्या बनाकर सदा उसपर शयन कर सकता है। उसके भोजनमें विष और अमृतका भेद नहीं रह जाता। जिसको नागने ग्रस लिया हो, काट खाया हो, अथवा विषैला भोजन करनेसे जिसके प्राणान्तकी सम्भावना हो गयी हो, वह मनुष्य भी इस स्तोत्रको सुननेमात्रसे स्वस्थ हो जाता है। जो इस स्तोत्रको भोजपत्रपर लिखकर भक्तिभावसे युक्त हो कण्ठमें या दाहिने हाथमें धारण करता है, उसे भी नागोंसे भय नहीं होता। जिस घरमें यह स्तोत्र पढ़ा जाता है, वहाँ कोई नाग नहीं ठहरता। निश्चय ही उस घरमें विष, अग्नि तथा वज्रका भय नहीं प्राप्त होता। इहलोकमें श्रीहरिकी भक्ति और स्मृति उसे सदा सुलभ होती है तथा अन्तमें अपने कुलको पवित्र करके निश्चय ही वह श्रीकृष्णका दास्यभाव प्राप्त कर लेता है।

भगवान् नारायण कहते हैं—नारद! नागराजको अभीष्ट वर देकर जगदीश्वर श्रीहरिने पुनः उससे मधुर वचन कहे, जो परिणाममें सुख देनेवाले थे।

श्रीकृष्ण बोले—नागराज! तुम यमुना-जलके मार्गसे ही परिवारसहित रमणकद्वीपमें चले जाओ। वह स्थान इन्द्रनगरके समान श्रेष्ठ एवं सुन्दर है।

श्रीहरिकी यह आज्ञा सुनकर नाग प्रेमविह्वल होकर रोने लगा और बोला—'नाथ मैं आपके चरणकमलोंका कब दर्शन करूँगा?' वह महेश्वर श्रीकृष्णको सैकड़ों बार प्रणाम करके स्त्री और परिवारके साथ जलके ही मार्गसे चला गया। जाते समय नागराज भगवद्-विरहसे व्याकुल हो रहा था। उसके चले जानेके बाद यमुनाके उस कुण्डका जल अमृतके समान हो गया। इससे समस्त जन्तुओंको बड़ी प्रसन्नता हुई। नारद! रमणकमें पहुँचकर कालियने इन्द्रनगरके समान सुन्दर भवन देखा। कृपासिन्धु श्रीकृष्णकी आज्ञासे साक्षात् विश्वकर्माने उसका निर्माण किया था। वहाँ नागराज कालिय अपनी पत्नी और पुत्रोंके साथ श्रीहरिके चिन्तनमें तत्पर हो भय छोड़कर बड़े हर्षके साथ रहने लगा। इस प्रकार श्रीहरिका सारा अद्भुत, सुखदायक, मोक्षप्रद तथा सारभूत चरित्र मैंने कह सुनाया। अब और क्या सुनना चाहते हो?

सूतजी कहते हैं—महर्षि नारायणका उपर्युक्त

वचन सुनकर नारदजी हर्षविभोर हो गये। उन्होंने समस्त संदेहोंका निवारण करनेवाले उन महर्षिसे अपना संदेह इस प्रकार पूछा।

नारदजी बोले—जगद्गुरो! अपने पहलेके उत्तम भवनको छोड़कर कालिय यमुनातटको क्यों चला गया था? इसका रहस्य मुझे बताइये।

भगवान् श्रीनारायणने कहा—नारद! सुनो। मैं उस प्राचीन इतिहासका वर्णन कर रहा हूँ, जिसे मैंने सूर्यग्रहणके समय मलयाचलपर सुप्रभा नदीके पश्चिम किनारे श्रीकृष्ण-कथाके प्रसङ्गमें पिता धर्मके मुखसे सुना था। पुलहने धर्मसे अपना संदेह पूछा था, तब कृपानिधान धर्मने मुनियोंकी सभामें इस आश्चर्यमय आख्यानको सुनाया था। नारद! वहीं मैंने इसे सुना था, अतः कहता हूँ, सुनो।

भगवान् शेषकी आज्ञासे नागगण प्रतिवर्ष कार्तिककी पूर्णिमाको भयके कारण गरुड़देवकी पूजा करते हैं। पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य और विविध उपहार-सामग्री अर्पित करके प्रसन्नतापूर्वक उनकी आराधना करते हैं। महातीर्थ पुष्करमें भक्तिपूर्वक भलीभाँति स्नान करके कालियने अहंकारवश उक्त तिथिको गरुड़की पूजा नहीं की। नागोंद्वारा जो पूजाकी सामग्री एकत्र की गयी थी, उसे कालियनाग बलपूर्वक खानेको उद्यत हो गया। तब सभी नाग उस मदमत्त कालियको रोकने तथा उसे नीतिकी बात बताने लगे। जब किसी तरह भी वे कालियको रोकनेमें समर्थ न हो सके, तब सहसा वहाँ पक्षिराज गरुड़ प्रकट हो गये। मुने! गरुड़को आया देख नागगण कालियके प्राणोंकी रक्षा करनेके लिये जबतक सूर्योदय नहीं हुआ, तबतक पूरी शक्ति लगाकर उनके साथ युद्ध करते रहे। अन्तमें पक्षिराजके तेजसे उद्विग्न हो वे सब-के-सब भाग खड़े हुए और सबके अभयदाता भगवान् अनन्तकी शरणमें गये। नागोंको भागते देख करुणानिधान कालिय वहाँ निःशङ्कभावसे खड़ा रहा। उसने गरुड़की ओर देखा और श्रीहरिके चरणारविन्दोंका चिन्तन करके गरुड़के साथ युद्ध आरम्भ कर दिया। एक मुहूर्ततक उन दोनोंमें अत्यन्त भयानक युद्ध हुआ। अन्तमें गरुड़के तेजसे नागराज कालियको पराजित होना पड़ा। फिर तो वह भागा और यमुनाजीके उसी कुण्डमें चला गया, जहाँ सौभरिके शापसे पक्षिराज गरुड़ नहीं जा सकते थे। गरुड़के भयसे नाग वहीं रहने लगा। पीछेसे उसके परिवारके लोग भी वहीं चले गये।

नारदजीने पूछा—भगवन्! गरुड़को सौभरिका शाप कैसे प्राप्त हुआ? परमेश्वरके वाहन होकर भी गरुड़ उस ह्रदमें क्यों नहीं जा सकते थे?

भगवान् श्रीनारायण बोले—उस कुण्डमें सौभरि मुनि एक सहस्र दिव्य वर्षोंतक तपस्या करके महासिद्ध हो श्रीकृष्णके चरणकमलोंका ध्यान करते थे। उन ध्यानपरायण मुनिके समीप पक्षिराज गरुड़ यमुनाजीके जलमें तथा किनारे भी अपने गणोंके साथ प्रसन्नतापूर्वक निःशङ्क विचरा करते थे। वे अपनी उत्कृष्ट इच्छासे प्रेरित हो बहुधा पूँछ (अथवा पंख) ऊपरको उठाकर मुनिके अगल-बगलमें उनकी सानन्द परिक्रमा करते हुए जाते-आते थे। एक दिन उन्होंने परिवारसहित विशालकाय मीनको देखा। देखते-ही-देखते गरुड़ने मुनीन्द्रके निकटसे ही उस मीनको चोंचसे पकड़ लिया। मछलीको मुँहमें दबाये जाते हुए गरुड़को मुनिने रोषभरी दृष्टिसे देखा। मुनिकी उस दृष्टिसे गरुड़ काँप उठे और वह महामत्स्य उनकी चोंचसे छूटकर पानीमें गिर पड़ा। गरुड़के डरसे वह मीन मुनिके पास ठहर गया—उनके शरणागत हो गया। जब गरुड़ पुनः उसे लेनेको उद्यत हुए, तब मुनीन्द्रने उनसे कहा।

सौभरि बोले—पक्षिराज! मेरे पाससे दूर हटो, दूर हटो। मेरे सामनेसे इस विशाल जीवको पकड़ लेनेकी तुममें क्या योग्यता है? तुम

अपनेको श्रीकृष्णका वाहन समझकर बहुत बड़ा मानते हो। श्रीकृष्ण तुम्हारे-जैसे करोड़ों वाहन रच लेनेकी शक्ति रखते हैं। मैं अपनी भौंहें टेढ़ी करनेमात्रसे तुम्हें शीघ्र और अनायास ही भस्म कर सकता हूँ। तुम परमेश्वरके वाहन हो तो क्या हुआ? हम लोग तुम्हारे दास नहीं हैं। पक्षिराज! यदि आजसे कभी भी मेरे इस कुण्डमें आओगे तो मेरे शापसे तत्काल भस्म हो जाओगे। यह ध्रुव सत्य है।

मुनीन्द्रकी बात सुनकर पक्षिराज विचलित हो गये। वे श्रीकृष्णके चरणोंका स्मरण करते-करते उन्हें प्रणाम करके चल दिये। विप्रवर नारद! तबसे अबतक सदा ही उस कुण्डका नाम सुननेमात्रसे पक्षिराजको कँपकँपी आ जाती है। यह इतिहास, जो धर्मके मुखसे सुना गया था, तुमसे कहा गया। अब जिसका प्रकरण चल रहा है, श्रीहरिके उस श्रवणसुखद, रहस्ययुक्त तथा मङ्गलमय लीलाचरित्रको सुनो।

श्रीकृष्ण बहुत देरतक यमुना-जलसे ऊपर नहीं उठे। यह जानकर ग्वालबाल दुःखी हो गये। वे मोहवश यमुनाके तटपर रोने लगे। कुछ बालक शोकसे व्याकुल हो अपनी छाती पीटने लगे। कोई श्रीहरिके बिना पृथ्वीपर पछाड़ खाकर गिरे और मूर्च्छित हो गये। कितने ही बालक श्रीकृष्णविरहसे व्यथित हो कालियदहमें प्रवेश करनेको उद्यत हो गये और कुछ ग्वालबाल उनको उसमें जानेसे रोकने लगे। कोई-कोई विलाप करके प्राण त्याग देनेको उद्यत हो गये और उनमें जो समझदार थे, ऐसे कुछ बालक उन मरणोन्मुख बालकोंकी प्रयत्नपूर्वक रक्षा करने लगे। कोई 'हाय-हाय' कहकर रोने-बिलखने लगे। कोई 'कृष्ण-कृष्ण' की रट लगाने लगे और कोई इस समाचारको बतानेके लिये नन्दरायजीके समीप दौड़े गये। कुछ बालक वहाँ शोक, भय और मोहसे आतुर हो परस्पर मिलकर यों कहने लगे—'हम क्या करें? हमारे श्रीहरि कहाँ चले गये? हे नन्दनन्दन! हे प्राणोंसे भी बढ़कर प्रियतम श्रीकृष्ण! हे बन्धो! हमें दर्शन दो। हमारे प्राण निकले जा रहे हैं।'

इसी बीचमें कुछ बालक नन्दरायजीके निकट जा पहुँचे। वे अत्यन्त चञ्चल थे और शोकसे व्याकुल होकर रो रहे थे। उन्होंने शीघ्र ही यशोदाको, उनके पास बैठे हुए बलरामको तथा अन्यान्य गोपों और लाल कमलके समान नेत्रोंवाली गोपाङ्गनाओंको यह समाचार बताया। यह समाचार सुनकर वे सब-के-सब शोकसे व्याकुल हो दौड़ते हुए यमुनातटपर जा पहुँचे और बालकोंके साथ रोने लगे। सारे व्रजवासी एकत्र हो रोते-रोते शोकसे मूर्च्छित हो गये। माता यशोदा कालियदहमें प्रवेश करने लगीं। यह देख कुछ लोगोंने उन्हें रोका। गोप और गोपियाँ शोकसे अपने ही अङ्गोंको पीटने लगीं। कुछ लोग विलाप करने लगे और कितने ही व्रजवासी अपनी सुध-बुध खो बैठे। राधा भी यमुनाजीके उस कुण्डमें घुसने लगीं। यह देख कुछ स्त्रियोंने दौड़कर उन्हें रोका। वे शोकसे मूर्च्छित हो गयीं

और उस नदीके तटपर मरी हुईके समान पड़

गयीं। नन्दरायजी अत्यन्त विलाप करके बार-बार मूर्च्छित होने लगे। वे चेत होनेपर पुनः रोते तथा रो-रोकर फिर मूर्च्छित हो जाते थे। उस समय ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ बलरामजीने अत्यन्त विलाप करते हुए नन्दको, शोकसे कातर हुई यशोदाको, गोपों और गोपाङ्गनाओंको, अत्यन्त मूर्च्छित राधिकाको, रोते हुए समस्त बालकोंको तथा शोकग्रस्त हुई सम्पूर्ण गोप-बालिकाओंको धीरज बँधाते हुए समझाना आरम्भ किया।

श्रीबलदेव बोले—हे गोपो! गोपियो! और बालको! सब लोग मेरी बात सुनो। हे नन्दबाबा! ज्ञानिशिरोमणि गर्गजीकी बातोंको याद करो। जो जगत्का भार उठानेवाले शेषके भी आधारभूत हैं, संहारकारी शंकरके भी संहारक हैं; तथा विधाताके भी विधाता हैं; उनकी इस भूतलपर किससे पराजय हो सकती है? श्रीकृष्ण अणुसे भी अणु तथा परम महान् हैं। वे स्थूलसे भी स्थूल तथा परात्पर हैं। उनकी सत्ता सदा और सर्वत्र विद्यमान है; तथापि वे किसीके दृष्टिपथमें नहीं आते। वे ही योगियोंके भी सम्यक् योग हैं। श्रुतियोंने स्पष्ट कहा है कि सम्पूर्ण दिशाएँ कभी एकत्र नहीं हो सकतीं, आकाशको कोई छू नहीं सकता तथा सर्वेश्वरको कोई बाधा नहीं पहुँचा सकता। श्रीकृष्ण सबके आत्मा हैं। आत्मा किसीकी दृष्टिमें नहीं आता। उसे अस्त्रोंका निशाना नहीं बनाया जा सकता। वह न तो वधके योग्य है और न दृश्य ही है। उसे आग नहीं जला सकती और न उसकी हिंसा ही की जा सकती है। अध्यात्मतत्त्वके विज्ञाता विद्वानोंने आत्माको ऐसा ही जाना और माना है। इन श्रीकृष्णका विग्रह भक्तोंके ध्यानके लिये ही है। ये ज्योतिःस्वरूप और सर्वव्यापी हैं। इन परमात्माका आदि, मध्य और अन्त नहीं है। जब सारा ब्रह्माण्ड एकार्णवके जलमें मग्न हो जाता है तब ये श्रीकृष्ण जलमें शयन करते हैं। उस समय इनकी नाभिसे जो कमल पैदा होता है, उसीसे ब्रह्माजीका प्राकट्य होता है। जिन्हें एकार्णवके जलमें भी भय नहीं है, उन्हीं परमेश्वरके लिये इस कालियदहमें विपत्तिकी सम्भावना कितना महान् अज्ञान है? पिताजी! यदि एक मच्छर सारे ब्रह्माण्डको निगल जानेमें समर्थ हो जाय तो भी उन ब्रह्माण्डनायकको वह सर्प अपना ग्रास नहीं बना सकता। यह मैंने परम उत्तम सम्पूर्ण आध्यात्मिक ज्ञानकी बात कही है। यह गूढ़ ज्ञान योगियोंके लिये सार वस्तु है। इससे समस्त संशयोंका उच्छेद हो जाता है।

बलदेवजीकी बात सुनकर और गर्गजीके वचनोंको याद करके नन्दजीने शोक त्याग दिया। व्रजवासियों और व्रजाङ्गनाओंका भी शोक जाता रहा। सबने बलदेवजीके इस प्रबोधनको मान लिया; परंतु यशोदा और राधिकाको इससे संतोष न हुआ। प्रियजनके विरहके विषयमें मन किसी प्रकारके प्रबोधको नहीं ग्रहण करता—जबतक प्रियजनका मिलन न हो जाय, तबतक केवल समझाने-बुझानेसे मनको शान्ति नहीं मिल सकती।

मुने! इसी समय व्रजवासियों और व्रजाङ्गनाओंने

श्रीकृष्णको जलसे ऊपरको उछलते देखा। इससे उनके हर्षकी सीमा न रही। उनका शरत्कालकी पूर्णिमाके चन्द्रमाकी भाँति परम मनोहर मुख और उनकी मन्द-मन्द मुस्कराहट मनको बरबस अपनी ओर खींचे लेती थी। पानीसे निकलनेपर भी वस्त्र भीगे नहीं थे। शरीर भी आर्द्र नहीं था। भाल-देशमें चन्दन और नेत्रोंमें अञ्जनका शृङ्गार भी लुप्त नहीं हुआ था। समस्त आभूषणोंसे अलंकृत, सिरपर मोरपंखका मुकुट धारण किये और अधरोंसे मुरली लगाये अच्युत श्रीकृष्ण ब्रह्मतेजसे प्रकाशित हो रहे थे। यशोदा अपने लालाको देखते ही छातीसे लगाकर मुस्करा उठीं और उनके मुखारविन्दको चूमने लगीं। उस समय उनके नेत्र और मुख प्रसन्नतासे खिल उठे थे। नन्द, बलराम तथा रोहिणीजीने बारी-बारीसे श्यामसुन्दरको हर्षपूर्वक हृदयसे लगाया। सब लोग एकटक हो गोविन्दके श्रीमुखका दर्शन करने लगे। प्रेमसे अंधे हुए सम्पूर्ण ग्वालबालोंने श्रीहरिका आलिङ्गन किया। गोपाङ्गनाएँ नेत्र-चकोरोंद्वारा उनके मुखचन्द्रकी मधुर सुधाका पान करने लगीं।

इतनेमें ही वहाँ सहसा वनके भीतरी भागको दावानलने आवेष्टित कर लिया। उन सबके साथ गौओंका समुदाय भी उस दावाग्निसे घिर गया। वनके भीतर चारों ओर पर्वतोंके समान आगकी ऊँची-ऊँची लपटें उठने लगीं। यह देख सबने अपना नाश निकट ही समझा। उस संकटसे सब भयभीत हो उठे। उस समय सारे व्रजवासी, गोपीजन और ग्वालबाल संत्रस्त हो भक्तिसे सिर झुका दोनों हाथ जोड़कर श्रीकृष्णकी स्तुति करने लगे।

ग्वालबाल बोले—ब्रह्मन्! मधुसूदन! आपने सब आपत्तियोंमें जैसे हमारे कुलकी रक्षा की है, उसी प्रकार फिर इस दावानलसे हमें बचाइये। जगत्पते! आप ही हमारे इष्टदेवता हैं और आप ही कुलदेवता। संसारकी सृष्टि, पालन और संहार करनेवाले भी आप ही हैं। अग्नि, वरुण, चन्द्रमा, सूर्य, यम, कुबेर, वायु, ईशानादि देवता, ब्रह्मा, शिव, शेष, धर्म, इन्द्र, मुनीन्द्र, मनु, मानव, दैत्य, यक्ष, राक्षस, किन्नर तथा अन्य जो-जो चराचर प्राणी हैं, वे सब-के-सब आपकी ही विभूतियाँ हैं। उन सबके आविर्भाव और लय आपकी इच्छासे ही होते हैं। गोविन्द! हमें अभय दीजिये और इस अग्निका संहार कीजिये। हम आपकी शरणमें आये हैं। आप हम शरणागतोंको बचाइये।

यों कहकर वे सब लोग श्रीकृष्णके चरणकमलोंका चिन्तन करते हुए खड़े हो गये। श्रीकृष्णकी अमृतमयी दृष्टि पड़ते ही दावानल दूर हो गया। फिर तो वे ग्वालबाल मोदमग्न होकर नाचने लगे। क्यों न हो, श्रीहरिके स्मरणमात्रसे सब विपत्तियाँ नष्ट हो जाती हैं। जो प्रातःकाल उठकर इस परम पुण्यमय स्तोत्रका पाठ करता है, उसे जन्म-जन्ममें कभी अग्निसे भय नहीं होता। शत्रुओंसे घिर जानेपर, दावानलमें आ जानेपर, भारी विपत्तिमें पड़नेपर तथा प्राणसंकटके समय इस स्तोत्रका पाठ करके मनुष्य सब दुःखोंसे छुटकारा पा जाता है। इसमें संशय नहीं है। शत्रुओंकी सेना क्षीण हो जाती है और वह मनुष्य युद्धमें सर्वत्र विजयी होता है। वह इहलोकमें श्रीहरिकी भक्ति और अन्तमें उनके दास्य-सुखको अवश्य पा लेता है*।

---

* यथा संरक्षितं ब्रह्मन् सर्वापत्स्वेव नः कुलम् । तथा रक्षां कुरु पुनर्दावाग्नेर्मधुसूदन॥
त्वमिष्टदेवतास्माकं त्वमेव कुलदेवता । वह्निर्वा वरुणो वापि चन्द्रो वा सूर्य एव वा॥
यमः कुबेरः पवन ईशानाद्याश्च देवताः । ब्रह्मेशशेषधर्मेन्द्रा मुनीन्द्रा मनवः स्मृताः॥
मानवाश्च तथा दैत्या यक्षराक्षसकिन्नराः । ये ये चराचराश्चैव सर्वे तव विभूतयः॥
स्रष्टा पाता च संहर्ता जगतां च जगत्पते । आविर्भावस्तिरोभावः सर्वेषां च तवेच्छया॥

भगवान् श्रीनारायण कहते हैं—नारद! सुनो। दावानलसे उनका उद्धार करके श्रीहरि उन सबके साथ अपने कुबेरभवनोपम गृहमें गये। वहाँ नन्दने आनन्दपूर्वक ब्राह्मणोंको प्रचुर धनका दान किया और ज्ञातिवर्गके लोगों तथा भाई-बन्धुओंको भोजन कराया। नाना प्रकारका मङ्गलकृत्य तथा श्रीहरिनाम-कीर्तन कराया। ब्राह्मणोंद्वारा प्रसन्नतापूर्वक वेदपाठ करवाया। इस प्रकार वृन्दावनके घर-घरमें वे सब गोप श्रीकृष्णचरणारविन्दोंके चिन्तनमें चित्तको एकाग्र करके आनन्दपूर्वक रहने लगे। श्रीहरिका यह सारा मङ्गलमय चरित्र कहा गया, जो कलिकल्मषरूपी काष्ठको दग्ध करनेके लिये अग्निके समान है। (अध्याय १९)

मोहवश श्रीहरिके प्रभावको जाननेके लिये ब्रह्माजीके द्वारा गौओं, बछड़ों और बालकोंका अपहरण, श्रीकृष्णद्वारा उन सबकी नूतन सृष्टि, ब्रह्माजीका श्रीहरिके पास आना, सबको श्रीकृष्णमय देख उनकी स्तुति करके पहलेके गौओं आदिको वापस देकर अपने लोकको जाना तथा श्रीकृष्णका घरको पधारना

भगवान् श्रीनारायण कहते हैं—नारद! एक दिन बलरामसहित माधव खा-पीकर चन्दन आदिसे चर्चित हो ग्वालबालोंके साथ वृन्दावनमें गये। वहाँ भगवान् कौतूहलवश उन ग्वाल-बालोंके साथ क्रीडा करने लगे। इधर ग्वाल-बालोंका मन खेलमें लगा हुआ था, उधर उन सबकी गौएँ बहुत दूर निकल गयीं। उस समय लोकनाथ ब्रह्मा श्रीकृष्णका प्रभाव जाननेके लिये समस्त गौओं, बछड़ों और ग्वालबालोंको भी चुरा ले गये। उनका अभिप्राय जान सर्वज्ञ एवं सर्वस्रष्टा योगीन्द्र श्रीहरिने योगमायासे पुनः उन सबकी सृष्टि कर ली। दिनभर गौएँ चराकर क्रीडाकौतुकमें मन लगानेवाले श्रीहरि संध्याको बलराम और ग्वालबालोंके साथ घर गये। इस प्रकार एक वर्षतक भगवान्‌ने ऐसा ही किया। वे प्रतिदिन गौओं, ग्वालबालों तथा बलरामजीके साथ यमुनातटपर आते और संध्याके समय घरको लौट जाते थे। भगवान्‌के इस प्रभावको जानकर ब्रह्माजीका मस्तक लज्जासे झुक गया। वे भाण्डीर वटके नीचे जहाँ श्रीहरि बैठे हुए थे, आये। उन्होंने ग्वालबालोंसे घिरे हुए श्रीकृष्णको वहीं देखा, मानो नक्षत्रोंके साथ पूर्णिमाके चन्द्रदेव प्रकाशित हो रहे हों। गोविन्द रत्नमय सिंहासनपर बैठे थे और सानन्द मन्द-मन्द हँस रहे थे। उनके श्रीअङ्गोंमें पीताम्बरका परिधान शोभा पा रहा था। वे ब्रह्मतेजसे प्रकाशमान थे। उनकी बाँहोंमें रत्नोंके बने हुए बाजूबंद, कलाईमें रत्नोंके कंगन तथा पैरोंमें रत्नमय मञ्जीर शोभा दे रहे थे। दो रत्ननिर्मित कुण्डलोंकी प्रभासे उनके गण्डस्थल अत्यन्त उद्दीप्त हो रहे थे। श्यामसुन्दरका श्रीविग्रह करोड़ों कन्दर्पोंकी लावण्यलीलाका धाम था। वे मनको मोहे लेते थे। उनके श्रीअङ्ग चन्दन, अगुरु,

---

अभयं देहि गोविन्द वह्निसंहरणं कुरु । वयं त्वां शरणं यामो रक्ष नः शरणागतान्॥
इत्येवमुक्त्वा ते सर्वे तस्थुर्ध्यात्वा पदाम्बुजम् । दूरीकृतश्च दावाग्निः श्रीकृष्णामृतदृष्टितः॥
दूरीभूतेऽत्र दावाग्नौ विपत्तौ प्राणसंकटे । स्तोत्रमेतत् पठित्वा च मुच्यते नात्र संशयः॥
शत्रुसैन्यं क्षयं याति सर्वत्र विजयी भवेत् । इहलोके हरेर्भक्तिमन्ते दास्यं लभेद् ध्रुवम्॥
(१९। १७३—१८१)

कस्तूरी और कुङ्कुमसे चर्चित थे। वे पारिजातपुष्पोंकी मालाओंसे विभूषित थे। उनकी अङ्गकान्ति नूतन जलधरकी श्याम शोभाको लज्जित कर रही थी। शरीरमें नूतन यौवनका अङ्कुर प्रस्फुटित हो रहा था। मस्तकपर मोरपंखका मुकुट और उसमें मालतीकी मालाओंका संयोग बड़ा मनोहर जान पड़ता था। अपने अङ्गोंकी सौन्दर्यमयी दीप्तिसे वे आभूषणोंको भी भूषित कर रहे थे। शरत्कालकी पूर्णिमाके चन्द्रमाकी प्रभाको लूट लेनेवाले मुखकी कान्तिसे वे परम सुन्दर प्रतीत होते थे। ओठ पके बिम्बाफलकी लालीको लजा रहे थे। नुकीली नासिका पक्षिराज गरुड़की चोंचको तिरस्कृत करती थी। नेत्र शरत्कालके मध्याह्नमें खिले हुए कमलोंकी शोभाको छीने लेते थे। मुक्तापङ्क्तियोंकी शोभाको निन्दित करनेवाली दन्तपङ्क्तिसे उनके मुखकी मनोहरता बढ़ गयी थी। मणिराज कौस्तुभकी दिव्य दीप्तिसे वक्षःस्थल उद्भासित हो रहा था। उन परिपूर्णतम शान्तस्वरूप परमेश्वर राधाकान्तको देखकर ब्रह्माजीने अत्यन्त विस्मित होकर प्रणाम किया। वे बार-बार उन्हें

देखने और प्रणाम करने लगे। उन्होंने अपने हृदयकमलमें जिस रूपको देखा था, वही उन्हें बाहर भी दिखायी दिया। जो मूर्ति सामने थी, वही पीछे और अगल-बगलमें भी दृष्टिगोचर हुई। मुने! वहाँ वृन्दावनमें सब कुछ श्रीकृष्णके ही तुल्य देख जगद्गुरु ब्रह्मा उसी रूपका ध्यान करते हुए वहाँ बैठ गये। गौएँ, बछड़े, बालक, लता, गुल्म और वीरुध आदि सारा वृन्दावन ब्रह्माजीको श्यामसुन्दरके ही रूपमें दिखायी दिया। यह परम आश्चर्य देखकर ब्रह्माजीने फिर ध्यान लगाया। अब उन्हें सारी त्रिलोकी श्रीकृष्णके सिवा और कुछ भी नहीं दिखायी दी। कहाँ गये वृक्ष? कहाँ हैं पर्वत? कहाँ गयी पृथ्वी? कहाँ हैं समुद्र? कहाँ देवता? कहाँ गन्धर्व? कहाँ मुनीन्द्र और मानव? कहाँ आत्मा? कहाँ जगत्का बीज तथा कहाँ स्वर्ग और गौएँ हैं? श्रीहरिकी मायासे ब्रह्माजीने सब कुछ अपनी आँखोंसे देखा और सबको कृष्णमय पाया। कहाँ जगदीश्वर श्रीकृष्ण और कहाँ मायाकी विभूतियाँ? सबको श्रीकृष्णमय देखकर ब्रह्माजी कुछ भी बोलनेमें असमर्थ हो गये—किस तरह स्तुति करूँ? क्या करूँ? इस प्रकार मन-ही-मन विचार करके जगद्धाता ब्रह्मा वहीं बैठकर जप करनेको उद्यत हुए। उन्होंने सुखपूर्वक योगासन लगाकर दोनों हाथ जोड़ लिये। उनके सारे अङ्ग पुलकित हो गये। नेत्रोंसे अश्रुधारा बहने लगी और वे अत्यन्त दीनके समान हो गये।

तदनन्तर उन्होंने इडा, सुषुम्णा, मध्या, पिङ्गला, नलिनी और धुरा—इन छः नाड़ियोंको प्रयत्नपूर्वक योगद्वारा निबद्ध किया। तत्पश्चात् मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध और आज्ञा—इन छः चक्रोंको निबद्ध किया। फिर कुण्डलिनीद्वारा एक-एक चक्रका लङ्घन कराते हुए क्रमशः छहों चक्रोंका भेदन करके विधाता उसे ब्रह्मरन्ध्रमें ले आये। तदनन्तर उन्होंने ब्रह्मरन्ध्रको वायुसे पूर्ण किया। प्राणवायुको वहाँ निबद्ध करके पुनः उसे क्रमशः हृदयकमलमें

मध्या नाड़ीके पास ले आये। उस वायुको घुमाकर विधाताने मध्या नाड़ीके साथ संयुक्त कर दिया। ऐसा करके वे निष्पन्द (निश्चल) हो गये और पूर्वकालमें श्रीहरिने जिसका उपदेश दिया था, उस परम उत्तम दशाक्षर-मन्त्रका जप करने लगे। मुने! श्रीकृष्णके चरणारविन्दोंका ध्यान करते हुए एक मुहूर्ततक जप करनेके पश्चात् ब्रह्माने अपने हृदयकमलमें उनके सर्वतेजोमय स्वरूपको देखा। उस तेजके भीतर अत्यन्त मनोरम रूप था, दो भुजाएँ, हाथमें मुरली और पीताम्बरभूषित श्रीअङ्ग। कानोंके मूलभागमें पहने गये मकराकृति कुण्डल अपनी उज्ज्वल आभा बिखेर रहे थे। प्रसन्न मुखारविन्दपर मन्द हास्यकी छटा छा रही थी। भगवान् भक्तपर अनुग्रह करनेके लिये कातर जान पड़ते थे। ब्रह्माजीने ब्रह्मरन्ध्रमें जिस रूपको देखा और हृदयकमलमें जिसकी झाँकी की, वही रूप बाहर भी दृष्टिगोचर हुआ। वह परम आश्चर्य देखकर उन्होंने उन परमेश्वरकी स्तुति की। मुने! पूर्वकालमें एकार्णवके जलमें शयन करनेवाले श्रीहरिने ब्रह्माजीको जिस स्तोत्रका उपदेश दिया था, उसीके द्वारा विधाताने भक्तिभावसे मस्तक झुकाकर उन परमेश्वरका विधिवत् स्तवन किया।

ब्रह्माजी बोले—जो सर्वस्वरूप, सर्वेश्वर, समस्त कारणोंके भी कारण तथा सबके लिये अनिर्वचनीय हैं; उन कल्याणस्वरूप श्रीकृष्णको मैं नमस्कार करता हूँ। जिनका श्रीविग्रह नवीन मेघमालाके समान श्याम एवं सुन्दर है, जो सम्पूर्ण जीवोंमें स्थित रहकर भी उनसे लिप्त नहीं होते, जो साक्षीस्वरूप हैं, स्वात्माराम, पूर्णकाम, विश्वव्यापी, विश्वसे परे, सर्वस्वरूप, सबके बीजरूप और सनातन हैं; जो सर्वाधार, सबमें विचरनेवाले, सर्वशक्तिसम्पन्न, सर्वाराध्य, सर्वगुरु तथा सर्वमङ्गलकारण हैं। सम्पूर्ण मन्त्र जिनके स्वरूप हैं, जो समस्त सम्पदाओंकी प्राप्ति करानेवाले और श्रेष्ठ हैं; जिनमें शक्तिका संयोग और वियोग भी है; उन स्वेच्छामय प्रभुकी मैं स्तुति करता हूँ। जो शक्तिके स्वामी, शक्तिके बीज, शक्तिरूपधारी तथा घोर संसारसागरमें शक्तिमयी नौकासे युक्त हैं; उन भक्तवत्सल कृपालु कर्णधारको मैं नमस्कार करता हूँ। जो आत्मस्वरूप, एकान्तमय, लिप्त, निर्लिप्त, सगुण और निर्गुण ब्रह्म हैं; उन स्वेच्छामय परमात्माकी मैं स्तुति करता हूँ। जो सम्पूर्ण इन्द्रियोंके अधिदेवता, आवासस्थान और सर्वेन्द्रिय-स्वरूप हैं; उन विराट् परमेश्वरको मैं नमस्कार करता हूँ। जो वेद, वेदोंके जनक तथा सर्ववेदाङ्गस्वरूप हैं; उन सर्वमन्त्रमय परमेश्वरको मैं नमस्कार करता हूँ। जो सारसे सारतर द्रव्य, अपूर्व, अनिर्वचनीय, स्वतन्त्र और अस्वतन्त्र हैं; उन यशोदानन्दनका मैं भजन करता हूँ। जो सम्पूर्ण शरीरोंमें शान्तरूपसे विद्यमान हैं, किसीके दृष्टिपथमें नहीं आते, तर्कके अविषय हैं, ध्यानसे वशमें होनेवाले नहीं हैं तथा नित्य विद्यमान हैं; उन योगीन्द्रोंके भी गुरु गोविन्दका मैं भजन करता हूँ। जो रासमण्डलके मध्यभागमें विराजमान होते हैं, रासोल्लासके लिये सदा उत्सुक रहते हैं तथा गोपाङ्गनाएँ सदा जिनकी सेवा करती हैं; उन राधावल्लभको मैं नमस्कार करता हूँ। जो साधु पुरुषोंकी दृष्टिमें सदैव सत् और असाधु पुरुषोंके मतमें सदा ही असत् हैं, भगवान् शिव जिनकी सेवा करते हैं; उन योगसाध्य योगीश्वर श्रीहरिको मैं प्रणाम करता हूँ। जो मन्त्रबीज, मन्त्रराज, मन्त्रदाता, फलदाता, फलरूप, मन्त्रसिद्धिस्वरूप तथा परात्पर हैं; उन श्रीकृष्णको मैं नमस्कार करता हूँ। जो सुख-दुःख, सुखद-दुःखद, पुण्य, पुण्यदायक, शुभद और शुभ बीज हैं; उन परमेश्वरको मैं प्रणाम करता हूँ।

इस प्रकार स्तुति करके ब्रह्माजीने गौओं और बालकोंको लौटा दिया तथा पृथ्वीपर दण्डकी भाँति पड़कर रोते हुए प्रणाम किया। मुने! तदनन्तर जगत्स्रष्टाने आँखें खोलकर श्रीहरिके दर्शन किये। जो ब्रह्माजीके द्वारा किये गये इस

स्तोत्रका प्रतिदिन भक्तिभावसे पाठ करता है, वह इहलोकमें सुख भोगकर अन्तमें श्रीहरिके धाममें जाता है। वहाँ उसे अनुपम दास्यसुख तथा उन परमेश्वरके निकट स्थान प्राप्त होता है। श्रीकृष्णका सांनिध्य पाकर वह पार्षदशिरोमणि बन जाता है।

भगवान् नारायण कहते हैं—तदनन्तर जगत्-विधाता ब्रह्मा जब ब्रह्मलोकमें चले गये, तब भगवान् श्रीकृष्ण ग्वालबालोंके साथ अपने घरको गये। उस दिन गौओं, बछड़ों और ग्वालबालोंने एक वर्षके बाद अपने घरपर पदार्पण किया था; किंतु श्रीकृष्णकी मायासे उन सबने उस एक वर्षके अन्तरको एक दिनका ही अन्तर समझा। गोप और गोपियाँ उस समय कुछ भी अनुमान न लगा सकीं। (पहलेके मायारचित बालकोंमें और आजके वास्तविक बालकोंमें उन्हें कोई अन्तर नहीं जान पड़ा।) योगीके लिये तो क्या नया और क्या पुराना, सारा जगत् कृत्रिम ही है। इस प्रकार श्रीकृष्णका यह सारा शुभ चरित्र कहा गया—जो सुखद, मोक्षप्रद, पुण्यमय तथा सर्वकालमें सुख देनेवाला है। (अध्याय २०)

नन्दद्वारा इन्द्रयागकी तैयारी, श्रीकृष्णद्वारा इसके विषयमें जिज्ञासा, नन्दजीका उत्तर और श्रीकृष्णद्वारा प्रतिवाद, श्रीकृष्णकी आज्ञाके अनुसार इन्द्रका यजन न करके गोपोंद्वारा ब्राह्मणों और गिरिराजका पूजन, उत्सवकी समाप्तिपर इन्द्रका कोप, नन्दद्वारा इन्द्रकी स्तुति, श्रीकृष्णका नन्दको इन्द्रकी स्तुतिसे रोककर सब व्रजवासियोंको गौओंसहित गोवर्धनकी गुफामें स्थापित करके पर्वतको दण्डकी भाँति उठा लेना; इन्द्र, देवताओं तथा मेघोंका स्तम्भन कर देना, पराजित इन्द्रद्वारा श्रीकृष्णकी स्तुति, श्रीकृष्णका उन्हें विदा करके पर्वतको स्थापित कर देना तथा नन्दद्वारा श्रीकृष्णका स्तवन

भगवान् नारायण कहते हैं—मुने! एक दिन आनन्दयुक्त नन्दने व्रजमें इन्द्रयज्ञकी तैयारी करके सब ओर ढिंढोरा पिटवाया। उस समय सबको यह संदेश दिया गया कि जो-जो इस नगरमें गोप, गोपी, बालक, बालिका, ब्राह्मण, वैश्य और शूद्र निवास करते हैं; वे सब लोग भक्तिपूर्वक दही, दूध, घी, तक्र, माखन, गुड़ और मधु आदि सामग्री लेकर इन्द्रकी पूजा करें। इस प्रकार घोषणा कराकर उन्होंने स्वयं ही प्रसन्नतापूर्वक सुविस्तृत रमणीय स्थानमें यष्टिका-आरोपण किया (ध्वजाके लिये बाँस गड़वाया)। उसमें रेशमी वस्त्र और मनोहर मालाएँ लगवायीं। चन्दन, अगुरु, कस्तूरी और कुङ्कुमके द्रवसे उस यष्टिको चर्चित किया गया। नन्दजीने स्नान और नित्यकर्म करके भक्तिभावसे दो धुले हुए वस्त्र धारण किये तथा पैर धोकर वे सोनेके पीढ़ेपर बैठे। उस समय नाना प्रकारके पात्रोंके साथ ब्राह्मण, पुरोहित, गोप, गोपी, बालिका तथा बालक उपस्थित हुए। इसी बीचमें वहाँ नगरनिवासी भी बहुत सामान एकत्र करके अनेक प्रकारकी भेंट-पूजा लिये आ पहुँचे। तदनन्तर ब्रह्मतेजसे जाज्वल्यमान, वेद-वेदाङ्गोंके पारङ्गत विद्वान् एवं शान्त-स्वभाव—गर्ग, जैमिनि, कृष्णद्वैपायन आदि बहुत-से मुनिगण शिष्योंसहित वहाँ पधारे। और भी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, बन्दी, भिक्षुक आदि आये। गोपराज नन्दने उठकर सभीका यथायोग्य प्रणामादिद्वारा स्वागत-सत्कार किया। तत्पश्चात् यष्टिके समीप ही निपुण रसोइया ब्राह्मण

पाक करने लगे। रत्नद्वीपोंकी तथा धूपकी जगमगाहट और सुगन्धि चारों ओर फैल गयी। पुष्पमालाओंसे स्थान सुसज्जित हो गये। भाँति-भाँतिकी मिठाई, पक्वान्न, मीठे फल, हजारों-लाखों घड़े दूध, दही, घृत, मधु, मक्खन आदि इकट्ठे हो गये। सुरीले बाजे बजने लगे। नाना प्रकारके सोने-चाँदीके पात्र, श्रेष्ठ वस्त्र, आभूषण, स्वर्णपीठ आदि लाये गये। सभी चीजें अगणित थीं। नृत्यगीत होने लगे।

इसी बीच बलशाली बलराम तथा ग्वाल-बालोंके साथ साक्षात् श्रीहरि शीघ्रतापूर्वक वहाँ आये। उन्हें देखकर सब लोग हर्षसे खिल उठे और उठकर खड़े हो गये। श्रीकृष्ण क्रीडास्थानसे लौटकर आ रहे थे। उनका शान्त सुन्दर विग्रह बड़ा मनोहर था। विनोदकी साधनभूत मुरली, वेणु और शृङ्ग नामक वाद्योंकी ध्वनि उनके साथ सुनायी देती थी। रत्नोंके सार-तत्त्वसे निर्मित आभूषणों तथा कौस्तुभमणिसे वे विभूषित थे। उनका श्याम मनोहर शरीर अगुरु एवं चन्दनपङ्कसे चर्चित था। वे रत्नमय दर्पणमें शरद्ऋतुके मध्याह्नकालमें प्रफुल्ल कमलके समान अपने मनोहर मुखको देख रहे थे। भालदेशमें कस्तूरीकी बेंदीके साथ पूर्णिमाके चन्द्रमाकी भाँति मनोहर चन्दन लगा था। इससे उनका ललाट चन्द्रदेवसे अलंकृत आकाशकी भाँति शोभा पा रहा था। श्याम कण्ठ और वक्षःस्थल मालतीकी मालासे उज्ज्वल कान्ति धारण कर रहा था, मानो अत्यन्त निर्मल शरत्कालिक आकाश बगुलोंकी पंक्तिसे अलंकृत हुआ हो। मनोहर पीताम्बरसे उनके श्याम विग्रहकी अनुपम शोभा हो रही थी, मानो नवीन मेघ विद्युत्की कान्तिसे निरन्तर उद्भासित हो रहा हो। मस्तकपर एक ओर झुका हुआ टेढ़ा मोरमुकुट कुन्दके फूलों और गुञ्जाओंकी मालासे आबद्ध था, मानो आकाश नक्षत्रों तथा इन्द्र-धनुषसे सुशोभित हो रहा हो। उनका मुस्कराता हुआ मुख रत्नमय कुण्डलोंकी दीप्तिसे ऐसा दमक रहा था, मानो शरद्ऋतुका प्रफुल्ल कमल सूर्यदेवकी किरणोंसे उद्दीप्त हो रहा हो। जगदीश्वर श्रीकृष्ण उनके बीचमें रत्नमय सिंहासनपर बैठे, मानो शरत्कालके चन्द्रमा तारामण्डलके बीचमें भासमान हो रहे हों। वह महोत्सव देखकर नीतिशास्त्रविशारद श्रीहरिने पितासे तत्काल ऐसी नीतिपूर्ण बात कही, जो अन्य सब लोगोंके लिये दुर्लभ थी।

श्रीकृष्ण बोले—उत्तम व्रतका पालन करनेवाले गोपसम्राट्! आप यहाँ क्या कर रहे हैं? आपके आराध्य देवता कौन हैं? इस पूजाका क्या स्वरूप है और इस प्रकार पूजन करनेपर कौन-सा फल

प्राप्त होता है? इस फलसे कौन-सा साधन सुलभ होता है और उस साधनसे भी कौन-सा मनोरथ सिद्ध होता है? यदि पूजामें भी विघ्न पड़ जाय और देवता रुष्ट हो जायँ तो क्या होता है? अथवा यदि देवता संतुष्ट हों तो वे इहलोक और परलोकमें कौन-सा फल देते हैं?

विप्ररूपधारी श्रीहरि नैवेद्यको साक्षात् ग्रहण करते हैं; अतः ब्राह्मणके संतुष्ट होनेपर सब देवता संतुष्ट हो जाते हैं। जो ब्राह्मणके पूजनमें लगा

हुआ है, उसके लिये देवपूजाकी क्या आवश्यकता है? जिसने ब्राह्मणोंकी पूजा की है, उसने सम्पूर्ण देवताओंकी पूजा सम्पन्न कर ली। देवताको नैवेद्य देकर जो ब्राह्मणको नहीं देता है, उसका वह नैवेद्य भस्मीभूत होता है और पूजन निष्फल हो जाता है। देवताका नैवेद्य यदि ब्राह्मणको दिया जाय तो उस दानसे वह निश्चय ही अक्षय हो जाता है और उस अवस्थामें देवता संतुष्ट होकर दाताको अभीष्ट वरदान दे अपने धामको जाते हैं। जो मूढ़ देवताको नैवेद्य अर्पित करके ब्राह्मणके दिये बिना स्वयं खा लेता है, वह दत्तापहारी (देकर छीन लेनेवाला) है और देवताकी वस्तु खाकर नरकमें पड़ता है। जो भगवान् विष्णुको अर्पित न किया गया हो, वह अन्न विष्ठा और जल मूत्रके समान है। यह क्रम सभीके लिये है; परंतु ब्राह्मणोंके लिये विशेषरूपसे इसपर ध्यान देना उचित है। यदि नैवेद्य अथवा भोज्य वस्तु देवताको न देकर ब्राह्मणको दे दी गयी तो देवता ब्राह्मणके मुखमें ही उसे खाकर संतुष्ट हो स्वर्गलोकको लौट जाते हैं; अतः पिताजी! आप सारी शक्ति लगाकर ब्राह्मणोंका पूजन कीजिये; क्योंकि वे इहलोक और परलोकमें भी उत्तम फलके दाता हैं। जो श्रीहरिकी आराधना करनेवाले ब्राह्मण हैं, वे उन्हें प्राणोंसे भी अधिक प्रिय हैं। हरिभक्त ब्राह्मणोंका प्रभाव श्रुतिमें दुर्लभ है। उनके चरणकमलोंकी धूलिसे पृथ्वी तत्काल पवित्र हो जाती है। उनका जो चरणचिह्न है, उसीको तीर्थ कहा गया है। उनके स्पर्शमात्रसे तीर्थोंका पाप नष्ट हो जाता है। उनके आलिङ्गन, श्रेष्ठ वार्तालाप, दर्शन और स्पर्शसे भी मनुष्य समस्त पापोंसे छुटकारा पा जाता है। सम्पूर्ण तीर्थोंमें भ्रमण और स्नान करनेसे जो पुण्य प्राप्त होता है, वह हरिभक्त ब्राह्मणके दर्शनमात्रसे सुलभ हो जाता है। मनुष्यको चाहिये कि वह पुण्यके लिये समस्त जीवोंको अन्न दे; परंतु विशिष्ट जीवोंको अन्न-दान करनेसे विशिष्ट फलकी प्राप्ति होती है। भगवान् विष्णु ब्राह्मणोंके भक्त हैं। उन्हें उत्तम वस्तुका दान करनेसे दाताको जो फल मिलता है, वह निश्चय ही भक्त ब्राह्मणको भोजन करानेमात्रसे मिल जाता है। भक्तके संतुष्ट होनेपर श्रीहरि संतुष्ट होते हैं और श्रीहरिके संतुष्ट होनेपर सब देवता सिद्ध हो जाते हैं। ठीक उसी तरह जैसे वृक्षकी जड़ सींचनेसे उसकी शाखाएँ भी पुष्ट होती हैं। यदि ये सब संचित द्रव्य आप किसी एक देवताको देते हैं तो अन्य सब देवता रुष्ट हो जायँगे। उस दशामें एक देवता क्या करेगा? मेरी सम्मति तो यह है कि यहाँ जितनी वस्तुएँ प्रस्तुत हैं, उनका आधा भाग आप श्रीगोवर्धनदेवको दे दीजिये। वे गौओंकी सदा वृद्धि करते हैं; इसलिये उनका नाम 'गोवर्धन' हुआ है। पिताजी! इस भूतलपर गोवर्धनके समान पुण्यवान् दूसरा कोई नहीं है; क्योंकि वे नित्यप्रति गौओंको नयी-नयी घास देते हैं। तीर्थस्थानोंमें जाकर स्नान-दानसे जो पुण्य प्राप्त होता है; ब्राह्मणोंको भोजन करानेसे जिस पुण्यकी प्राप्ति होती है, सम्पूर्ण व्रत-उपवास, सब तपस्या, महादान तथा श्रीहरिकी आराधना करनेपर जो पुण्य सुलभ होता है, सम्पूर्ण पृथ्वीकी परिक्रमा, सम्पूर्ण वेदवाक्योंके स्वाध्याय तथा समस्त यज्ञोंकी दीक्षा ग्रहण करनेपर मनुष्य जिस पुण्यको पाता है; वही पुण्य बुद्धिमान् मानव गौओंको घास देकर पा लेता है*।

जो घास चरती हुई गायको स्वेच्छापूर्वक

---

*तीर्थस्नानेषु यत्पुण्यं यत्पुण्यं विप्रभोजने। सर्वव्रतोपवासेषु सर्वेष्वेव तपःसु च॥
यत्पुण्यं च महादाने यत्पुण्यं हरिसेवने। भुवः पर्यटने यत्तु वेदवाक्येषु यद्भवेत्॥
यत्पुण्यं सर्वयज्ञेषु दीक्षायां च लभेन्नरः। तत्पुण्यं लभते प्राज्ञो गोभ्यो दत्त्वा तृणानि च॥
(२१। ८७—८९)

चरनेसे रोकता है, उसे ब्रह्महत्याका पाप लगता है तथा वह प्रायश्चित्त करनेपर ही शुद्ध होता है। पिताजी! सब देवता गौओंके अङ्गोंमें, सम्पूर्ण तीर्थ गौओंके पैरोंमें तथा स्वयं लक्ष्मी उनके गुह्य स्थानों (मल-मूत्रके स्थानों)-में सदा वास करती हैं। जो मनुष्य गायके पद-चिह्नसे युक्त मिट्टीद्वारा तिलक करता है, उसे तत्काल तीर्थस्नानका फल मिलता है और पग-पगपर उसकी विजय होती है। गौएँ जहाँ भी रहती हैं, उस स्थानको तीर्थ कहा गया है। वहाँ प्राणोंका त्याग करके मनुष्य तत्काल मुक्त हो जाता है, इसमें संशय नहीं है। जो नराधम ब्राह्मणों तथा गौओंके शरीरपर प्रहार करता है; निःसंदेह उसे ब्रह्महत्याके समान पाप लगता है। जो नारायणके अंशभूत ब्राह्मणों तथा गौओंका वध करते हैं, वे मनुष्य जबतक चन्द्रमा और सूर्यकी सत्ता है, तबतकके लिये कालसूत्र नामक नरकमें जाते हैं*।

नारद! ऐसा कहकर श्रीकृष्ण चुप हो गये। तब आनन्दयुक्त नन्दने मुस्कराते हुए उनसे कहा।

नन्द बोले—बेटा! यह महात्मा महेन्द्रकी पूजा है, जो पूर्वपरम्परासे चली आ रही है। यह सुवृष्टिका साधन है और इससे सब प्रकारके मनोहर शस्योंकी उत्पत्ति ही साध्य है। शस्य ही प्राणियोंके प्राण हैं। शस्यसे ही जीवधारी जीवन-निर्वाह करते हैं। इसलिये व्रजवासी लोग पूर्व पीढ़ियोंके क्रमसे महेन्द्रकी पूजा करते चले आ रहे हैं। यह महान् उत्सव वर्षके अन्तमें होता है। विघ्न-बाधाओंकी निवृत्ति और कल्याणकी प्राप्ति ही इसका उद्देश्य है।

नन्दजीकी यह बात सुनकर बलरामसहित श्रीकृष्ण जोर-जोरसे हँसने लगे और पुनः प्रसन्नतापूर्वक पितासे बोले।

श्रीकृष्णने कहा—तात! आज मैंने आपके मुखसे बड़ी विचित्र और अद्भुत बात सुनी है। इसका कहीं भी निरूपण नहीं किया गया है कि इन्द्रसे वृष्टि होती है। आज आपके मुखसे अपूर्व नीतिवचन सुननेको मिला है। सूर्यसे जल उत्पन्न होता है और जलसे शस्य एवं वृक्ष उत्पन्न होते और बढ़ते हैं। उनसे अन्न और फल पैदा होते हैं तथा उन अन्नों और फलोंसे जीवधारी जीवननिर्वाह करते हैं। सूर्य अपनी किरणोंद्वारा जो धरतीका जल सोख लेते हैं, वर्षाकालमें उसी जलका उनसे प्रादुर्भाव होता है। सूर्य और मेघ आदि सबका विधाताद्वारा निरूपण होता है। पञ्चाङ्गोंके अनुसार जिस वर्षमें जो मेघ गज और समुद्र माने गये हैं, जो शस्याधिपति राजा और मन्त्री निश्चित किये गये हैं; उन सबका विधाताद्वारा ही निरूपण हुआ है। प्रत्येक वर्षमें जल, शस्य तथा तृणोंकी आढक-संख्या निश्चित की जाती है, उस निश्चयके अनुसार वर्ष-वर्षमें, युग-युगमें और कल्प-कल्पमें वे सारी बातें घटित होती हैं। ईश्वरकी इच्छासे ही जल आदिका आविर्भाव होता है। उसमें कोई बाधा नहीं पड़ती। तात! भूत, वर्तमान और भविष्य तथा महान्, क्षुद्र और मध्यम—जिस कर्मका विधाताने निरूपण किया है, उसका कौन निवारण कर सकता है? ईश्वरकी आज्ञासे ही ब्रह्माजीने सम्पूर्ण चराचर जगत्का निर्माण किया है। पहले भोजनकी

---

* भुक्तवन्तीं तृणं यश्च गां वारयति कामतः। ब्रह्महत्या भवेत् तस्य प्रायश्चित्ताद् विशुध्यति॥
सर्वे देवा गवामङ्गे तीर्थानि तत्पदेषु च। तद्गुह्येषु स्वयं लक्ष्मीस्तिष्ठत्येव सदा पितः॥
गोष्पदाक्तमृदा यो हि तिलकं कुरुते नरः। तीर्थस्नातो भवेत् सद्यो जयस्तस्य पदे पदे॥
गावस्तिष्ठन्ति यत्रैव तत्तीर्थं परिकीर्तितम्। प्राणांस्त्यक्त्वा नरस्तत्र सद्यो मुक्तो भवेद् ध्रुवम्॥
ब्राह्मणानां गवामङ्गं यो हन्ति मानवाधमः। ब्रह्महत्यासमं पापं भवेत् तस्य न संशयः॥
नारायणांशान् विप्रांश्च गाश्च ये घ्नन्ति मानवाः। कालसूत्रं च ते यान्ति यावच्चन्द्रदिवाकरौ॥
(२१। ९०—९५)

व्यवस्था होती है, उसके बाद जीव प्रकट होता है। बारंबार ऐसा होनेसे ही इस नियत व्यवस्थाको स्वभाव कहते हैं। स्वभावसे कर्म होता है और कर्मके अनुसार जीवधारियोंको सुख-दुःखका भोग प्राप्त होता है। यातना, जन्म-मरण, रोग-शोक, भय, उत्पत्ति, विपत्ति, विद्या, कविता, यश, अपयश, पुण्य, स्वर्गवास, पाप, नरकनिवास, भोग, मोक्ष और श्रीहरिका दास्य—ये सब मनुष्योंको कर्मके अनुसार उपलब्ध होते हैं। ईश्वर सबके जनक हैं। शील और कर्मोंका अभ्यास विधाताके लिये भी फलदाता होता है। सब कुछ ईश्वरकी इच्छासे ही सम्भव होता है। विराट् पुरुषसे प्रकृति, पञ्चतत्त्व, जगत्, कूर्म, शेष, धरणी तथा ब्रह्मासे लेकर कीटपर्यन्त सम्पूर्ण चराचर पदार्थोंका निर्माण हुआ है। जिनकी आज्ञासे वायु कूर्मको, कूर्म शेषको, शेष अपने मस्तकपर वसुधाको और वसुधा सम्पूर्ण चराचर जगत्को धारण करती है; जिनके आदेशसे जगत्के प्राणस्वरूप समीरण सदा तीनों लोकोंमें बहते रहते हैं, उत्तम प्रभाके धाम सूर्य समस्त भूगोलका भ्रमण करते हुए तपा करते हैं, अग्नि जलाती है, मृत्यु समस्त जन्तुओंमें संचरित होती है और वृक्ष समयानुसार फूल एवं फल धारण करते हैं; जिनकी आज्ञासे समुद्र अपने स्थानपर विद्यमान रहते और तत्काल ही नीचे-नीचे निमग्न हो जाते हैं; उन परमेश्वरका ही आप भक्तिभावसे भजन कीजिये। इन्द्र क्या कर सकता है? जिनके भ्रूभङ्गकी लीलामात्रसे आजतक कितने ही ब्रह्माण्ड पैदा हुए और कालके गालमें चले गये तथा कितने ही विधाता उत्पन्न होकर नष्ट हो गये। वे परमेश्वर ही मृत्युकी भी मृत्यु, कालके भी काल तथा विधाताके भी विधाता हैं। तात! आप उन्हींकी शरण लीजिये। वे ही आपकी रक्षा करेंगे। अहो! जिनके एक दिन-रातमें अट्ठाईस इन्द्रोंका पतन होता है, ऐसे एक सौ आठ ब्रह्माओंका उन निर्गुण परमात्मा श्रीहरिके एक निमेषमें ही पतन हो जाता है; ऐसे परमात्माके रहते हुए इन्द्रकी पूजा विडम्बनामात्र है।

नारद! यों कहकर श्रीकृष्ण चुप हो गये। उस समय सभामें बैठे हुए महर्षियोंने भगवान्की भूरि-भूरि प्रशंसा की। नन्दके शरीरमें रोमाञ्च हो आया। वे हर्षसे उत्फुल्ल हो सभामें बैठे-बैठे नेत्रोंसे अश्रु बहाने लगे। मनुष्य यदि अपने पुत्रोंसे पराजित हों तो वे आनन्दित ही होते हैं। श्रीकृष्णकी आज्ञा मान नन्दजीने स्वस्तिवाचन किया और क्रमशः सब ब्राह्मणों एवं मुनियोंका वरण किया। उन्होंने आदरपूर्वक गिरिराज गोवर्धनकी, समागत मुनीश्वरोंकी, विद्वान् ब्राह्मणोंकी तथा गौओं और अग्निकी सानन्द पूजा की। पूजाकी समाप्ति होनेपर उस यज्ञ-महोत्सवमें नाना प्रकारके वाद्योंका तुमुल नाद होने लगा। जय-जयकारके शब्द, शङ्खध्वनि तथा हरिनामकीर्तन होने लगे। मुनिवर गर्गने वेदोंके मङ्गलकाण्डका पाठ किया। बन्दीजनोंमें श्रेष्ठ डिंडी जो कंसका प्रिय सचिव था, सामने खड़े हो उच्चस्वरसे मङ्गलाष्टकका पाठ करने लगा। श्रीकृष्ण गिरिराजके निकट जा दूसरी मूर्ति धारण करके बोले—'मैं साक्षात् गोवर्धन

पर्वत हूँ और तुम लोगोंकी दी हुई भोज्य वस्तुएँ खा रहा हूँ। तुम मुझसे वर माँगो।'

उस समय श्रीकृष्णने नन्दसे कहा—'पिताजी! सामने देखिये, गिरिराज प्रकट हुए हैं। इनसे वर माँगिये। आपका कल्याण होगा।' तब गोपराजने हरिदास्य और हरिभक्तिका वर माँगा। परोसी हुई सामग्री खाकर और वर देकर गिरिराज अदृश्य हो गये। मुनीन्द्रों और ब्राह्मणोंको भोजन कराकर गोपराजने बन्दीजनों, ब्राह्मणों और मुनियोंको धन दिया। तत्पश्चात् आनन्दयुक्त नन्द बलराम और श्रीकृष्णको आगे करके सपरिवार अपने घरको गये। उन्होंने बन्दी डिंडीको वस्त्र, चाँदी, सोना, श्रेष्ठ घोड़ा, मणि तथा नाना प्रकारके भक्ष्य पदार्थ दिये। मुनि और ब्राह्मण बलराम तथा श्रीकृष्णकी स्तुति एवं नमस्कार करके चले गये। समस्त अप्सराएँ, गन्धर्व और किन्नर भी अपने-अपने स्थानको पधारे। उस महोत्सवमें आये हुए राजा और सम्पूर्ण गोप भी श्रीकृष्णको सादर नमस्कार करके वहाँसे बिदा हो गये।

इसी समय यज्ञभङ्ग हो जानेसे अपनी अनेक प्रकारकी निन्दा सुनकर इन्द्र कुपित हो उठे। उनके ओठ फड़कने लगे। उन्होंने मरुद्गणों और मेघोंके साथ तत्काल रथपर आरूढ़ हो मनोहर नन्दनगर वृन्दावनपर आक्रमण किया। फिर युद्ध-शास्त्रमें निपुण समस्त देवता भी हाथोंमें अस्त्र-शस्त्र लिये रोषपूर्वक रथपर आरूढ़ हो उनके पीछे-पीछे गये। वायुकी सनसनाहट, मेघोंकी गड़गड़ाहट और सेनाकी भयानक गर्जनासे सारा नगर काँप उठा। नन्दको भी बड़ा भय हुआ; परंतु वे नीतिमें निपुण थे। अतः अपनी पत्नी तथा सेवकगणोंको पुकारकर निर्जन स्थानमें ले जाकर शोकसे कातर हो बोले।

नन्दजीने कहा—हे यशोदे! हे रोहिणि! इधर आओ और मेरी बात सुनो। तुम लोग राम और कृष्णको व्रजसे दूर ले जाओ। भयसे व्याकुल बालक-बालिकाएँ और स्त्रियाँ भी दूर चली जायँ। केवल बलवान् गोप मेरे पास ठहरें। फिर हम लोग इस प्राण-संकटसे निकलनेका प्रयास करेंगे।

यों कहकर गोपप्रवर नन्दने भयभीत हुए श्रीहरिका स्मरण किया। उनके दोनों हाथ जुड़ गये। भक्तिसे मस्तक झुक गया और वे काण्वशाखामें कहे गये स्तोत्रद्वारा श्रीशचीपतिकी स्तुति करने लगे।

नन्द बोले—इन्द्र, सुरपति, शक्र, अदितिज, पवनाग्रज, सहस्राक्ष, भगाङ्ग, कश्यपात्मज, विडौजा, शुनासीर, मरुत्वान्, पाकशासन, जयन्त-जनक, श्रीमान्, शचीश, दैत्यसूदन, वज्रहस्त, कामसखा, गौतमीव्रतनाशन, वृत्रहा, वासव, दधीचि-देह-भिक्षुक, जिष्णु, वामनभ्राता, पुरुहूत, पुरन्दर, दिवस्पति, शतमख, सुत्रामा, गोत्रभिद्, विभु, लेखर्षभ, बलाराति, जम्भभेदी, सुराश्रय, संक्रन्दन, दुश्च्यवन, तुराषाट्, मेघवाहन, आखण्डल, हरि, हय, नमुचिप्राणनाशन, वृद्धश्रवा, वृष तथा दैत्यदर्पनिषूदन—ये छियालीस नाम निश्चय ही समस्त पापोंका नाश करनेवाले हैं। जो मनुष्य कौथुमीशाखामें कहे गये इस स्तोत्रका प्रतिदिन पाठ करता है, उसकी बड़ी-से-बड़ी विपत्तिमें इन्द्र वज्र हाथमें लिये रक्षा करते हैं। उसे अतिवृष्टि, शिलावृष्टि तथा भयंकर वज्रपातसे भी कभी भय नहीं होता; क्योंकि स्वयं इन्द्र उसकी रक्षा करते हैं। नारद! जिस घरमें यह स्तोत्र पढ़ा जाता है और जो पुण्यवान् पुरुष इसे जानता है; उसके उस घरपर न कभी वज्रपात होता है और न ओले या पत्थर ही बरसते हैं।

भगवान् श्रीनारायण कहते हैं—नन्दके मुखसे इस स्तोत्रको सुनकर मधुसूदन श्रीकृष्ण कुपित हो गये। वे ब्रह्मतेजसे प्रज्वलित हो रहे थे। उन्होंने पितासे यह नीतिकी बात कही। तात! आप बड़े डरपोक हैं। किसकी स्तुति करते हैं? कौन हैं इन्द्र? मेरे निकट रहकर आप इन्द्रका भय छोड़

दीजिये, मैं आधे ही क्षणमें लीलापूर्वक उसे भस्म कर डालनेमें समर्थ हूँ। आप गौओं, बछड़ों, बालकों और भयातुर स्त्रियोंको गोवर्धनकी कन्दरामें रखकर निर्भय हो जाइये। अपने बच्चेकी यह बात सुनकर नन्दने प्रसन्नतापूर्वक वैसा ही किया। तब श्रीहरिने उस पर्वतको बायें हाथमें छातेके डंडेकी

भाँति धारण कर लिया। इसी समय उस नगरमें रत्नमय तेजसे प्रकाश होनेपर भी सहसा अन्धकार छा गया। सारा नगर धूलसे ढक गया। मुने! हवाके साथ बादलोंके समूहने आकर आकाशको घेर लिया और वृन्दावनमें निरन्तर अतिवृष्टि होने लगी। शिलावृष्टि, वज्रकी वृष्टि और अत्यन्त भयानक उल्कापात—ये सब-के-सब गोवर्धन पर्वतका स्पर्श होते ही दूर जा पड़ते थे। मुने! असमर्थ पुरुषके उद्यमकी भाँति इन्द्रका वह सारा उद्योग विफल हो गया। वह सब कुछ व्यर्थ होता देख इन्द्र उसी क्षण रोषसे भर गये और उन्होंने दधीचिकी हड्डियोंसे बने हुए अपने अमोघ वज्रास्त्रको हाथमें ले लिया। इन्द्रको वज्र हाथमें लिये देख मधुसूदन हँसने लगे। उन्होंने इन्द्रके हाथसहित अत्यन्त दारुण वज्रको ही स्तम्भित कर दिया। इतना ही नहीं, उन सर्वव्यापी परमात्माने देवगणोंसहित मेघको भी स्तब्ध कर दिया। वे सब-के-सब दीवारमें चित्रित पुतलियोंकी भाँति निश्चलभावसे खड़े हो गये। तदनन्तर श्रीहरिने इन्द्रको जृम्भा (जँभाई)-के वशीभूत कर दिया। फिर तो उन्हें तत्काल तन्द्रा आ गयी। उस तन्द्रामें ही उन्होंने देखा, वहाँका सारा जगत् श्रीकृष्णमय है। सभी द्विभुज हैं। सबके हाथोंमें मुरली है और सभी रत्नमय अलंकारोंसे विभूषित हैं। सबके अङ्गोंपर पीताम्बरका परिधान है। सभी रत्नमय सिंहासनपर आसीन हैं। सबके प्रसन्नमुखपर मन्द हास्यकी छटा छा रही है और सभी भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये कातर दिखायी देते हैं। उन सबके सभी अङ्ग चन्दनसे चर्चित हैं। समस्त चराचर जगत्को इस परम अद्भुत रूपमें देखकर वहाँ इन्द्र तत्काल मूर्च्छित हो गये। पूर्वकालमें गुरुने उन्हें जिस मन्त्रका उपदेश दिया था, उसका वे वहीं जप करने लगे। उस समय उन्होंने हृदयमें सहस्रदल-कमलपर विराजमान उग्र ज्योतिःपुञ्ज देखा। उस तेजोराशिके भीतर दिव्य रूपधारी, अत्यन्त मनोहर तथा नूतन जलधरके समान उत्कृष्ट श्यामसुन्दर विग्रहवाले श्रीकृष्ण दिखायी दिये। वे उत्तम रत्नोंके सारतत्त्वसे निर्मित एवं प्रकाशमान मकराकृति कुण्डलोंसे अलंकृत थे, अत्यन्त उद्दीप्त एवं श्रेष्ठ मणियोंके बने हुए मुकुटसे उनका मस्तक उद्भासित हो रहा था। प्रकाशमान उत्तम कौस्तुभरत्नसे कण्ठ और वक्षःस्थल जगमगा रहे थे। मणिनिर्मित केयूर, कंगन और मञ्जीरसे उनके हाथ-पैरोंकी बड़ी शोभा हो रही थी। भीतर और बाहर समान रूपमें ही देखकर परमेश्वर श्रीकृष्णका उन्होंने स्तवन किया।

इन्द्र बोले—जो अविनाशी, परब्रह्म, ज्योतिः-स्वरूप, सनातन, गुणातीत, निराकार, स्वेच्छामय और अनन्त हैं; जो भक्तोंके ध्यान तथा आराधनाके लिये नाना रूप धारण करते हैं; युगके

अनुसार जिनके श्वेत, रक्त, पीत और श्याम वर्ण हैं; सत्ययुगमें जिनका स्वरूप शुक्ल तेजोमय है तथा उस युगमें जो सत्यस्वरूप हैं; त्रेतामें जिनकी अङ्गकान्ति कुंकुमके समान लाल है और जो ब्रह्मतेजसे जाज्वल्यमान रहते

हैं, द्वापरमें जो पीत कान्ति धारण करके पीताम्बरसे सुशोभित होते हैं; कलियुगमें कृष्णवर्ण होकर 'कृष्ण' नाम धारण करते हैं; इन सब रूपोंमें जो एक ही परिपूर्णतम परमात्मा हैं; जिनका श्रीविग्रह नूतन जलधरके समान अत्यन्त श्याम एवं सुन्दर है; उन नन्दनन्दन यशोदाकुमार भगवान् गोविन्दकी मैं वन्दना करता हूँ। जो गोपियोंका चित्त चुराते हैं तथा राधाके लिये प्राणोंसे भी अधिक प्रिय हैं, जो कौतूहलवश विनोदके लिये मुरलीकी ध्वनिका विस्तार करते रहते हैं, जिनके रूपकी कहीं तुलना नहीं है, जो रत्नमय आभूषणोंसे विभूषित हो कोटि-कोटि कन्दर्पोंका सौन्दर्य धारण करते हैं; उन शान्त-स्वरूप परमेश्वरको मैं प्रणाम करता हूँ। जो वृन्दावनमें कहीं राधाके पास क्रीड़ा करते हैं, कहीं निर्जन स्थलमें राधाके वक्षः-स्थलपर विराजमान होते हैं, कहीं राधाके साथ जलक्रीड़ा करते हैं, कहीं वनमें राधिकाके केश-कलापोंकी चोटी गूँथते हैं, कहीं राधिकाके चरणोंमें महावर लगाते हैं, कहीं राधिकाके चबाये हुए ताम्बूलको सानन्द ग्रहण करते हैं, कहीं बाँके नेत्रोंसे देखती हुई राधाको स्वयं निहारते हैं, कहीं फूलोंकी माला तैयार करके राधिकाको अर्पित करते हैं, कहीं राधाके साथ रासमण्डलमें जाते हैं, कहीं राधाकी दी हुई मालाको अपने कण्ठमें धारण करते हैं, कहीं गोपाङ्गनाओंके साथ विहार करते हैं, कहीं राधाको साथ लेकर चल देते हैं और कहीं उन्हें भी छोड़कर चले जाते हैं। जिन्होंने कहीं ब्राह्मणपत्नियोंके दिये हुए अन्नका भोजन किया है और कहीं बालकोंके साथ ताड़का फल खाया है; जो कहीं आनन्दपूर्वक गोप-किशोरियोंके चित्त चुराते हैं, कहीं ग्वालबालोंके साथ दूर गयी हुई गौओंको आवाज देकर बुलाते हैं, जिन्होंने कहीं कालियनागके मस्तकपर अपने चरणकमलोंको रखा है और जो कहीं मौजमें आकर आनन्द- विनोदके लिये मुरलीकी तान छेड़ते हैं तथा कहीं ग्वालबालोंके साथ मधुर गीत गाते हैं; उन परमात्मा श्रीकृष्णको मैं प्रणाम करता हूँ।

इस स्तवराजसे स्तुति करके इन्द्रने श्रीहरिको भयसे प्रणाम किया। पूर्वकालमें वृत्रासुरके साथ युद्धके समय गुरु बृहस्पतिने इन्द्रको यह स्तोत्र दिया था। सबसे पहले श्रीकृष्णने तपस्वी ब्रह्माको कृपापूर्वक एकादशाक्षर-मन्त्र, सब लक्षणोंसे युक्त कवच और यह स्तोत्र दिया था। फिर ब्रह्माने पुष्करमें कुमारको, कुमारने अङ्गिराको और अङ्गिराने बृहस्पतिको इसका उपदेश दिया था। इन्द्रद्वारा किये गये इस स्तोत्रका जो प्रतिदिन भक्तिपूर्वक पाठ करता है, वह इहलोकमें श्रीहरिकी सुदृढ़ भक्ति और अन्तमें निश्चय ही उनका दास्य-सुख प्राप्त कर लेता है। जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि और

शोकसे छुटकारा पा जाता है और स्वप्नमें भी कभी यमदूत तथा यमलोकको नहीं देखता।*

भगवान् नारायण कहते हैं—इन्द्रका वचन सुनकर भगवान् लक्ष्मीनिवास प्रसन्न हो गये और उन्होंने प्रेमपूर्वक उन्हें वर देकर उस पर्वतको वहाँ स्थापित कर दिया। श्रीहरिको प्रणाम करके इन्द्र अपने गणोंके साथ चले गये; तदनन्तर गुफामें छिपे हुए लोग वहाँसे निकलकर अपने घरको गये। उन सबने श्रीकृष्णको परिपूर्णतम परमात्मा माना। व्रजवासियोंको आगे करके श्रीकृष्ण अपने घरको गये। नन्दके सम्पूर्ण अङ्गोंमें रोमाञ्च हो आया। उनके नेत्रोंमें भक्तिके आँसू भर आये और उन्होंने सनातन पूर्णब्रह्मस्वरूप अपने उस पुत्रका स्तवन किया।

नन्द बोले—जो ब्राह्मणोंके हितकारी, गौओं तथा ब्राह्मणोंके हितैषी तथा समस्त संसारका भला चाहनेवाले हैं; उन सच्चिदानन्दमय गोविन्ददेवको बारंबार नमस्कार है। प्रभो! आप ब्राह्मणोंका प्रिय करनेवाले देवता हैं; स्वयं ही ब्रह्म और परमात्मा हैं; आपको नमस्कार है। आप अनन्तकोटि ब्रह्माण्डधामोंके भी धाम हैं; आपको सादर नमस्कार है। आप मत्स्य आदि रूपोंके जीवन तथा साक्षी हैं; आप निर्लिप्त, निर्गुण और निराकार परमात्माको नमस्कार है। आपका स्वरूप अत्यन्त सूक्ष्म है। आप स्थूलसे भी अत्यन्त स्थूल हैं। सर्वेश्वर, सर्वरूप तथा तेजोमय हैं; आपको नमस्कार है। अत्यन्त सूक्ष्म-स्वरूपधारी होनेके कारण आप योगियोंके भी ध्यानमें नहीं आते हैं; ब्रह्मा, विष्णु और महेश भी आपकी वन्दना करते हैं; आप नित्य-स्वरूप परमात्माको नमस्कार है। आप चार युगोंमें चार वर्णोंका आश्रय लेते हैं; इसलिये युग-क्रमसे शुक्ल, रक्त, पीत और श्याम नामक गुणसे

---

* अक्षरं परमं ब्रह्म ज्योतीरूपं सनातनम्। गुणातीतं निराकारं स्वेच्छामयमनन्तकम्॥
भक्तध्यानाय सेवायै नानारूपधरं वरम्। शुक्लरक्तपीतश्यामं युगानुक्रमणेन च॥
शुक्लतेजःस्वरूपं च सत्ये सत्यस्वरूपिणम्। त्रेतायां कुङ्कुमाकारं ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा॥
द्वापरे पीतवर्णं च शोभितं पीतवाससा। कृष्णवर्णं कलौ कृष्णं परिपूर्णतमं प्रभुम्॥
नवधाराधरोत्कृष्टश्यामसुन्दरविग्रहम्। नन्दैकनन्दनं वन्दे यशोदानन्दनं प्रभुम्॥
गोपिकाचेतनहरं राधाप्राणाधिकं परम्। विनोदमुरलीशब्दं कुर्वन्तं कौतुकेन च॥
रूपेणाप्रतिमेनैव रत्नभूषणभूषितम्। कन्दर्पकोटिसौन्दर्यं बिभ्रतं शान्तमीश्वरम्॥
क्रीडन्तं राधया सार्धं वृन्दारण्ये च कुत्रचित्। कुत्रचिन्निर्जनेऽरण्ये राधावक्षःस्थलस्थितम्॥
जलक्रीडां प्रकुर्वन्तं राधया सह कुत्रचित्। राधिकाकबरीभारं कुर्वन्तं कुत्रचिद् वने॥
कुत्रचिद्राधिकापादे दत्तवन्तमलक्तकम्। राधाचर्वितताम्बूलं गृह्णन्तं कुत्रचिन्मुदा॥
पश्यन्तं कुत्रचिद्राधां पश्यन्तीं वक्रचक्षुषा। दत्तवन्तं च राधायै कृत्वा मालां च कुत्रचित्॥
कुत्रचिद्राधया सार्धं गच्छन्तं रासमण्डलम्। राधादत्तां गले मालां धृतवन्तं च कुत्रचित्॥
सार्धं गोपालिकाभिश्च विहरन्तं च कुत्रचित्। राधां गृहीत्वा गच्छन्तं विहाय तां च कुत्रचित्॥
विप्रपत्नीदत्तमन्नं भुक्तवन्तं च कुत्रचित्। भुक्तवन्तं तालफलं बालकैः सह कुत्रचित्॥
वस्त्रं गोपालिकानां च हरन्तं कुत्रचिन्मुदा। गवाङ्गणं व्याहरन्तं कुत्रचिद् बालकैः सह॥
कालीयमूर्ध्निपादाब्जं दत्तवन्तं च कुत्रचित्। विनोदमुरलीशब्दं कुर्वन्तं कुत्रचिन्मुदा॥
गायन्तं रम्यसंगीतं कुत्रचिद् बालकैः सह। स्तुत्वा शक्रः स्तवेन्द्रेण प्रणनाम हरिं भिया॥
पुरा दत्तेन गुरुणा रणे वृत्रासुरेण च। कृष्णेन दत्तं कृपया ब्रह्मणे च तपस्यते॥
एकादशाक्षरो मन्त्रः कवचं सर्वलक्षणम्। दत्तमेतत् कुमाराय पुष्करे ब्रह्मणा पुरा॥
कुमारोऽङ्गिरसे दत्तो गुरवेऽङ्गिरसा मुने। इदमिन्द्रकृतं स्तोत्रं नित्यं भक्त्या च यः पठेत्॥
इह प्राप्य दृढां भक्तिमन्ते दास्यं लभेद् ध्रुवम्। जन्ममृत्युजराव्याधिशोकेभ्यो मुच्यते नरः॥
न हि पश्यति स्वप्नेऽपि यमदूतं यमालयम्॥ (२१। १७६—१९६)

सुशोभित होते हैं; आपको नमस्कार है। आप योगी, योगरूप और योगियोंके भी गुरु हैं। सिद्धेश्वर, सिद्ध एवं सिद्धोंके गुरु हैं; आपको नमस्कार है। ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, शेषनाग, धर्म, सूर्य, गणेश, षडानन, सनकादि समस्त मुनि, सिद्धेश्वरोंके गुरुके भी गुरु कपिल तथा नर-नारायण ऋषि भी जिनकी स्तुति करनेमें असमर्थ हैं; उन परात्पर प्रभुका स्तवन दूसरे कौन-से जडबुद्धि प्राणी कर सकते हैं? वेद, वाणी, लक्ष्मी, सरस्वती तथा राधा भी जिनकी स्तुति नहीं कर सकतीं; उन्हींका स्तवन दूसरे विद्वान् पुरुष क्या कर सकते हैं? ब्रह्मन्! मुझसे क्षण-क्षणमें जो अपराध बन रहा है, वह सब आप क्षमा करें। करुणासिन्धो! दीनबन्धो! भवसागरमें पड़े हुए मुझ शरणागतकी रक्षा कीजिये। प्रभो! पूर्वकालमें तीर्थस्थानमें तपस्या करके मैंने आप सनातनपुरुषको पुत्ररूपमें प्राप्त किया है। अब आप मुझे अपने चरण-कमलोंकी भक्ति और दास्य प्रदान कीजिये। ब्रह्मत्व, अमरत्व अथवा सालोक्य आदि चार प्रकारके मोक्ष आपके चरणकमलोंकी दास्य-भक्तिकी सोलहवीं कलाके बराबर भी नहीं हैं; फिर इन्द्रपद, देवपद, सिद्धि-प्राप्ति, स्वर्गप्राप्ति, राजपद तथा चिरंजीवित्वको विद्वान् पुरुष किस गिनतीमें रखते हैं? (क्या समझते हैं?) ईश्वर! यह सब जो पूर्वकथित ब्रह्मत्व आदि पद हैं, वे आपके भक्तके आधे क्षणके लिये प्राप्त हुए सङ्गकी क्या समानता कर सकते हैं! कदापि नहीं। जो आपका भक्त है, वह भी आपके समान हो जाता है। फिर आपके महत्त्वका अनुमान कौन लगा सकता है? आपका भक्त आधे क्षणके वार्तालापमात्रसे किसीको भी भवसागरसे पार कर सकता है। आपके भक्तोंके सङ्गसे भक्तिका विविध अङ्कुर अवश्य उत्पन्न होता है। उन हरिभक्तरूप मेघोंके द्वारा की गयी वार्तालापरूपी जलकी वर्षासे सींचा जाकर भक्तिका वह अङ्कुर बढ़ता है। जो भगवान्‌के भक्त नहीं हैं, उनके आलापरूपी तापसे वह अङ्कुर तत्काल सूख जाता है और भक्त एवं भगवान्‌के गुणोंकी स्मृतिरूपी जलसे सींचनेपर वह उसी क्षण स्पष्टरूपसे बढ़ने लगता है। उनमें उत्पन्न आपकी भक्तिका अङ्कुर जब प्रकट होकर भलीभाँति बढ़ जाता है, तब वह नष्ट नहीं होता। उसे प्रतिदिन और प्रतिक्षण बढ़ाते रहना चाहिये। तदनन्तर उस भक्तको ब्रह्मपदकी प्राप्ति कराकर भी उसके जीवनके लिये भगवान् उसे अवश्य ही परम उत्तम दास्यरूप फल प्रदान करते हैं। यदि कोई दुर्लभ दास्यभावको पाकर भगवान्‌का दास हो गया तो निश्चय ही उसीने समस्त भय आदिको जीता है।

यों कहकर नन्द श्रीहरिके सामने भक्तिभावसे खड़े हो गये। तब प्रसन्न हुए श्रीकृष्णने उन्हें मनोवाञ्छित वर दिया। इस प्रकार नन्दद्वारा किये गये स्तोत्रका जो भक्तिभावसे प्रतिदिन पाठ करता है, वह शीघ्र ही श्रीहरिकी सुदृढ़ भक्ति और दास्यभाव प्राप्त कर लेता है। जब द्रोण नामक वसुने अपनी पत्नी धराके साथ तीर्थमें तपस्या की, तब ब्रह्माजीने उन्हें यह परम दुर्लभ स्तोत्र प्रदान किया था। सौभरिमुनिने पुष्करमें संतुष्ट होकर ब्रह्माजीको श्रीहरिका षडक्षर-मन्त्र तथा सर्वरक्षणकवच प्रदान किया था। वही कवच, वही स्तोत्र और वही परम दुर्लभ मन्त्र ब्रह्माके अंशभूत गर्गमुनिने तपस्यामें लगे हुए नन्दको दिया था। पूर्वकालमें जिसके लिये जो मन्त्र, स्तोत्र, कवच, इष्टदेव, गुरु और विद्या प्राप्त होती है, वह पुरुष उस मन्त्र आदि तथा विद्याको निश्चय ही नहीं छोड़ता है। इस प्रकार यह श्रीकृष्णका अद्भुत आख्यान और स्तोत्र कहा गया, जो सुखद, मोक्षप्रद, सब साधनोंका सारभूत तथा भवबन्धनको छुटकारा दिलानेवाला है। (अध्याय २१)

ग्वाल-बालोंका श्रीकृष्णकी आज्ञासे तालवनके फल तोड़ना, धेनुकासुरका आक्रमण, श्रीकृष्णके स्पर्शसे उसे पूर्वजन्मकी स्मृति और उसके द्वारा श्रीकृष्णका स्तवन, वैष्णवी मायासे पुनः उसे स्वरूपकी विस्मृति, फिर श्रीहरिके साथ उसका युद्ध और वध, बालकों-द्वारा सानन्द फल-भक्षण तथा सबका घरको प्रस्थान

भगवान् नारायण कहते हैं—नारद! एक दिन राधिकानाथ श्रीकृष्ण बलराम तथा ग्वाल-बालोंके साथ उस तालवनमें गये, जो पके फलोंसे भरा हुआ था। उन तालवृक्षोंकी रक्षा गर्दभरूपधारी एक दैत्य करता था, जिसका नाम धेनुक था। उसमें करोड़ों सिंहोंके समान बल था। वह देवताओंके दर्पका दलन करनेवाला था। उसका शरीर पर्वतके समान और दोनों नेत्र कूपके तुल्य थे। उसके दाँत हरिसकी पाँतके समान और मुँह पर्वतकी कन्दराके सदृश था। उसकी चञ्चल एवं भयानक जीभ सौ हाथ लंबी थी। नाभि तालाबके समान जान पड़ती थी। उसका शब्द बड़ा भयंकर होता था। तालवनको सामने देख उन श्रेष्ठ ग्वाल-बालोंको बड़ा हर्ष हुआ। उनके मुखारविन्दपर मुस्कराहट छा गयी। वे कौतुकवश श्रीकृष्णसे बोले।

बालकोंने कहा—हे श्रीकृष्ण! हे करुणासिन्धो! हे दीनबन्धो! आप सम्पूर्ण जगत्के पालक हैं। महाबली बलरामजीके भाई हैं तथा समस्त बलवानोंमें श्रेष्ठ हैं। प्रभो! आधे क्षणके लिये हमारे निवेदनपर ध्यान दीजिये। भक्तवत्सल! हम आपके भक्त-बालकोंको बड़ी भूख लगी है। इधर सामने ही स्वादिष्ट फल और सुन्दर ताल-फल हैं, उनकी ओर दृष्टिपात कीजिये। हम इन फलोंको तोड़नेके लिये वृक्षोंको हिलाना और नाना रंगोंके फूलों तथा दुर्लभ पके फलोंको गिराना चाहते हैं। श्रीकृष्ण! यदि आप आज्ञा दें तो हम ऐसी चेष्टा कर सकते हैं; परंतु इस वनमें गर्दभरूपधारी बलवान् दैत्य धेनुक रहता है, जिसपर सम्पूर्ण देवता भी विजय नहीं पा सके हैं। वह महान् बल-पराक्रमसे सम्पन्न है। सब देवता मिलकर भी उसे रोकनेमें सफल नहीं हो पाते। यह राजा कंसका महान् सहायक है। समस्त प्राणियोंका हिंसक तथा ताल-वनोंका रक्षक है। जगत्पते! वक्ताओंमें श्रेष्ठ! आप भलीभाँति सोचकर हमसे कहिये। हम जो काम करना चाहते हैं वह उचित है या अनुचित? हम इसे करें या न करें। बालकोंकी यह बात सुनकर भगवान् मधुसूदन उनसे मधुर वाणीमें सुखदायक वचन बोले।

श्रीकृष्णने कहा—ग्वाल-बालो! तुम लोग तो मेरे साथी हो, तुम्हें दैत्योंसे क्या भय है? वृक्षोंको तोड़कर हिलाकर जैसे चाहो, बेखटके इन फलोंको खाओ।

श्रीकृष्णकी आज्ञा पाकर बलशाली गोपबालक उछले और वृक्षोंके शिरोंपर चढ़ गये। वे भूखे थे; इसलिये फल लेना चाहते थे। नारद! उन्होंने अनेक रंगके स्वादिष्ट, सुन्दर और पके हुए फल गिराये। कितने ही बालकोंने वृक्ष तोड़ डाले, कितनोंने उन्हें बारंबार हिलाया। कई बालक वहाँ कोलाहल करने लगे और कितने ही नाचने लगे। वृक्षोंसे उतरकर वे बलशाली बालक जब फल लेकर जाने लगे, तब उन्होंने उस गर्दभरूपधारी महाबली, महाकाय, घोर दैत्यशिरोमणि धेनुकको बड़े वेगसे आते देखा। वह भयंकर शब्द कर रहा था। उसे देखकर सब बालक रोने लगे। उन्होंने भयके कारण फल त्याग दिये और बारंबार जोर-जोरसे 'कृष्ण-कृष्ण' का कीर्तन आरम्भ कर

दिया। वे बोले—'हे करुणानिधान कृष्ण! आओ हमारी रक्षा करो। हे संकर्षण! हमें बचाओ, नहीं तो इस दानवके हाथसे अब हमारे प्राण जा रहे हैं। हे कृष्ण! हे कृष्ण! हरे! मुरारे! गोविन्द! दामोदर! दीनबन्धो! गोपीश! गोपेश! अनन्त! नारायण! भवसागरमें डूबते हुए हम लोगोंकी रक्षा करो, रक्षा करो। दीननाथ! भय-अभयमें, शुभ-अशुभ अथवा सुख और दुःखमें तुम्हारे सिवा दूसरा कोई हमें शरण देनेवाला नहीं है। हे माधव! भवसागरमें हमारी रक्षा करो, रक्षा करो। गुणसागर श्रीकृष्ण! तुम्हीं भक्तोंके एकमात्र बन्धु हो। हम बालक बहुत भयभीत हैं। हमारी रक्षा करो, रक्षा करो। यह दानव-कुलका स्वामी हमारा काल बनकर आ पहुँचा है। आप इसका वध कीजिये और इसे मारकर देवताओंके बल-दर्पको बढ़ाइये।'

बालकोंकी व्याकुलता देखकर भयहन्ता भक्तवत्सल माधव बलरामजीके साथ उस स्थानपर आये, जहाँ वे बालक खड़े थे। 'कोई भय नहीं है, कोई भय नहीं है'—यों कहकर वे शीघ्रतापूर्वक उनके पास दौड़े आये और मन्द मुस्कानसे युक्त प्रसन्नमुखद्वारा उन्होंने उन बालकोंको अभय दान दिया। श्रीकृष्ण और बलरामको देखकर बालक हर्षसे नाचने लगे। उनका भय दूर हो गया। क्यों न हो, भगवान्‌की स्मृति ही अभयदायिनी तथा सब प्रकारसे मङ्गल प्रदान करनेवाली है। बालकोंको निगल जानेको उद्यत हुए उस दानवको देख मधुसूदन श्रीकृष्णने महाबली बलरामको सम्बोधित करके कहा।

श्रीकृष्ण बोले—भैया! यह दानव राजा बलिका बलवान् पुत्र है। इसका नाम साहसिक है। पूर्वकालमें दुर्वासाने इसे शाप दिया था। उस ब्रह्मशापसे ही यह गदहा हुआ है। यह बड़ा पापी तथा महान् बल-पराक्रमसे सम्पन्न है; अतः मेरे ही हाथसे वधके योग्य है। मैं इसका वध करूँगा। तुम बालकोंकी रक्षा करो। सब बालकोंको लेकर दूर चले जाओ।

तब बलराम उन बालकोंको लेकर श्रीकृष्णकी आज्ञाके अनुसार शीघ्र ही दूर चले गये। इधर इस महाबली एवं महापराक्रमी दानवराजने श्रीकृष्णपर दृष्टि पड़ते ही उन्हें रोषपूर्वक अनायास ही निगल लिया। श्रीकृष्ण प्रज्वलित अग्नि-शिखाके समान थे। उन्हें निगल लेनेपर उस दानवके भीतर बड़ी जलन होने लगी। उनके अतिशय तेजसे वह मरणासन्न हो गया। तब उस दैत्यने भयभीत हो उन तेजस्वी प्रभुको फिर उगल दिया। परित्यक्त होनेपर उन परमेश्वरकी ओर एकटक दृष्टिसे देखता हुआ वह दैत्य मोहित हो गया। भगवान्‌का श्रीविग्रह अत्यन्त सुन्दर, शान्त तथा ब्रह्मतेजसे प्रकाशमान था। श्रीकृष्णके दर्शनमात्रसे उस दानवको पूर्वजन्मकी स्मृति हो आयी। उसने अपने-आपको तथा जगत्‌के परम कारण श्रीकृष्णको भी पहचान लिया। उन तेजःस्वरूप ईश्वरको देखकर वह दानव शास्त्रके अनुसार श्रुतिसे परे गुणातीत प्रभुका जिस प्रकार जन्म हुआ, उसे दृष्टिमें लाकर उनकी स्तुति करने लगा।

दानव बोला—प्रभो! आप ही अपने अंशसे वामन हुए थे और मेरे पिताके यज्ञमें याचक बने थे। आपने पहले तो हमारे राज्य और लक्ष्मीको हर लिया। पर पुनः बलिकी भक्तिके वशीभूत होकर हम सब लोगोंको सुतललोकमें स्थान दिया। आप महान् वीर, सर्वेश्वर और भक्तवत्सल हैं। मैं पापी हूँ और शापसे गर्दभ हुआ हूँ। आप शीघ्र ही मेरा वध कर डालिये। दुर्वासा मुनिके शापसे मुझे ऐसा घृणित जन्म मिला है। जगत्पते! मुनिने मेरी मृत्यु आपके हाथसे बतायी थी। आप अत्यन्त तीखे और अतिशय तेजस्वी षोडशार चक्रसे मेरा वध

कीजिये। मुक्तिदाता जगन्नाथ! ऐसा करके मुझे उत्तम गति दीजिये। आप ही वसुधाका उद्धार करनेके लिये अंशतः वाराहरूपमें अवतीर्ण हुए थे। नाथ! आप ही वेदोंके रक्षक तथा हिरण्याक्षके नाशक हैं। आप पूर्ण परमात्मा स्वयं ही हिरण्यकशिपुके वधके लिये नृसिंहरूपमें प्रकट हुए थे। प्रह्लादपर अनुग्रह और वेदोंकी रक्षा करनेके लिये ही आपने यह अवतार ग्रहण किया था। दयानिधे! आपने ही राजा मनुको ज्ञान देने, देवता और ब्राह्मणोंकी रक्षा करने तथा वेदोंके उद्धारके लिये अंशतः मत्स्यावतार धारण किया था। आप ही अपने अंशसे सृष्टिके लिये शेषके आधारभूत कच्छप हुए थे। सहस्रलोचन! आप ही अंशतः शेषके रूपमें प्रकट हुए हैं और सम्पूर्ण विश्वका भार वहन करते हैं। आप ही जनकनन्दिनी सीताका उद्धार करनेके लिये दशरथनन्दन श्रीराम हुए थे। उस समय आपने समुद्रपर सेतु बाँधा और दशमुख रावणका वध किया। पृथ्वीनाथ! आप ही अपनी कलासे जमदग्निनन्दन महात्मा परशुराम हुए; जिन्होंने इक्कीस बार क्षत्रिय नरेशोंका संहार किया था। सिद्धोंके गुरुके भी गुरु महर्षि कपिल अंशतः आपके ही स्वरूप हैं, जिन्होंने माताको ज्ञान दिया और योग (एवं सांख्य)-शास्त्रकी रचना की। ज्ञानिशिरोमणि नर-नारायण ऋषि आपके ही अंशसे उत्पन्न हुए हैं। आप ही धर्मपुत्र होकर लोकोंका विस्तार कर रहे हैं। इस समय आप स्वयं परिपूर्णतम परमात्मा ही श्रीकृष्णरूपमें प्रकट हैं और सभी अवतारोंके सनातन बीजरूप हैं। आप यशोदाके जीवन, नन्दरायजीके एकमात्र आनन्दवर्धन, नित्यस्वरूप, गोपियोंके प्राणाधिदेव तथा श्रीराधाके प्राणाधिक प्रियतम हैं। वसुदेवके पुत्र, शान्तस्वरूप तथा देवकीके दुःखका निवारण करनेवाले हैं। आपका स्वरूप अयोनिज है। आप पृथ्वीका भार उतारनेके लिये यहाँ पधारे हैं। आपने पूतनाको माताके समान गति प्रदान की है; क्योंकि आप कृपानिधान हैं। आप बक, केशी तथा प्रलम्बासुरको और मुझे भी मोक्ष देनेवाले हैं। स्वेच्छामय! गुणातीत! भक्तभयभञ्जन! राधिकानाथ! प्रसन्न होइये, प्रसन्न होइये और मेरा उद्धार कीजिये। हे नाथ! इस गर्दभ-योनि और भवसागरसे मुझे उबारिये। मैं मूर्ख हूँ तो भी आपके भक्तका पुत्र हूँ; इसलिये आपको मेरा उद्धार करना चाहिये। वेद, ब्रह्मा आदि देवता तथा मुनीन्द्र भी जिनकी स्तुति करनेमें असमर्थ हैं, उन्हीं गुणातीत परमेश्वरकी स्तुति मुझ-जैसा पुरुष क्या करेगा? जो पहले दैत्य था और अब गदहा है। करुणासागर। आप ऐसा कीजिये, जिससे मेरा जन्म न हो। आपके चरणारविन्दके दर्शन पाकर कौन फिर जन्म अथवा घर-गृहस्थीके चक्करमें पड़ेगा? ब्रह्मा जिनकी स्तुति करते हैं, उन्हींका स्तवन आज एक गदहा कर रहा है। इस बातको लेकर आपको उपहास नहीं करना चाहिये; क्योंकि सच्चिदानन्दस्वरूप एवं विज्ञ परमेश्वरकी योग्य और अयोग्यपर भी समानरूपसे कृपा होती है।

यों कहकर दैत्यराज धेनुक श्रीहरिके सामने खड़ा हो गया। उसके मुखपर प्रसन्नता छा रही थी, वह श्रीसम्पन्न एवं अत्यन्त संतुष्ट जान पड़ता था। दैत्यद्वारा किये गये इस स्तोत्रका जो प्रतिदिन भक्तिभावसे पाठ करता है, वह अनायास ही श्रीहरिका लोक, ऐश्वर्य और सामीप्य प्राप्त कर लेता है। इतना ही नहीं, वह इहलोकमें श्रीहरिकी भक्ति, अन्तमें उनका परम दुर्लभ दास्यभाव, विद्या, श्री, उत्तम कवित्व, पुत्र-पौत्र तथा यश भी पाता है।

भगवान् श्रीनारायण कहते हैं—दैत्यराजकी यह स्तुति सुनकर करुणानिधान श्रीकृष्णने मन-ही-मन विचार किया कि 'अहो! ऐसे भक्तका

संहार मैं कैसे करूँ?' ऐसा सोचकर भगवान्‌ने स्वयं ही उसकी पूर्वजन्मकी स्मृति हर ली; क्योंकि स्तुति करनेवालेका वध उचित नहीं है। दुर्वचन बोलनेवालेके ही वधका विधान है। तब दानव वैष्णवी मायाके प्रभावसे पुनः अपने-आपको भूल गया। उसके कण्ठदेशमें दुर्वचनने स्थान जमा लिया। मुने! वह शीघ्र ही मरना चाहता था, इसलिये दुर्दैवसे ग्रस्त हो विवेक खो बैठा। क्रोधसे उसके ओठ फड़कने लगे और वह दैत्य श्रीहरिसे इस प्रकार बोला।

दैत्यने कहा—दुर्मते! तू निश्चय ही मरना चाहता है। मनुष्यके बच्चे! मैं आज तुम्हें यमलोक भेज दूँगा।

इस प्रकार बहुत-से दुर्वचन कहकर उस गदहेने श्रीकृष्णपर आक्रमण कर दिया। भयानक युद्ध हुआ। अन्तमें श्रीहरिने प्रसन्नतापूर्वक हँसकर उस दानवराजकी प्रशंसा करते हुए कहा—'मेरे भक्त बलिके पुत्र! दानवेन्द्र! तुम्हारा उत्तम जीवन धन्य है। वत्स! तुम्हारा कल्याण हो। अब तुम मोक्ष प्राप्त करो। मेरा दर्शन कल्याणका बीज तथा मोक्षका परम कारण है। तुम सबसे अधिक और सबसे उत्कृष्ट मनोहर स्थान प्राप्त करो।'

यों कहकर श्रीकृष्णने अपने उत्तम चक्रका स्मरण किया, जो अपनी दीप्तिसे करोड़ों सूर्योंके समान उद्दीप्त होता है। स्मरण करते ही वह आ गया और श्रीकृष्णने उस सुदर्शनचक्रको अपने हाथमें ले लिया। उसमें सोलह अरे थे। उस उत्तम अस्त्रको घुमाकर श्रीकृष्णने उसकी ओर फेंका तथा जिसे ब्रह्मा, विष्णु और शिव भी नहीं मार सकते थे, उसे लीलासे ही काट डाला। उस महात्मा दानवका मस्तक पृथ्वीपर गिर पड़ा। उसके शरीरसे सैकड़ों सूर्योंके समान कान्तिमान्

तेजःपुञ्ज उठा, जो श्रीहरिकी ओर देखकर उन्हींके चरणकमलोंमें लीन हो गया। अहो! उस दानवराजने परम मोक्ष प्राप्त कर लिया। उस समय आकाशमें खड़े हुए समस्त देवता और मुनि अत्यन्त हर्षसे उत्फुल्ल हो वहाँ पारिजातके फूलोंकी वर्षा करने लगे। स्वर्गमें दुन्दुभियाँ बज उठीं। अप्सराएँ नाचने लगीं। गन्धर्व-समूह गीत गाने लगे और मुनिलोग सानन्द स्तुति करने लगे। स्तुति करके हर्षसे विह्वल हुए समस्त देवता और मुनि चले गये। 'धेनुकासुर मारा गया'—यह देख ग्वाल-बाल वहाँ आ गये। बलवानोंमें श्रेष्ठ बलरामने पुरुषोत्तमका स्तवन किया। समस्त ग्वाल-बालोंने भी उनके गुण गाये। वे खुशीके मारे नाचने लगे। श्रीकृष्ण और बलरामको कुछ पके हुए फल देकर शेष सभी फलोंको उन बालकोंने प्रसन्न-चित्त होकर खाया। खा-पीकर बलराम और बालकोंके साथ श्रीहरि शीघ्र अपने घरको गये। (अध्याय २२)

धेनुकके पूर्वजन्मका परिचय, बलि-पुत्र साहसिक तथा तिलोत्तमाका स्वच्छन्द विहार, दुर्वासाका शाप और वर, साहसिकका गदहेकी योनिमें जन्म लेना तथा तिलोत्तमाका बाणपुत्री 'उषा' होना

नारदजीने पूछा—भगवन्! किस पापसे बलि-पुत्र साहसिकको गदहेकी योनि प्राप्त हुई? दुर्वासाजीने किस अपराधसे दानवराजको शाप दिया? नाथ! फिर किस पुण्यसे दानवेश्वरने सहसा महाबली श्रीहरिका धाम एवं उनके साथ एकत्व (सायुज्य) मोक्ष प्राप्त कर लिया? संदेह-भंजन करनेवाले महर्षे! इन सब बातोंको आप विस्तारपूर्वक बताइये। अहो! कविके मुखमें काव्य पद-पदपर नया-नया प्रतीत होता है।

भगवान् श्रीनारायणने कहा—वत्स! नारद! सुनो। मैं इस विषयमें प्राचीन इतिहास कहूँगा। मैंने इसे पिता धर्मके मुखसे गन्धमादन पर्वतपर सुना था। यह विचित्र एवं अत्यन्त मनोहर वृत्तान्त पाद्म-कल्पका है और श्रीनारायणदेवकी कथासे युक्त होनेके कारण कानोंके लिये उत्तम अमृत है। जिस कल्पकी यह कथा है, उसमें तुम उपबर्हण नामक गन्धर्वके रूपमें थे। तुम्हारी आयु एक कल्पकी थी। तुम शोभायमान, सुन्दर और सुस्थिर यौवनसे सम्पन्न थे। पचास कामिनियोंके पति होकर सदा शृङ्गारमें ही तत्पर रहते थे। ब्रह्माजीके वरदानसे तुम्हें सुमधुर कण्ठ प्राप्त हुआ था और तुम सम्पूर्ण गायकोंके राजा समझे जाते थे। उन्हीं दिनों दैववश ब्रह्माका शाप प्राप्त होनेसे तुम दासीपुत्र हुए और वैष्णवोंके अवशिष्ट भोजनजनित पुण्यसे इस समय साक्षात् ब्रह्माजीके पुत्र हो। अब तो तुम असंख्य कल्पोंतक जीवित रहनेवाले महान् वैष्णवशिरोमणि हो। ज्ञानमयी दृष्टिसे सब कुछ देखते और जानते हो तथा महादेवजीके प्रिय शिष्य हो। मुने! उस पाद्म-कल्पका वृत्तान्त मुझसे सुनो। दैत्यके इस सुधा-तुल्य मधुर वृत्तान्तको मैं तुम्हें सुना रहा हूँ।

एक दिनकी बात है। बलिका बलवान् पुत्र साहसिक अपने तेजसे देवताओंको परास्त करके गन्धमादनकी ओर प्रस्थित हुआ। उसके सम्पूर्ण अङ्ग चन्दनसे चर्चित थे। वह रत्नमय आभूषणोंसे विभूषित हो रत्नके ही सिंहासनपर विराजमान था। उसके साथ बहुत बड़ी सेना थी। इसी समय स्वर्गकी परम सुन्दरी अप्सरा तिलोत्तमा उस मार्गसे आ निकली। उसने साहसिकको देखा और साहसिकने उसको। पुंश्चली स्त्रियोंका आचरण दोषपूर्ण होता ही है। वहीं दोनों एक-दूसरेके प्रति आकर्षित हो गये। चन्द्रमाके समीप जाती हुई तिलोत्तमा वहाँ बीचमें ही ठहर गयी। कुलटा स्त्रियाँ कैसी दुष्टहृदया होती हैं और वे किसी भी पापका विचार न करके सदा पापरत ही रहा करती हैं—यह सब बतलाकर भी तिलोत्तमाने अपने बाह्य रूप-सौन्दर्यसे साहसिकको मोहित कर लिया। तदनन्तर वे दोनों गन्धमादनके एकान्त रमणीय स्थानमें जाकर यथेच्छ विहार करने लगे। वहीं मुनिवर दुर्वासा योगासनसे विराजमान होकर श्रीकृष्णके चरणारविन्दोंका चिन्तन कर रहे थे। तिलोत्तमा और साहसिक उस समय कामवश चेतनाशून्य थे। उन्होंने अत्यन्त निकट ध्यान लगाये बैठे हुए मुनिको नहीं देखा। उनके उच्छृङ्खल अभिसारसे मुनिका ध्यान सहसा भङ्ग हो गया। उन्होंने उन दोनोंकी कुत्सित चेष्टाएँ देख क्रोधमें भरकर कहा।

दुर्वासा बोले—ओ गदहेके समान आकार-

वाले निर्लज्ज नराधम! उठ। भक्तशिरोमणि बलिका पुत्र होकर भी तू इस तरह पशुवत् आचरण कर रहा है। देवता, मनुष्य, दैत्य, गन्धर्व तथा राक्षस—ये सभी सदा अपनी जातिमें लज्जाका अनुभव करते हैं। पशुओंके सिवा सभी मैथुन-कर्ममें लज्जा करते हैं। विशेषत: गदहेकी जाति ज्ञान तथा लज्जासे हीन होती है; अत: दानवश्रेष्ठ! अब तू गदहेकी योनिमें जा। तिलोत्तमे! तू भी उठ। पुंश्चली स्त्री तो निर्लज्ज होती ही है। दैत्यके प्रति तेरी ऐसी आसक्ति है तो अब तू दानवयोनिमें ही जन्म ग्रहण कर।

ऐसा कहकर रोषसे जलते हुए दुर्वासामुनि वहाँ चुप हो गये। फिर वे दोनों लज्जित और भयभीत होकर उठे तथा मुनिकी स्तुति करने लगे।

साहसिक बोला—मुने! आप ब्रह्मा, विष्णु और साक्षात् महेश्वर हैं। अग्नि और सूर्य हैं। आप संसारकी सृष्टि, पालन तथा संहार करनेमें समर्थ हैं। भगवन्! मेरे अपराधको क्षमा करें। कृपानिधे! कृपा करें। जो सदा मूढ़ोंके अपराधको क्षमा करे, वही संत-महात्मा एवं ईश्वर है।

यों कहकर वह दैत्यराज मुनिके आगे उच्चस्वरसे फूट-फूटकर रोने लगा और दाँतोंमें तिनके दबाकर उनके चरणकमलोंमें गिर पड़ा।

तिलोत्तमा बोली—हे नाथ! हे करुणासिन्धो! हे दीनबन्धो! मुझपर कृपा कीजिये। विधाताकी सृष्टिमें सबसे अधिक मूढ स्त्रीजाति ही है। सामान्य स्त्रीकी अपेक्षा अधिक मतवाली एवं मूढ कुलटा होती है, जो सदा अत्यन्त कामातुर रहती है। प्रभो! कामुक प्राणीमें लज्जा, भय और चेतना नहीं रह जाती है।

नारद! ऐसा कहकर तिलोत्तमा रोती हुई दुर्वासाजीकी शरणमें गयी। भूतलपर विपत्तिमें पड़े बिना भला किन्हें ज्ञान होता है? उन दोनोंकी व्याकुलता देखकर मुनिको दया आ गयी। उस समय उन मुनिवरने उन्हें अभय देकर कहा।

दुर्वासा बोले—दानव! तू विष्णुभक्त बलिका पुत्र है। उत्तम कुलमें तेरा जन्म हुआ है। तू पैतृक परम्परासे विष्णुभक्त है। मैं तुझे निश्चितरूपसे जानता हूँ। पिताका स्वभाव पुत्रमें अवश्य रहता है। जैसे कालियके सिरपर अङ्कित हुआ श्रीकृष्णका चरणचिह्न उसके वंशमें उत्पन्न हुए सभी सर्पोंके मस्तकपर रहता है। वत्स! एक बार गदहेकी योनिमें जन्म लेकर तू निर्वाण (मोक्ष)-को प्राप्त हो जा। सत्पुरुषोंद्वारा पहले जो चिरकालतक श्रीकृष्णकी आराधना की गयी होती है, इसके पुण्य-प्रभावका कभी लोप नहीं होता। अब तू शीघ्र ही व्रजके निकट वृन्दावनके ताल-वनमें जा। वहाँ श्रीहरिके चक्रसे प्राणोंका परित्याग करके तू निश्चय ही मोक्ष प्राप्त कर लेगा। तिलोत्तमे! तू भारतवर्षमें बाणासुरकी पुत्री होगी; फिर श्रीकृष्ण-पौत्र अनिरुद्धका आलिङ्गन प्राप्त करके शुद्ध हो जायगी।

महामुने! यों कहकर दुर्वासामुनि चुप हो गये। तत्पश्चात् वे दोनों भी उन मुनिश्रेष्ठको प्रणाम करके यथास्थान चले गये। इस प्रकार दैत्य साहसिकके गर्दभ-योनिमें जन्म लेनेका सारा वृत्तान्त मैंने कह सुनाया। तिलोत्तमा बाणासुरकी पुत्री उषा होकर अनिरुद्धकी पत्नी हुई।

(अध्याय २३)

दुर्वासाका और्वकन्या कन्दलीसे विवाह, उसकी कटूक्तियोंसे कुपित हो मुनिका उसे भस्म कर देना, फिर शोकसे देह-त्यागके लिये उद्यत मुनिको विप्ररूपधारी श्रीहरिका समझाना, उन्हें एकानंशाको पत्नी बनानेके लिये कहना, कन्दलीका भविष्य बताना और मुनिको ज्ञान देकर अन्तर्धान होना तथा मुनिकी तपस्यामें प्रवृत्ति

भगवान् श्रीनारायण कहते हैं—मुने! दुर्वासा मुनिका गूढ़ वृत्तान्त सुनो। सबसे अद्भुत बात यह है कि उन ऊर्ध्वरेता मुनीश्वरको भी स्त्रीका संयोग प्राप्त हुआ। यह कैसे? सो बता रहा हूँ। साहसिक तथा तिलोत्तमाका शृङ्गार (मिलन-प्रसंग) देखकर उन जितेन्द्रिय मुनिके मनमें भी कामभावका संचार हो गया। असत्-पुरुषोंका सङ्ग प्राप्त होनेसे उनका सांसर्गिक दोष अपनेमें आ जाता है। इसी समय उस मार्गसे मुनिवर और्व अपनी पुत्रीके साथ आ पहुँचे। उनकी पुत्री पतिका वरण करना चाहती थी। पूर्वकालमें तपःपरायण ब्रह्माजीके ऊरुसे उन ऊर्ध्वरेता योगीन्द्रका जन्म हुआ था, इसलिये वे 'और्व' कहलाये। उनके जानुसे एक कन्या उत्पन्न हुई, जिसका नाम 'कन्दली' था। वह दुर्वासाको ही अपना पति बनाना चाहती थी, दूसरा कोई पुरुष उसके मनको नहीं भाता था। पुत्रीसहित मुनिवर और्व दुर्वासामुनिके आगे आकर खड़े हो गये। वे बड़े प्रसन्न थे और अपने तेजसे प्रज्वलित अग्निशिखाके समान उद्भासित होते थे।

मुनिवर और्वको सामने आया देख मुनीश्वर दुर्वासा भी बड़े वेगसे उठे और सानन्द उनके प्रति नत-मस्तक हो गये। प्रसन्नतासे भरे हुए और्वने दुर्वासाको हृदयसे लगा लिया और उनसे अपनी कन्याका मनोरथ प्रकट किया।

और्व बोले—मुने! यह मेरी मनोहरा कन्या 'कन्दली' नामसे विख्यात है। अब यह सयानी हो गयी है और संदेशवाहकोंके मुखसे आपकी प्रशंसा सुनकर केवल आपका ही 'पति'-रूपसे चिन्तन करने लगी है। यह कन्या अयोनिजा है और अपने सौन्दर्यसे तीनों लोकोंका मन मोह लेनेमें समर्थ है। वैसे तो यह समस्त गुणोंकी खान है; किंतु इसमें एक दोष भी है। दोष यह है कि कन्दली अत्यन्त कलहकारिणी है। यह क्रोधपूर्वक कटु भाषण करती है; परंतु अनेक गुणोंसे युक्त वस्तुको केवल एक ही दोषके कारण त्यागना नहीं चाहिये।

और्वका वचन सुनकर दुर्वासाको हर्ष और शोक दोनों प्राप्त हुए। उसके गुणोंसे हर्ष हुआ और दोषसे दुःख। उन्होंने गुण तथा रूपसे सम्पन्न मुनि-कन्याको सामने देखा और व्यथित-हृदयसे मुनिवर और्वको इस प्रकार उत्तर दिया।

दुर्वासाने कहा—नारीका रूप त्रिभुवनमें मुक्तिमार्गका निरोधक, तपस्यामें व्यवधान डालनेवाला तथा सदा ही मोहका कारण होता है। वह संसाररूपी कारागारमें बड़ी भारी बेड़ी है, जिसका भार वहन करना अत्यन्त दुष्कर है। शंकर आदि महापुरुष भी ज्ञानमय खड्गसे उस बेड़ीको काट नहीं सकते। नारी सदा साथ देनेवाली छायासे भी अधिक सहगामिनी है। वह कर्मभोग, इन्द्रिय, इन्द्रियाधार, विद्या और बुद्धिसे भी अधिक बाँधनेवाली है। छाया शरीरके रहनेतक ही साथ देती है; भोग तभीतक साथ रहते हैं जबतक उनकी समाप्ति न हो जाय; देह और इन्द्रियाँ जीवनपर्यन्त ही साथ रहती हैं; विद्या जबतक उसका अनुशीलन होता है तभीतक साथ देती है; यही दशा बुद्धिकी भी है; परंतु सुन्दरी स्त्री जन्म-जन्ममें मनुष्यको बन्धनमें डाले रहती है। सुन्दरी स्त्रीवाला पुरुष जबतक जीता है, तबतक अपने जन्म-मरणरूपी बन्धनका निवारण नहीं

कर सकता। जबतक जीवधारीका जन्म होता है, तबतक उसे भोग सुखदायक जान पड़ते हैं। परंतु मुनीन्द्र! सबसे अधिक सुखदायिनी है श्रीहरिके चरणकमलोंकी सेवा। मैं यहाँ श्रीकृष्ण-चरणारविन्दोंके चिन्तनमें लगा था, परंतु मेरे इस शुभ अनुष्ठानमें भारी विघ्न उपस्थित हो गया। न जाने पूर्व-जन्मके किस कर्म-दोषसे यह विघ्न आया है। किंतु मुने! मैं आपकी कन्याके सौ कटु वचनोंको अवश्य क्षमा करूँगा। इससे अधिक होनेपर उसका फल उसे दूँगा। स्त्रीके कटु वचनोंको सुनते रहना—यह पुरुषके लिये सबसे बड़ी निन्दाकी बात है। जिसे स्त्रीने जीत लिया हो, वह तीनों लोकोंके सत्पुरुषोंमें अत्यन्त निन्दित है। मैं आपकी आज्ञा शिरोधार्य करके इस समय आपकी पुत्रीको ग्रहण करूँगा।

ऐसा कहकर दुर्वासा चुप हो गये। और्वमुनिने वेदोक्त-विधिसे अपनी पुत्री उनको ब्याह दी। दुर्वासाने 'स्वस्ति' कहकर कन्याका पाणिग्रहण किया। और्वमुनिने उन्हें दहेज दिया और अपनी कन्या उन्हें सौंपकर वे मोहवश रोने लगे। संतानके वियोगसे होनेवाला शोक आत्माराम मुनिको भी नहीं छोड़ता।

और्व बोले—बेटी! सुनो। मैं तुम्हें नीतिका परम दुर्लभ सार-तत्त्व बता रहा हूँ। वह हितकारक, सत्य, वेदप्रतिपादित तथा परिणाममें सुखद है। नारीके लिये अपना पति ही इहलोक और परलोकमें सबसे बड़ा बन्धु है। कुलवधुओंके लिये पतिसे बढ़कर दूसरा कोई प्रियतम नहीं है। पति ही उनका महान् गुरु है। देवपूजा, व्रत, दान, तप, उपवास, जप, सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नान, समस्त यज्ञोंकी दीक्षा, पृथ्वीकी परिक्रमा तथा ब्राह्मणों और अतिथियोंका सेवन—ये सब पतिसेवाकी सोलहवीं कलाके समान भी नहीं हैं। पतिव्रताको इन सबसे क्या प्रयोजन है? समस्त शास्त्रोंमें पतिसेवाको परम धर्म कहा गया है। अपनी बुद्धिसे पतिको सदा नारायणसे भी अधिक समझकर तुम उनके चरणकमलोंकी प्रतिदिन सेवा करना। परिहास, क्रोध, भ्रम अथवा अवहेलनासे भी अपने स्वामी मुनिके लिये उनके सामने या परोक्षमें भी कभी कटु वचन न बोलना। भारतवर्षकी भूमिपर जो स्त्रियाँ स्वेच्छानुसार कटु वचन बोलती अथवा दुराचारमें प्रवृत्त होती हैं, उनकी शुद्धिके लिये श्रुतिमें कोई प्रायश्चित्त नहीं है। उन्हें सौ कल्पोंतक नरकमें रहना पड़ता है। जो स्त्री समस्त धर्मोंसे सम्पन्न होनेपर भी पतिके प्रति कटु वचन बोलती है, उसका सौ जन्मोंका किया हुआ पुण्य निश्चय ही नष्ट हो जाता है।

इस प्रकार अपनी कन्याको देकर और उसे समझा-बुझाकर मुनिवर और्व चले गये तथा स्वात्माराम मुनि दुर्वासा स्त्रीके साथ प्रसन्नतापूर्वक अपने आश्रममें रहने लगे। चतुर पुरुषका चतुरा स्त्रीके साथ योग्य समागम हुआ। मुनीश्वर दुर्वासा तपस्या छोड़कर घर-गृहस्थीमें आसक्त हो गये। कन्दली स्वामीके साथ प्रतिदिन कलह करती थी और मुनीन्द्र दुर्वासा नीतियुक्त वचन कहकर अपनी पत्नीको समझाते थे; परंतु उनकी बातको वह कुछ नहीं समझती थी। वह सदा कलहमें ही रुचि रखती थी। पिताके दिये हुए ज्ञानसे भी वह शान्त नहीं हुई। समझानेसे भी उसने अपनी आदत नहीं छोड़ी। स्वभावको लाँघना बहुत कठिन होता है। वह बिना कारण ही पतिको प्रतिदिन जली-कटी सुनाती थी। जिनके डरसे सारा जगत् काँपता था, वे ही मुनि उस कन्दलीके कोपसे थर-थर काँपते थे और उसकी की हुई कटूक्तिको चुपचाप सह लेते थे। दयानिधान मुनि मोहवश उसे तत्काल समझाने लगते थे। कुछ ही कालमें उसकी सौ कटूक्तियाँ पूरी हो गयीं तो भी मुनिने कृपापूर्वक उसकी सौसे भी अधिक कटूक्तियोंको क्षमा किया। पत्नीकी जली-कटी बातोंसे मुनिका हृदय दग्ध

होता रहता था। दिये हुए वचनके अनुसार उस कटूक्तिकारिणी स्त्रीके अपराध पूरे हो गये। दुर्वासामुनि यद्यपि स्वात्माराम और दयालु थे तथापि क्रोधको नहीं छोड़ सके थे। उन्होंने मोहवश पत्नीको शाप दे दिया—'अरी तू राखका ढेर बन जा।' मुनिके संकेतमात्रसे वह जलकर भस्म हो गयी। जो ऐसी उच्छृङ्खला स्त्रियाँ हैं, उनका तीनों लोकोंमें कल्याण नहीं होता। शरीरके भस्म हो जानेपर आत्माका प्रतिबिम्बरूप जीव आकाशमें स्थित हो पतिसे विनयपूर्वक बोला।

जीवने कहा—हे नाथ! आप अपनी ज्ञान-दृष्टिसे सदा सब कुछ देखते हैं। सर्वज्ञ होनेके कारण आपको सब कुछका ज्ञान है। फिर मैं आपको क्या समझाऊँ! उत्तम वचन, कटु वचन, क्रोध, संताप, लोभ, मोह, काम, क्षुधा, पिपासा, स्थूलता, कृशता, नाश, दृश्य, अदृश्य तथा उत्पन्न होना—ये सब शरीरके धर्म हैं। न तो जीवके धर्म हैं और न आत्माके ही। सत्त्व, रज और तम—इन तीन गुणोंसे शरीर बना है। वह भी नाना प्रकारका है। सुनिये, मैं आपको बताती हूँ। किसी शरीरमें सत्त्वगुणकी अधिकता होती है, किसीमें रजोगुणकी और किसीमें तमोगुणकी। मुने! कहीं भी सम गुणोंवाला शरीर नहीं है। जब सत्त्वगुणका उद्रेक होता है तब मोक्षकी इच्छा जाग्रत् होती है, रजोगुणकी वृद्धिसे कर्म करनेकी इच्छा प्रबल होती है और तमोगुणसे जीव-हिंसा, क्रोध एवं अहंकार आदि दोष प्रकट होते हैं। क्रोधसे निश्चय ही कटु वचन बोला जाता है। कटु वचनसे शत्रुता होती है और शत्रुतासे मनुष्यमें तत्काल अप्रियता आ जाती है। अन्यथा इस भूतलपर कौन किसका शत्रु है? कौन प्रिय है और कौन अप्रिय? कौन मित्र है और कौन वैरी? सर्वत्र शत्रु और मित्रकी भावनामें इन्द्रियाँ ही बीज हैं। स्त्रियोंके लिये पति प्राणोंसे भी अधिक प्रिय है और पतिके लिये स्त्री प्राणोंसे भी बढ़कर प्यारी है। फिर भी दुर्वचनके कारण एक क्षणमें हम दोनोंके बीच तत्काल शत्रुता पैदा हो गयी। प्रभो! जो बीत गया सो गया। यह सब काम-दोषसे हुआ था। अब आप मेरा सारा अपराध क्षमा कर दें और बतावें इस समय मुझे क्या करना चाहिये। मैं क्या करूँ? कहाँ जाऊँ? कहाँ मेरा जन्म होगा? मैं तीनों लोकोंमें आपके सिवा किसीकी भार्या नहीं होऊँगी।

यों कहकर कन्दलीका जीवात्मा मौन हो गया। इधर शोकसे अचेत हो दुर्वासामुनि मूर्च्छित हो गये। वे स्वात्माराम और महाज्ञानी होकर भी अपनी चेतना खो बैठे। चतुर पुरुषोंके लिये नारीका वियोग सब शोकोंसे बढ़कर होता है। एक ही क्षणमें उन्हें चेत हुआ और वे अपने प्राण त्याग देनेको उद्यत हो गये। उन्होंने वहीं योगासन लगाकर वायुधारणा आरम्भ की। इतनेहीमें एक ब्राह्मण-बालक वहाँ आ पहुँचा। उसके हाथमें दण्ड और चक्र था। उसने लाल वस्त्र धारण किया था और ललाटमें उत्तम चन्दन लगा रखा था। उसकी अङ्गकान्ति श्याम थी। वह ब्रह्मतेजसे जाज्वल्यमान था। उसकी अवस्था बहुत छोटी थी; परंतु वह शान्त, ज्ञानवान् तथा वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ जान पड़ता था। उसे देख दुर्वासाने वेगपूर्वक प्रणाम किया, वहीं बैठाया और भक्तिभावसे उसका पूजन किया। ब्राह्मण बटुकने मुनिको शुभाशीर्वाद दे वार्तालाप आरम्भ किया। उसके दर्शन और आशीर्वादसे मुनिका सारा दुःख दूर हो गया। वह नीतिविशारद विचक्षण बालक क्षणभर चुप रहकर अमृतमयी वाणीमें बोला।

शिशुने कहा—सर्वज्ञ विप्र! आप गुरुमन्त्रके प्रसादसे सब कुछ जानते हैं; फिर भी शोकसे कातर हो रहे हैं; अतः मैं पूछता हूँ, इसका यथार्थ रहस्य क्या है? ब्राह्मणोंका धर्म तप है। तपस्यासे तीनों लोकोंको वशमें किया जा सकता है। मुने! इस

समय अपने धर्म—तपस्याको छोड़कर आप क्या करने जा रहे हो? त्रिभुवनमें कौन किसकी पत्नी है और कौन किसका पति? भगवान् श्रीहरि मूर्खोंको बहलानेके लिये मायासे इन सम्बन्धोंकी सृष्टि करते हैं। यह कन्दली आपकी मिथ्या पत्नी थी; इसीलिये अभी क्षणभरमें चली गयी। जो सत्य है, वह कभी तिरोहित नहीं होता। मिथ्या वही है, जिसकी चिरकालतक स्थिति न रहे। वसुदेव-पुत्री एकानंशा, जो श्रीकृष्णकी बहिन है, पार्वतीके अंशसे उत्पन्न हुई है। वह सुशीला और चिरजीविनी है। वह सुन्दरी प्रत्येक कल्पमें आपकी पत्नी होगी; अतः आप कुछ दिनोंतक प्रसन्नतापूर्वक तपस्यामें मन लगाइये। कन्दली इस भूतलपर 'कन्दली' जाति होगी। वह कल्पान्तरमें शुभदा, फलदायिनी, कमनीया, एक संतान देनेवाली, परम दुर्लभा तथा शान्तरूपा स्त्री होकर आपकी पत्नी होगी। जो अत्यन्त उच्छृङ्खल हो, उसका दमन करना उचित ही है; ऐसा श्रुतिमें सुना गया है (अतः उसके भस्म होनेसे आपको शोक नहीं करना चाहिये)।

यों कहकर ब्राह्मणरूपधारी श्रीहरि ब्रह्मर्षि दुर्वासाको ज्ञान दे शीघ्र ही वहाँसे अन्तर्धान हो गये। तब मुनिने सारा भ्रम छोड़कर तपस्यामें मन लगाया। कन्दली इस धरातलपर कन्दली जाति हो गयी। मुने! दैत्य साहसिक तालवनमें जाकर गदहा हो गया और तिलोत्तमा यथासमय बाणासुरकी पुत्री हुई। फिर श्रीहरिके चक्रसे मारा जाकर अपने प्राणोंका परित्याग करके दैत्यराज साहसिकने गोविन्दके उस परम अभीष्ट चरणारविन्दको प्राप्त कर लिया जो मुनिके लिये भी परम दुर्लभ है। तिलोत्तमा भी बाण-पुत्री उषाके रूपमें जन्म ले श्रीकृष्ण-पौत्र अनिरुद्धके आलिङ्गनसे सफलमनोरथ होकर समयानुसार पुनः अपने निवासस्थान—स्वर्गलोकको चली गयी। इस प्रकार श्रीकृष्णके इस उत्तम लीलोपाख्यानको पितासे सुनकर मैंने तुमसे कहा है। यह पद-पदमें सुन्दर है। अब और क्या सुनना चाहते हो? (अध्याय २४)

महर्षि और्वद्वारा दुर्वासाको शाप, दुर्वासाका अम्बरीषके यहाँ द्वादशीके दिन पारणाके समय पहुँचकर भोजन माँगना, वसिष्ठजीकी आज्ञासे अम्बरीषका पारणाकी पूर्तिके लिये भगवान्‌का चरणोदक पीना, दुर्वासाका राजाको मारनेके लिये कृत्या-पुरुष उत्पन्न करना, सुदर्शनचक्रका कृत्याको मारकर मुनिका पीछा करना, मुनिका कहीं भी आश्रय न पाकर वैकुण्ठमें जाना, वहाँसे भगवान्‌की आज्ञाके अनुसार अम्बरीषके घर आकर भोजन करना तथा आशीर्वाद देकर अपने आश्रमको जाना

नारदजीके पूछनेपर भगवान् श्रीनारायणने कहा—मुने! महर्षि और्व सरस्वती नदीके तटपर तपस्या कर रहे थे; उन्हें ध्यानसे अपनी पुत्रीके मरणका वृत्तान्त ज्ञात हो गया। तब वे शोकाकुल होकर दुर्वासाके पास आये। दुर्वासाने श्वशुरको प्रणाम करके सब बातें बतायीं और उस घटित घटनाके लिये महान् दुःख प्रकट किया। मुनिवर और्वने दुर्वासाको उलाहना दिया और कहा—'तुमने बहुत थोड़े अपराधपर उसको भारी दण्ड दे दिया। यदि उसे भस्म न करके त्याग ही दिया होता तो वह मेरे ही पास रह जाती।' फिर रोषसे भरकर शाप दे दिया कि 'तुम्हारा पराभव होगा।' इतना कहकर मुनि और्व लौट गये। यह कथा सुनकर नारदजीने दुर्वासाके पराभवका इतिहास पूछा।

नारद बोले—भगवन्! दुर्वासा साक्षात्

भगवान् शंकरके अंश हैं तथा तेजमें भी उन्हींके समान हैं। फिर कौन ऐसा महातेजस्वी पुरुष था, जिसने उनका भी पराभव कर दिया?

भगवान् श्रीनारायणने कहा—मुने! सूर्यवंशमें अम्बरीष नामसे प्रसिद्ध एक राजाधिराज (सम्राट्) हो गये हैं। उनका मन सदा श्रीकृष्णके चरणकमलोंके चिन्तनमें ही लगा रहता था। राज्यमें, रानियोंमें, पुत्रोंमें, प्रजाओंमें तथा पुण्य कर्मोंद्वारा अर्जित की हुई सम्पत्तियोंमें भी उनका चित्त क्षणभरके लिये भी नहीं लगता था। वे धर्मात्मा नरेश दिन-रात सोते-जागते हर समय प्रसन्नतापूर्वक श्रीहरिका ध्यान किया करते थे। राजा अम्बरीष बड़े भारी जितेन्द्रिय, शान्तस्वरूप तथा विष्णुसम्बन्धी व्रतोंके पालनमें तत्पर रहते थे। वे एकादशीका व्रत रखते और श्रीकृष्णकी आराधनामें संलग्न रहते थे। उनके सारे कर्म श्रीकृष्णको समर्पित थे और वे उनमें कभी लिप्त नहीं होते थे।

भगवान्‌का सोलह अरोंसे युक्त और अत्यन्त तीक्ष्ण जो सुदर्शन नामक चक्र है, वह करोड़ों सूर्योंके समान प्रकाशमान तथा श्रीहरिके ही तुल्य तेजस्वी है। ब्रह्मा आदि भी उसकी स्तुति करते हैं। वह अस्त्र देवताओं और असुरोंसे भी पूजित है। भगवान्‌ने अपने उस चक्रको राजाकी निरन्तर रक्षाके लिये उनके पास ही रख दिया था।

एक समयकी बात है। राजा अम्बरीष एकादशी-व्रतका अनुष्ठान करके द्वादशीके दिन समयानुसार विधिपूर्वक स्नान और पूजन करके ब्राह्मणोंको भोजन करा स्वयं भी भोजनके लिये बैठे। इसी समय तपस्वी ब्राह्मण दुर्वासा भूखसे व्याकुल हो वहाँ राजाके समक्ष आ गये। उन्होंने दण्ड और छत्र ले रखा था, उनके शरीरपर श्वेत वस्त्र शोभा पा रहे थे। ललाटमें उज्ज्वल तिलक चमक रहा था। सिरपर जटाएँ थीं और शरीर अत्यन्त कृश हो रहा था। वे त्रस्त-से जान पड़ते थे। उनके कण्ठ, ओठ और तालु सूख गये थे। मुनीन्द्रपर दृष्टि पड़ते ही राजाने उठकर उन्हें प्रणाम किया और प्रसन्नतापूर्वक पैर धोनेके लिये जल प्रस्तुत करके बैठनेको स्वर्णका सिंहासन दिया। विप्रवर दुर्वासा उन्हें आशीर्वाद देकर उस सुखद आसनपर बैठे। तब राजाने भयभीत होकर उनसे पूछा—'मुने! मेरे लिये आपकी क्या आज्ञा है? यह मुझे बताइये।' राजाकी बात सुनकर मुनिवर दुर्वासाने कहा—'नृपश्रेष्ठ! मैं भूखसे पीड़ित होकर यहाँ आया हूँ। अतः मुझे भोजन कराओ; परंतु मैं अघमर्षण-मन्त्रका जप करके शीघ्र ही आ रहा हूँ, क्षणभर प्रतीक्षा करो।' ऐसा कहकर मुनि चले गये।

ब्राह्मण दुर्वासाके चले जानेपर राजर्षि अम्बरीषको बड़ी भारी चिन्ता हुई। द्वादशी तिथि प्रायः बीत चली है; यह देख वे डर गये। इसी समय गुरु वसिष्ठ वहाँ आ गये। तब प्रसन्नतापूर्वक उन्हें नमस्कार करके राजाने सारी बातें उन्हें बतायीं और पूछा—'गुरुदेव! मुनिवर दुर्वासा अभीतक आ नहीं रहे हैं और पारणाके लिये विहित द्वादशी तिथि बीती जा रही है। ऐसे संकटके समय मुझे क्या करना चाहिये? इसपर भलीभाँति विचार करके मुझे शीघ्र बताइये कि क्या करना शुभ है और क्या अशुभ?'

वसिष्ठजीने कहा—द्वादशीको बिताकर त्रयोदशीमें पारण करना पाप है और अतिथिसे पहले भोजन कर लेना भी पाप है। ऐसी दशामें तुम भोजन न करके भगवान्‌का चरणोदक ले लो। इससे पारणा भी हो जायगी और अतिथिकी अवहेलना भी नहीं होगी।

महामुने! ऐसा कहकर ब्रह्मपुत्र वसिष्ठजी चुप हो गये। राजाने श्रीकृष्ण-चरणारविन्दोंका चिन्तन करते हुए थोड़ा-सा चरणोदक पी लिया। ब्रह्मन्! इतनेमें ही मुनीश्वर दुर्वासा आ पहुँचे। वे सर्वज्ञ तो थे ही, अपना अपमान समझकर

कुपित हो उठे। उन्होंने राजाके सामने ही अपनी एक जटा तोड़ डाली। उस जटासे शीघ्र ही एक पुरुष प्रकट हुआ, जो अग्निशिखाके समान तेजस्वी था। उसके हाथमें तलवार थी। वह महाभयंकर पुरुष महाराज अम्बरीषको मार डालनेके लिये उद्यत हो गया। यह देख करोड़ों सूर्योंके समान प्रकाशमान श्रीहरिके सुदर्शनचक्रने उस कृत्या-पुरुषको काट डाला। अब वह बाबा दुर्वासाको भी काटनेके लिये उद्यत हुआ। यह देख विप्रवर दुर्वासा भयसे व्याकुल हो भाग चले। उन्होंने अपने पीछे-पीछे प्रज्वलित अग्निशिखाके समान तेजस्वी चक्रको आते देखा। वे अत्यन्त व्याकुल हो सारे ब्रह्माण्डका चक्कर लगाते-लगाते थक गये, खिन्न हो गये और ब्रह्माजीको सम्पूर्ण जगत्का रक्षक मान उनकी शरणमें गये। 'बचाइये-बचाइये'—पुकारते हुए उन्होंने ब्रह्माजीकी सभामें प्रवेश किया। ब्रह्माजीने उठकर विप्रवर दुर्वासाका कुशल-मङ्गल पूछा। तब उन्होंने आदिसे ही सारा वृत्तान्त विस्तारपूर्वक कह सुनाया। सुनकर ब्रह्माजीने लम्बी साँस ली और भयसे व्याकुल होकर कहा।

ब्रह्माजीने कहा—बेटा! तुम किसके बलपर श्रीहरिके दासको शाप देने गये थे? जिसके रक्षक भगवान् हैं, उसको तीनों लोकोंमें कौन मार सकता है? भक्तवत्सल श्रीहरिने छोटे-बड़े सभी भक्तोंकी रक्षाके लिये सुदर्शनचक्रको सदा नियुक्त कर रखा है। जो मूढ़ श्रीविष्णुके लिये प्राणोंके समान प्रिय वैष्णव भक्तसे द्वेष रखता है, उसका संहार भगवान् विष्णु स्वयं करते हैं। वे श्रीहरि संहारकर्ताका भी संहार करनेमें समर्थ हैं। अतः बेटा! तुम शीघ्र किसी दूसरे स्थानमें जाओ। अब यहाँ तुम्हारी रक्षा नहीं हो सकती। यदि नहीं हटे तो सुदर्शनचक्र मेरे साथ ही तुम्हारा वध कर डालेगा।

ब्रह्माजीकी बात सुनकर ब्राह्मणदेवता दुर्वासा वहाँसे भयभीत होकर भागे। अब वे डरकर कैलास पर्वतपर भगवान् शंकरकी शरणमें गये और बोले—'कृपानिधान! हमारी रक्षा कीजिये।' भगवान् शिव सर्वज्ञ हैं। उन्होंने ब्राह्मण दुर्वासाका कुशल-समाचारतक नहीं पूछा। जो क्षणभरमें जगत्का संहार करनेमें समर्थ तथा दीन-दुःखियोंके स्वामी हैं, वे महादेवजी मुनिसे बोले।

शंकरजीने कहा—द्विजश्रेष्ठ! सुस्थिर होकर मेरी बात सुनो। मुने! तुम महर्षि अत्रिके पुत्र तथा जगत्स्रष्टा ब्रह्माजीके पौत्र हो। वेदोंके विद्वान् तथा सर्वज्ञ हो, परंतु तुम्हारा कर्म मूर्खोंके समान है। वेदों, पुराणों और इतिहासोंमें सर्वत्र जिन सर्वेश्वरका निरूपण हुआ है; उन्हींको तुम मूढ़ मनुष्यकी भाँति नहीं जानते हो। जिनके भ्रूभङ्गकी लीलामात्रसे मैं, ब्रह्मा, रुद्र, आदित्य, वसु, धर्म, इन्द्र, सम्पूर्ण देवता, मुनीन्द्र और मनु उत्पन्न और विलीन होते रहते हैं; उन्हीं श्रीहरिके प्राणोंसे भी बढ़कर प्रिय भक्तको तुम किसकी शक्तिसे मारने चले थे? उनका चक्र उन्हींके तुल्य तेजस्वी है। उसे रोकना सर्वथा कठिन है। उस चक्रको यद्यपि उन्होंने भक्तोंकी रक्षामें लगा रखा है, तथापि उन्हें उसपर पूरा भरोसा नहीं होता। इसलिये वे स्वयं उनकी रक्षा करनेके लिये जाते हैं। उनके मुँहसे अपने गुणों और नामोंका श्रवण करके उन्हें बड़ा आनन्द मिलता है। इसलिये भगवान् भक्तके साथ सदा छायाकी तरह घूमते रहते हैं। अतः ब्राह्मणदेव! गोविन्दका भजन करो। उनके चरणकमलोंका चिन्तन करो। श्रीहरिके स्मरणमात्रसे भी सारी आपत्तियाँ नष्ट हो जाती हैं। अब शीघ्र ही वैकुण्ठधाममें जाओ। उस धामके अधिपति श्रीहरि ही तुम्हारे शरणदाता हैं। वे प्रभु दयाके सागर हैं; अतः तुम्हें अवश्य ही अभयदान देंगे।

ये बातें हो ही रही थीं कि सारा कैलास चक्रके तेजसे व्याप्त हो उठा, जैसे समस्त

भूमण्डल सूर्यकी किरणोंसे उद्दीप्त हो उठा हो। उस समय सम्पूर्ण कैलासवासी उस चक्रकी विकराल ज्वालासे संतप्त हो 'त्राहि-त्राहि' पुकारते हुए भगवान् शंकरकी शरणमें गये। उस दुःसह चक्रको देख पार्वतीसहित करुणानिधान भगवान् शंकरने ब्राह्मणको प्रेमपूर्वक आशीर्वाद देते हुए कहा—'यदि तेज सत्य है और चिरकालसे संचित तप सत्य है तो अपराध करके भयभीत हुआ यह ब्राह्मण संतापसे मुक्त हो जाय।'

पार्वती बोलीं—यह ब्राह्मण मेरे स्वामीके पुण्यकर्मोंके अवसरपर शरणमें आया है; अतः मेरे आशीर्वादसे इसका महान् भय दूर हो जाय और यह शीघ्र ही संतापसे छूट जाय।

कृपापूर्वक ऐसा कहकर पार्वती और शिव चुप हो गये। मुनिने उन्हें प्रणाम करके देवेश्वर वैकुण्ठनाथकी शरण ली। मनके समान तीव्र गतिसे चलनेवाले मुनीश्वर दुर्वासा वैकुण्ठभवनमें जाकर सुदर्शनको अपने पीछे-पीछे आते देख श्रीहरिके अन्तःपुरमें घुस गये। वहाँ ब्राह्मणने श्रीनारायणदेवके दर्शन किये। वे रत्नमय सिंहासनपर विराजमान थे। उनके हाथोंमें शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म शोभा पाते थे। उन परम प्रभुने पीताम्बर धारण कर रखा था। उनके चार भुजाएँ थीं। अङ्गकान्ति श्याम थी। वे शान्त-स्वरूप लक्ष्मी-कान्त अपने दिव्य सौन्दर्यसे मनको मोह लेते थे। रत्नमय अलंकारोंकी शोभा उन्हें और भी श्री-सम्पन्न बना रही थी। गलेमें रत्नमयी मालासे वे विभूषित थे। उनके प्रसन्न मुखपर मन्द हास्यकी छटा छा रही थी। वे भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये कातर दिखायी देते थे। उत्तम रत्नोंके सार-तत्त्वसे निर्मित मुकुट धारण करके उनका मस्तक अनुपम ज्योतिसे जगमगा रहा था। श्रेष्ठ पार्षदगण हाथोंमें श्वेत चँवर लिये प्रभुकी सेवा कर रहे थे। कमला उनके चरणकमलोंकी सेवामें लगी थीं। सरस्वती सामने खड़ी हो स्तुति करती थीं। सुनन्द, नन्द, कुमुद और प्रचण्ड आदि पार्षद उन्हें घेरकर खड़े थे। ऐसे प्रभुको देख दुर्वासाने दण्डकी भाँति पृथ्वीपर पड़कर प्रणाम किया और सामवेदवर्णित स्तुतिके द्वारा उन परमेश्वरका स्तवन किया।

दुर्वासा बोले—कमलाकान्त! मेरी रक्षा कीजिये। करुणानिधे! मुझे बचाइये। प्रभो! आप दीनोंके बन्धु और अत्यन्त दुःखियोंके स्वामी हैं। दयाके सागर हैं। वेद-वेदाङ्गोंके स्रष्टा विधाताके भी विधाता हैं। मृत्युकी भी मृत्यु और कालके भी काल हैं। मैं संकटके समुद्रमें पड़ा हूँ। मेरी रक्षा कीजिये। आप संहारकर्ताके भी संहारक, सर्वेश्वर और सर्वकारण हैं। महाविष्णुरूपी वृक्षके बीज हैं। प्रभो! इस भवसागरसे मेरी रक्षा कीजिये। शरणागत एवं शोकाकुल जनोंका भय दूर करके उनकी रक्षामें लगे रहनेवाले भगवन्! मुझ भयभीतका उद्धार कीजिये। नारायण! आपको नमस्कार है। वेदोंमें जिन्हें आदिसत्ता कहा गया है, वेद भी जिनकी स्तुति नहीं कर सकते और सरस्वती भी जिनके स्तवनमें जडवत् हो जाती हैं; उन्हीं प्रभुकी दूसरे विद्वान् क्या स्तुति कर सकते हैं? शेष सहस्र मुखोंसे जिनकी स्तुति करनेमें जडभावको प्राप्त होते हैं, पञ्चमुख महादेव और चतुर्मुख ब्रह्मा भी जडीभूत हो जाते हैं, श्रुतियाँ, स्मृतिकार और वाणी भी जिनकी स्तुतिमें अपनेको असमर्थ पाती हैं; उन्हींका स्तवन मुझ-जैसा ब्राह्मण कैसे कर सकता है? मानद! मैं वेदोंका ज्ञाता क्या हूँ, वेदवेत्ता विद्वानोंका शिष्य हूँ। मुझमें आपकी स्तुति करनेकी क्या योग्यता है? अट्ठाईसवें मनु और महेन्द्रके समाप्त हो जानेपर जिनका एक दिन-रातका समय पूरा होता है, वे विधाता अपने वर्षसे एक सौ आठ वर्षतक जीवित रहते हैं। परंतु जब उनका भी पतन होता है, तब आपके नेत्रोंकी एक पलक गिरती है; ऐसे अनिर्वचनीय परमेश्वरकी मैं क्या स्तुति कर सकूँगा? प्रभो! मेरी रक्षा कीजिये।

इस प्रकार स्तुति करके भयसे विह्वल हुए दुर्वासा श्रीहरिके चरणकमलोंमें गिर पड़े और अपने अश्रुजलसे उन्हें सींचने लगे। दुर्वासाद्वारा किये गये परमात्मा श्रीहरिके इस सामवेदोक्त जगन्मङ्गल नामक पुण्यदायक स्तोत्रका जो संकटमें पड़ा हुआ मनुष्य भक्तिभावसे पाठ करता है, नारायणदेव कृपया शीघ्र आकर उसकी रक्षा करते हैं।

भगवान् नारायण कहते हैं—नारद! मुनिकी की हुई स्तुति सुनकर भक्तवत्सल भगवान् वैकुण्ठनाथ हँसकर अमृतकी वर्षा-सी करती हुई मधुर वाणीमें बोले।

श्रीभगवान्‌ने कहा—मुने! उठो, उठो। मेरे वरसे तुम्हारा कल्याण होगा; परंतु मेरा नित्य सत्य एवं सुखदायक वचन सुनो। ब्राह्मणदेव! वेदों, पुराणों और इतिहासोंमें वैष्णवोंकी जो महिमा गायी गयी है, उसे सबने और सर्वत्र सुना है। मैं वैष्णवोंके प्राण हूँ और वैष्णव मेरे प्राण हैं। जो मूढ़ उन्हींसे द्वेष करता है, वह मेरे प्राणोंका हिंसक है। जो अपने पुत्रों, पौत्रों और पत्नियों तथा राज्य और लक्ष्मीको भी त्यागकर सदा मेरा ही ध्यान करते हैं, उनसे बढ़कर मेरा प्रिय और कौन हो सकता है? भक्तसे बढ़कर न मेरे प्राण हैं, न लक्ष्मी हैं, न शिव हैं, न सरस्वती हैं, न ब्रह्मा हैं, न पार्वती हैं और न गणेश ही हैं। ब्राह्मण, वेद और वेदमाता सरस्वती भी मेरी दृष्टिमें भक्तोंसे बढ़कर नहीं हैं। इस प्रकार मैंने सब सच्ची बात कही है। यह वास्तविक सार तत्त्व है। मैंने भक्तोंकी प्रशंसाके लिये कोई बात बढ़ा-चढ़ाकर नहीं कही है। वे वास्तवमें मुझे प्राणोंसे भी अधिक प्रिय हैं। जो मेरे प्राणाधिक प्रिय भक्तोंसे द्वेष करते हैं, उनको मैं शीघ्र ही दण्ड देता हूँ और परलोकमें भी चिरकालतक उन्हें नरकयातना भोगनी पड़ती है। मैं सबकी उत्पत्तिका कारण तथा सबका ईश्वर और परिपालक हूँ। सर्वव्यापी एवं स्वतन्त्र हूँ, तथापि दिन-रात भक्तोंके अधीन रहता हूँ। गोलोकमें मेरा द्विभुज रूप है और वैकुण्ठमें चतुर्भुज। यह रूपमात्र ही उन-उन लोकोंमें रहता है; किंतु मेरे प्राण तो सदा भक्तोंके समीप ही रहते हैं। भक्तका दिया हुआ अन्न साधारण हो तो भी मेरे लिये सादर भक्षण करनेयोग्य है; परंतु अभक्तका दिया हुआ अमृतके समान मधुर द्रव्य भी मेरे लिये अभक्ष्य है। ब्रह्मन्! राजाओंमें श्रेष्ठ अम्बरीष निरीह हैं—सब प्रकारकी इच्छाएँ छोड़ चुके हैं। कभी किसीकी हिंसा नहीं करते हैं। स्वभावसे दयालु हैं और समस्त प्राणियोंके हितमें लगे रहते हैं। ऐसे महात्मा पुरुषका वध तुम क्यों करना चाहते हो? जो संत महापुरुष सदा समस्त प्राणियोंपर दया करते हैं; उनसे द्वेष रखनेवाले मूढजनोंका वध मैं स्वयं करता हूँ। जो भक्तोंका हिंसक है, शत्रु है, उसकी रक्षा करनेमें मैं असमर्थ हूँ। अतः तुम अम्बरीषके घर जाओ। वे ही तुम्हारी रक्षा कर सकते हैं।

भगवान् नारायण कहते हैं—नारद! भगवान् श्रीहरिका वह वचन सुनकर ब्राह्मण दुर्वासा भयसे व्याकुल हो गये। उनके मनमें बड़ा खेद हुआ और वे श्रीकृष्णचरणारविन्दोंका चिन्तन करते हुए

वहीं खड़े रहे। इसी समय वहाँ ब्रह्मा, शिव,

पार्वती, धर्म, इन्द्र, रुद्र, दिक्पाल, ग्रह, मुनिगण, अत्रि, लक्ष्मी, सरस्वती, पार्षद तथा नर्तकगण आये और सबने दुर्वासाके अपराधको क्षमा करके उनकी रक्षा करनेके लिये भगवान् विष्णुसे करुण-प्रार्थना की।

तब श्रीभगवान् बोले—आप सब लोग मेरा नीतियुक्त और सुखदायक वचन सुनें। मैं आपकी आज्ञासे ब्राह्मणकी रक्षा अवश्य करूँगा; किंतु ये मुनि वैकुण्ठलोकसे पुनः राजा अम्बरीषके घर जायँ और उनकी प्रसन्नताके लिये वहीं पारणा करें। ये ब्रह्मर्षि अम्बरीषके अतिथि होकर भी बिना किसी अपराधके उन्हें शाप देनेको उद्यत हो गये। इसलिये अपने रक्षणीय राजाकी रक्षाके लिये सुदर्शनचक्र इन ब्राह्मणदेवताको ही मार डालनेके लिये उद्यत हो गया। इन्हें भयभीत होकर भागते हुए आज पूरा एक वर्ष हो गया। तभीसे इनके लिये शोकग्रस्त हुए महाराज अम्बरीष अपनी पत्नीसहित उपवास कर रहे हैं। भक्तके उपवास करनेके कारण मैं भी उपवास करता हूँ। जैसे माता दूध-पीते बच्चेको उपवास करते देख स्वयं भी भोजन नहीं करती, वही दशा मेरी है। मेरे आशीर्वादसे मुनिश्रेष्ठ दुर्वासा शीघ्र ही संतापमुक्त हो जायँगे। मार्गमें मेरा चक्र इनकी हिंसा नहीं करेगा। इनके भोजन करनेसे मेरा भक्त भोजन करेगा और तभी मैं भी आज निश्चिन्त होकर सुखसे भोजन करूँगा; यह निश्चित बात है। भक्तके द्वारा प्रीतिपूर्वक जो वस्तु मुझे दी जाती है, उसे मैं अमृतके समान मधुर मानकर ग्रहण करता हूँ। लक्ष्मीके हाथसे परोसे गये पदार्थको भी भक्तके दिये बिना मैं नहीं खा सकता। जिस पदार्थको भक्तने नहीं दिया, वह मुझे तृप्ति नहीं दे सकता। वत्स! महाप्राज्ञ मुनीन्द्र! तुम राजा अम्बरीषके घर जाओ तथा ये सब देवता, देवियाँ और मुनि अपने-अपने घरको पधारें।

ऐसा कहकर श्रीहरि तुरंत ही अपने अन्तः-पुरमें चले गये तथा अन्य सब लोग उन जगदीश्वरको प्रणाम करके प्रसन्नतापूर्वक अपने-अपने स्थानको लौट गये। मनके समान तीव्र गतिसे चलनेवाले ब्राह्मण दुर्वासा राजा अम्बरीषके घरको गये। साथ ही करोड़ों सूर्योंके समान प्रकाशमान सुदर्शनचक्र भी गया। एक वर्षतक उपवास करनेके बाद राजाके कण्ठ, ओठ और तालु सूख गये थे। वे सिंहासनपर बैठे हुए थे। उसी समय उन्होंने मुनिवर दुर्वासाको सामने देखा। देखते ही वे बड़े वेगसे उठे और तत्काल उनके चरणोंमें प्रणाम करके सादर भोजनके लिये ले गये। राजाने मुनिको स्वादिष्ट अन्न भोजन

कराकर फिर स्वयं भी अन्न ग्रहण किया। भोजन करके संतुष्ट हुए द्विजश्रेष्ठ दुर्वासाने उन्हें उत्तम आशीर्वाद दिया। बारंबार उनकी प्रशंसा की। तदनन्तर उन्होंने शीघ्र ही अपने आश्रमको प्रस्थान किया। मार्गमें वे विप्रवर आश्चर्यचकित हो मन-ही-मन कहने लगे—'अहो! वैष्णवोंका माहात्म्य दुर्लभ है।' (अध्याय २५)

एकादशीव्रतका माहात्म्य, इसे न करनेसे हानि, व्रतके सम्बन्धमें आवश्यक निर्णय, व्रतका विधान—छः देवताओंका पूजन, श्रीकृष्णका ध्यान और षोडशोपचार-पूजन तथा कर्ममें न्यूनताकी पूर्तिके लिये भगवान्‌से प्रार्थना

तदनन्तर नारदजीके पूछनेपर एकादशीका माहात्म्य बताते हुए श्रीनारायणने कहा—मुने! यह एकादशीव्रत देवताओंके लिये भी दुर्लभ है। यह श्रीकृष्णप्रीतिका जनक तथा तपस्वियोंका श्रेष्ठ तप है। जैसे देवताओंमें श्रीकृष्ण, देवियोंमें प्रकृति, वर्णोंमें ब्राह्मण तथा वैष्णवोंमें भगवान् शिव श्रेष्ठ हैं, उसी प्रकार व्रतोंमें यह एकादशीव्रत श्रेष्ठ है। यह चारों वर्णोंके लिये सदा ही पालनीय व्रत है। यतियों, वैष्णवों तथा विशेषतः ब्राह्मणोंको तो इस व्रतका पालन अवश्य करना चाहिये। सचमुच ही ब्रह्महत्या आदि सारे पाप एकादशीके दिन चावल (भात)-का आश्रय लेकर रहते हैं। जो मन्द-बुद्धि मानव इतने पापोंका भक्षण करते हुए चावल खाता है, वह इस लोकमें अत्यन्त पातकी है और अन्तमें निश्चय ही नरकगामी होता है। दशमीके लङ्घनमें जो दोष है, उसे बताता हूँ; सुनो। पूर्वकालमें धर्मके मुखसे मैंने इसका श्रवण किया था। जो मूढ़ जान-बूझकर कलामात्र दशमीका लङ्घन करता है, उसे तुरंत ही दारुण शाप देकर लक्ष्मी उसके घरसे निकल जाती हैं। इस लोकमें निश्चय ही उसके वंशकी और यशकी भी हानि होती है। जिस दिन दशमी, एकादशी और द्वादशी तीनों तिथियाँ हों, उस दिन भोजन करके दूसरे दिन उपवास-व्रत करना चाहिये। द्वादशीको व्रत करके त्रयोदशीको पारण करना चाहिये। उस दशामें व्रतधारियोंको द्वादशी-लङ्घनसे दोष नहीं होता। जब पूरे दिन और रातमें एकादशी हो तथा उसका कुछ भाग दूसरे दिन प्रातःकालतक चला गया हो, तब दूसरे दिन ही उपवास करना चाहिये। यदि परा तिथि बढ़कर साठ दण्डकी हो गयी हो और प्रातःकाल तीन तिथियोंका स्पर्श हो तो गृहस्थ पूर्व दिनमें ही व्रत करते हैं; यति आदि नहीं। उन्हें दूसरे दिन उपवास करके नित्य-कृत्य करना चाहिये। दो दिन एकादशी हो तो भी व्रतमें सारा जागरण-सम्बन्धी कार्य पहली ही रातमें करे। पहले दिनमें व्रत करके दूसरे दिन एकादशी बीतनेपर पारण करे। वैष्णवों, यतियों, विधवाओं, भिक्षुओं एवं ब्रह्मचारियोंको सभी एकादशियोंमें उपवास करना चाहिये। वैष्णवेतर गृहस्थ शुक्लपक्षकी एकादशीको ही उपवास-व्रत करते हैं। अतः नारद! उनके लिये कृष्णा एकादशीका लङ्घन करनेपर भी वेदोंमें दोष नहीं बताया गया है। हरिशयनी और हरिबोधिनी—इन दो एकादशियोंके बीचमें जो कृष्णा एकादशियाँ आती हैं, उन्हींमें गृहस्थ पुरुषको उपवास करना चाहिये। इनके सिवा दूसरी किसी कृष्णपक्षकी एकादशीमें गृहस्थ पुरुषको उपवास नहीं करना चाहिये। ब्रह्मन्! इस प्रकार एकादशीके विषयमें निर्णय कहा गया, जो श्रुतिमें प्रसिद्ध है। अब इस व्रतका विधान बताता हूँ, सुनो।

दशमीके दिन पूर्वाह्णमें एक बार हविष्यान्न भोजन करे। उसके बाद उस दिन फिर जल भी न ले। रातमें कुशकी चटाईपर अकेला शयन करे और एकादशीके दिन ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर प्रातःकालिक कार्य करके नित्य-कृत्य पूर्ण करनेके पश्चात् स्नान करे। फिर श्रीकृष्णकी प्रसन्नताके उद्देश्यसे व्रतोपवासका संकल्प लेकर संध्या-तर्पण करनेके अनन्तर नैत्यिक पूजन आदि करे। दिनमें नैत्यिक पूजन करके व्रतसम्बन्धी आवश्यक सामग्रीका संग्रह करे। षोडशोपचार-सामग्रीका सानन्द संग्रह करके शास्त्रीय विधिसे प्रेरित हो आवश्यक कार्य करे। षोडश उपचारोंके

नाम ये हैं—आसन, वसन, पाद्य, अर्घ्य, पुष्प, अनुलेपन, धूप, दीप, नैवेद्य, यज्ञोपवीत, आभूषण, गन्ध, स्नानीय पदार्थ, ताम्बूल, मधुपर्क और पुनराचमनीय जल—इन सब सामानोंको दिनमें जुटाकर रातमें व्रत-सम्बन्धी पूजनादि कार्य करे।

स्नान आदिसे पवित्र हो धुले हुए धौत और उत्तरीय वस्त्र धारण करके आसनपर बैठे। फिर आचमन-प्राणायामके पश्चात् श्रीहरिको नमस्कार करके स्वस्तिवाचन करे। तदनन्तर शुभ बेलामें सप्तधान्यके ऊपर मङ्गल-कलशकी स्थापना करके उसके ऊपर फल-शाखासहित आम्रपल्लव रखे। कलशमें चन्दनका अनुलेप करे और मुनियोंने वेदोंमें कलशके स्थापन और पूजनकी जो विधि बतायी है, उसका प्रसन्नतापूर्वक सम्पादन करे। फिर अलग-अलग धान्यपुञ्जपर छः देवताओंका आवाहन करके विद्वान् पुरुष उत्कृष्ट पञ्चोपचार-सामग्रीद्वारा उनका पूजन करे। वे छः देवता हैं—गणेश, सूर्य, अग्नि, विष्णु, शिव तथा पार्वती। इन सबकी पूजा और वन्दना करके श्रीहरिका स्मरण करते हुए व्रत करे। व्रती पुरुष यदि इन छः देवताओंकी आराधना किये बिना नित्य और नैमित्तिक कर्मका अनुष्ठान करता है तो उसका वह सारा कर्म निष्फल हो जाता है। इस प्रकार व्रतकी अङ्गभूत सारी आवश्यक विधि बतायी गयी। इसका काण्वशाखामें वर्णन है। महामुने! अब तुम अभीष्ट व्रतके विषयमें सुनो।

सामवेदमें बताये हुए ध्यानके अनुसार परात्पर भगवान् श्रीकृष्णका ध्यान करके मस्तकपर फूल रखकर फिर ध्यान करे। नारद! मैं गूढ़ ध्यान बता रहा हूँ, जो सबके लिये वाञ्छनीय है। इसे अभक्त पुरुषके सामने नहीं प्रकाशित करना चाहिये। भक्तोंके लिये तो यह ध्यान प्राणोंसे भी अधिक प्रिय है। भगवान् श्रीकृष्णका शरीर-विग्रह नवीन मेघमालाके समान श्याम तथा सुन्दर है। उनका मुख शरत्पूर्णिमाके चन्द्रमाकी आभाको तिरस्कृत करता है। वे सर्वश्रेष्ठ एवं परम मनोहर हैं। उनके नेत्र शरत्कालके सूर्योदयकी बेलामें विकसित होनेवाले कमलोंकी प्रभाको छीन लेते हैं। विभिन्न अङ्गोंमें धारित रत्नमय आभूषण उनके अपने ही अङ्गोंकी सौन्दर्य-शोभासे विभूषित होते हैं। गोपियोंके प्रसन्नतापूर्ण एवं अनुरागसूचक नेत्रकोण उन्हें सतत निहारते रहते हैं, मानो भगवान्‌का शरीर-विग्रह उनके प्राणोंसे ही निर्मित हुआ है। वे रासमण्डलके मध्यभागमें विराजमान तथा रासोल्लासके लिये अत्यन्त उत्सुक हैं। राधाके मुखरूपी शरच्चन्द्रकी सुधाका पान करनेके लिये चकोररूप हो रहे हैं। मणिराज कौस्तुभकी प्रभासे उनका वक्षःस्थल अत्यन्त उद्भासित हो रहा है और पारिजात-पुष्पोंकी विविध मालाओंसे वे अत्यन्त शोभायमान हैं। उनका मस्तक उत्तम रत्नोंके सारतत्त्वसे निर्मित दिव्य मुकुटकी ज्योतिसे जगमगा रहा है। मनोविनोदकी साधनभूता मुरलीको उन्होंने अपने हाथमें ले रखा है। देवता और असुर सभी उनकी पूजा करते हैं। वे ध्यानके द्वारा भी किसीके वशमें आनेवाले नहीं हैं। उन्हें आराधनाद्वारा रिझा लेना भी बहुत कठिन है। ब्रह्मा आदि देवता भी उनकी वन्दना करते हैं और वे समस्त कारणोंके भी कारण हैं; उन परमेश्वर श्रीकृष्णका मैं भजन करता हूँ।

इस विधिसे ध्यान और आवाहन करके पूर्वोक्त सोलह प्रकारकी उपहार-सामग्री अर्पित करते हुए भक्तिभावसे उनका पूजन करे। नारद! निम्नाङ्कित मन्त्रोंसे उन्हें पूजनोपचार अर्पित करने चाहिये।

आसन

परमेश्वर! यह रत्नसारजटित सुवर्णनिर्मित सिंहासन भाँति-भाँतिके विचित्र चित्रोंसे अलंकृत है। इसे ग्रहण कीजिये।

वस्त्र

राधावल्लभ! विश्वकर्माद्वारा निर्मित इस दिव्य वस्त्रको प्रज्वलित आगमें धोकर शुद्ध किया गया

है। इसका मूल्य वर्णनातीत है। इसे धारण कीजिये।

पाद्य

करुणानिधान! आपके चरणोंको पखारनेके लिये सुवर्णमय पात्रमें रखा हुआ यह सुवासित शीतल जल स्वीकार कीजिये।

अर्घ्य

भक्तवत्सल! शङ्ख-पात्रमें रखे गये जल, पुष्प, दूर्वा तथा चन्दनसे युक्त यह पवित्र अर्घ्य आपकी सेवामें प्रस्तुत है। इसे ग्रहण कीजिये।

पुष्प

सर्वकारण! चन्दन और अगुरुसे युक्त यह सुवासित श्वेत पुष्प शीघ्र ही आपके मनमें आनन्दका संचार करनेवाला है। इसे स्वीकार कीजिये।

अनुलेपन

श्रीकृष्ण! चन्दन, अगुरु, कस्तूरी, कुंकुम और खससे तैयार किया गया यह उत्तम अनुलेपन सबको प्रिय है। इसे ग्रहण कीजिये।

धूप

भगवन्! नाना द्रव्योंसे मिश्रित यह सुगन्धयुक्त सुखद धूप वृक्षविशेषका रस है। इसे स्वीकार कीजिये।

दीप

प्रभो! रत्नोंके सारतत्त्वसे निर्मित तथा दिन-रात भलीभाँति प्रकाशित होनेवाला यह दिव्य दीप अन्धकार-नाशका हेतु है। इसे ग्रहण कीजिये।

नैवेद्य

स्वात्माराम! ये नाना प्रकारके स्वादिष्ट, सुगन्धित और पवित्र भक्ष्य, भोज्य तथा चोष्य आदि द्रव्य आपकी सेवामें प्रस्तुत है। इन्हें अङ्गीकार कीजिये।

यज्ञोपवीत

देवदेवेश्वर! गायत्री-मन्त्रसे दी गयी ग्रन्थिसे युक्त तथा सुवर्णमय तन्तुओंसे निर्मित यह चतुर शिल्पीद्वारा रचित यज्ञोपवीत ग्रहण कीजिये।

भूषण

नन्दनन्दन! बहुमूल्य रत्नोंद्वारा रचित दिव्य प्रभासे प्रकाशमान तथा समस्त अवयवोंको विभूषित करनेवाला यह भूषण स्वीकार कीजिये।

गन्ध

दीनबन्धो! समस्त मङ्गल-कर्ममें वर्णनीय तथा मङ्गलदायक यह प्रमुख गन्ध सेवामें समर्पित है। इसे स्वीकार कीजिये।

स्नानीय

भगवन्! आँवला तथा बिल्वपत्रसे तैयार किया गया यह मनोहर विष्णु-तैल समस्त लोकोंको अभीष्ट है। इसे ग्रहण कीजिये।

ताम्बूल

नाथ! जिसे सब चाहते हैं, वह कर्पूर आदिसे सुवासित ताम्बूल मैंने आपकी सेवामें अर्पित किया है। इसे अङ्गीकार कीजिये।

मधुपर्क

गोपीकान्त! उत्तम रत्नोंके सारतत्त्वसे निर्मित पात्रमें रखा हुआ यह मधुर मधु बहुत ही मीठा और स्वादिष्ट है। इसके सेवनसे सबको प्रसन्नता होती है। अतः कृपापूर्वक इसे ग्रहण कीजिये।

पुनराचमनीय जल

मधुसूदन! यह परम पवित्र, सुवासित और निर्मल गङ्गा-जल पुनः आचमनके लिये अङ्गीकार कीजिये।

इस प्रकार भक्तपुरुष प्रसन्नतापूर्वक सोलह उपचार अर्पित करके निम्नाङ्कित मन्त्रसे यत्नपूर्वक फूल और माला चढ़ावे।

प्रभो! श्वेत डोरेमें नाना प्रकारके फूलोंसे गुँथा हुआ यह पुष्पहार समस्त आभूषणोंमें श्रेष्ठ है। इसे स्वीकार कीजिये।

इस प्रकार पुष्पमाला अर्पित करके व्रती पुरुष मूल-मन्त्रसे पुष्पाञ्जलि दे और भक्तिभावसे दोनों हाथ जोड़कर भगवान्‌की स्तुति करे।

हे श्रीकृष्ण! हे राधाकान्त! हे करुणासागर! हे प्रभो! घोर एवं भयानक संसार-सागरसे मेरा उद्धार कीजिये। प्रभो! सैकड़ों जन्मोंसे सांसारिक क्लेश भोगनेके कारण मैं उद्विग्न हो उठा हूँ और अपने कर्मपाशरूपी बेड़ियोंसे बँधा हूँ। आप इस बन्धनसे मुझे छुड़ाइये। नाथ! आपके चरणोंमें पड़ा हूँ। मुझ शरणागतकी ओर कृपापूर्वक देखिये। भवपाशके भयसे डरे हुए मुझ शरणापन्नकी रक्षा कीजिये। प्रभो! जो वस्तु भक्तिहीन, क्रियाहीन, विधिहीन तथा वेदमन्त्रोंसे रहित हो और इस प्रकार जिसके समर्पणमें त्रुटि आ गयी हो; उसे आप स्वयं ही पूर्ण कीजिये। हरे! वेदोक्त विधिको न जाननेके कारण अङ्गहीन हुए कर्ममें आपके नामोच्चारणसे ही समस्त न्यूनताओंकी पूर्ति होती है।

इस प्रकार स्तुति और प्रणाम करके ब्राह्मणको दक्षिणा दे और महोत्सवपूर्वक व्रती पुरुष रातमें जागरण करे। यदि व्रत और उपवास करके कोई नींद ले ले अथवा पुनः जल पी ले तो उसे उस व्रतका आधा ही फल मिलता है; अतः विप्रवर! यत्नपूर्वक एक ही बार हविष्यान्न ग्रहण करे। उस समय श्रीकृष्णके चरणोंका स्मरण करते हुए निम्नाङ्कित मन्त्रको पढ़े।

विष्णुरूप अन्न! ब्रह्माद्वारा प्राणियोंके प्राणके रूपमें तुम्हारा निर्माण हुआ है; अतः तुम मुझे व्रत और उपवासका फल दो। जो इस प्रकार भारतवर्षमें भक्तिपूर्वक इस उत्तम व्रतका अनुष्ठान करता है, वह पहले और बादकी सात-सात पीढ़ियोंका तथा अपना भी अवश्य ही उद्धार करता है। व्रती मनुष्य निश्चय ही माता, पिता, भाई, सास, ससुर, पुत्री, दामाद तथा भृत्य-वर्गका भी उद्धार कर देता है। ब्रह्मन्! इस तरह श्रीकृष्णका चरित्र और व्रत कहा गया। यह सुख और मोक्ष प्रदान करनेवाला सारभूत साधन है। अब मैं तुमसे श्रीकृष्णकी दूसरी लीलाएँ कहता हूँ। (अध्याय २६)

गोपकिशोरियोंद्वारा गौरी-व्रतका पालन, दुर्गा-स्तोत्र और उसकी महिमा, समाप्तिके दिन गोपियोंको नग्न-स्नान करती जान श्रीकृष्णद्वारा उनके वस्त्र आदिका अपहरण, श्रीराधाकी प्रार्थनासे भगवान्‌का सब वस्तुएँ लौटा देना, व्रतका विधान, दुर्गाका ध्यान, गौरी-व्रतकी कथा, लक्ष्मीस्वरूपा वेदवतीका सीता होकर इस व्रतके प्रभावसे श्रीरामको पतिरूपमें पाना, सीताद्वारा की हुई पार्वतीकी स्तुति, श्रीराधा आदिके द्वारा व्रतान्तमें दान, देवीका उन सबको दर्शन देकर राधाको स्वरूपकी स्मृति कराना, उन्हें अभीष्ट वर देना तथा श्रीकृष्णका राधा आदिको पुनः दर्शन-सम्बन्धी मनोवाञ्छित वर देना

भगवान् श्रीनारायण कहते हैं—नारद! सुनो। अब मैं पुनः श्रीकृष्ण-लीलाका वर्णन करता हूँ। यह वह लीला है, जिसमें गोपियोंके चीरका अपहरण हुआ और उन्हें मनोवाञ्छित वरदान दिया गया। हेमन्तके प्रथम मास—मार्गशीर्षमें गोपाङ्गनाएँ प्रेमके वशीभूत हो प्रतिदिन केवल एक बार हविष्यान्न ग्रहण करके पूर्णतः संयमशील हो पूरे महीनेभर भक्तिभावसे व्रत करती रहीं। वे नहाकर यमुनाके तटपर पार्वतीकी बालुकामयी मूर्ति बना उसमें देवीका आवाहन करके

मन्त्रोच्चारणपूर्वक नित्यप्रति पूजा किया करती थीं। मुने! गोपियाँ चन्दन, अगुरु, कस्तूरी, कुंकुम, नाना प्रकारके मनोहर पुष्प, भाँति-भाँतिके पुष्पहार, धूप, दीप, नैवेद्य, वस्त्र, अनेकानेक फल, मणि, मोती और मूँगे चढ़ाकर तथा अनेक प्रकारके बाजे बजाकर प्रतिदिन देवीकी पूजा सम्पन्न करती थीं।

हे देवि जगतां मातः सृष्टिस्थित्यन्तकारिणि।
नन्दगोपसुतं कान्तमस्मभ्यं देहि सुव्रते॥

'उत्तम व्रतका पालन करनेवाली हे देवि! हे जगदम्ब! तुम्हीं जगत्‌की सृष्टि, पालन और संहार करनेवाली हो; तुम हमें नन्दगोप-नन्दन श्यामसुन्दरको ही प्राणवल्लभ पतिके रूपमें प्रदान करो।'

इस मन्त्रसे देवेश्वरी दुर्गाकी मूर्ति बनाकर संकल्प करके मूलमन्त्रसे उनका पूजन करे। सामवेदोक्त मूलमन्त्र बीजमन्त्रसहित इस प्रकार है—

ॐ श्रीदुर्गायै सर्वविघ्नविनाशिन्यै नमः।—इसी मन्त्रसे सब गोपकुमारियाँ भक्तिभाव और प्रसन्नताके साथ देवीको फूल, माला, नैवेद्य, धूप, दीप और वस्त्र चढ़ाती थीं। मूँगेकी मालासे भक्तिपूर्वक इस मन्त्रका एक सहस्र जप और स्तुति करके वे धरतीपर माथा टेककर देवीको प्रणाम करती थीं। उस समय कहतीं कि 'समस्त मङ्गलोंका भी मङ्गल करनेवाली और सम्पूर्ण कामनाओंको देनेवाली शंकरप्रिये देवि शिवे! तुम्हें नमस्कार है। तुम मुझे मनोवाञ्छित वस्तु दो।' यों कह नमस्कार करके दक्षिणा दे सारे नैवेद्य ब्राह्मणोंको अर्पित करके वे घरको चली जाती थीं।

भगवान् श्रीनारायण कहते हैं—मुने! अब तुम देवीका वह स्तवराज सुनो, जिससे सब गोपकिशोरियाँ भक्तिपूर्वक पार्वतीजीका स्तवन करती थीं, जो सम्पूर्ण अभीष्ट फलोंको देनेवाली हैं।

जब सारा जगत् घोर एकार्णवमें डूब गया था; चन्द्रमा और सूर्यकी भी सत्ता नहीं रह गयी थी; कज्जलके समान जलराशिने समस्त चराचर विश्वको आत्मसात् कर लिया था; उस पुरातन कालमें जलशायी श्रीहरिने ब्रह्माजीको इस स्तोत्रका उपदेश दिया। उपदेश देकर उन जगदीश्वरने योगनिद्राका आश्रय लिया। तदनन्तर उनके नाभिकमलमें विराजमान ब्रह्माजी जब मधु और कैटभसे पीड़ित हुए, तब उन्होंने इसी स्तोत्रसे मूलप्रकृति ईश्वरीका स्तवन किया।

'ॐ नमो जय दुर्गायै'

ब्रह्मा बोले—दुर्गे! शिवे! अभये! माये! नारायणि! सनातनि! जये! मुझे मङ्गल प्रदान करो। सर्वमङ्गले! तुम्हें मेरा नमस्कार है। दुर्गाका 'दकार' दैत्यनाशरूपी अर्थका वाचक कहा गया है। 'उकार' विघ्ननाशरूपी अर्थका बोधक है। उसका यह अर्थ वेदसम्मत है। 'रेफ' रोगनाशक अर्थको प्रकट करता है। 'गकार' पापनाशक अर्थका वाचक है। और 'आकार' भय तथा शत्रुओंके नाशका प्रतिपादक कहा गया है। जिनके चिन्तन, स्मरण और कीर्तनसे ये दैत्य आदि निश्चय ही नष्ट हो जाते हैं; वे भगवती दुर्गा श्रीहरिकी शक्ति कही गयी हैं। यह बात किसी औरने नहीं, साक्षात् श्रीहरिने ही कही है। 'दुर्ग' शब्द विपत्तिका वाचक है और 'आकार' नाशका। जो दुर्ग अर्थात् विपत्तिका नाश करनेवाली हैं; वे देवी ही सदा 'दुर्गा' कही गयी हैं। 'दुर्ग' शब्द दैत्यराज दुर्गमासुरका वाचक है और 'आकार' नाश अर्थका बोधक है। पूर्वकालमें देवीने उस दुर्गमासुरका नाश किया था; इसलिये विद्वानोंने उनका नाम 'दुर्गा' रखा। शिवा शब्दका 'शकार' कल्याण अर्थका, 'इकार' उत्कृष्ट एवं समूह अर्थका तथा 'वाकार' दाता अर्थका वाचक है। वे देवी कल्याणसमूह तथा उत्कृष्ट वस्तुको देनेवाली हैं; इसलिये 'शिवा' कही गयी हैं। वे शिव अर्थात् कल्याणकी मूर्तिमती राशि हैं;

इसलिये भी उन्हें 'शिवा' कहा गया है। 'शिव' शब्द मोक्षका बोधक है तथा 'आकार' दाताका। वे देवी स्वयं ही मोक्ष देनेवाली हैं; इसलिये 'शिवा' कही गयी हैं। 'अभय' का अर्थ है भयनाश और 'आकार' का अर्थ है दाता। वे तत्काल अभय-दान करती हैं; इसलिये 'अभया' कहलाती हैं। 'मा' का अर्थ है राजलक्ष्मी और 'या' का अर्थ है प्राप्ति करानेवाला। जो शीघ्र ही राजलक्ष्मीकी प्राप्ति कराती हैं; उन्हें 'माया' कहा गया है। 'मा' मोक्ष अर्थका और 'या' प्राप्ति अर्थका वाचक है। जो सदा मोक्षकी प्राप्ति कराती हैं, उनका नाम 'माया' है। वे देवी भगवान् नारायणका आधा अङ्ग हैं। उन्हींके समान तेजस्विनी हैं और उनके शरीरके भीतर निवास करती हैं; इसलिये उन्हें 'नारायणी' कहते हैं। 'सनातन' शब्द नित्य और निर्गुणका वाचक है। जो देवी सदा निर्गुणा और नित्या हैं; उन्हें 'सनातनी' कहा गया है। 'जय' शब्द कल्याणका वाचक है और 'आकार' दाताका। जो देवी सदा जयदेती हैं, उनका नाम 'जया' है। 'सर्वमङ्गल' शब्द सम्पूर्ण ऐश्वर्यका बोधक है और 'आकार' का अर्थ है देनेवाला। ये देवी सम्पूर्ण ऐश्वर्यको देनेवाली हैं; इसलिये 'सर्वमङ्गला' कही गयी हैं। ये देवीके आठ नाम सारभूत हैं और यह स्तोत्र उन नामोंके अर्थसे युक्त है।

भगवान् नारायणने नाभिकमलपर बैठे हुए ब्रह्माको इसका उपदेश दिया था। उपदेश देकर वे जगदीश्वर योगनिद्राका आश्रय ले सो गये। तदनन्तर जब मधु और कैटभ नामक दैत्य ब्रह्माजीको मारनेके लिये उद्यत हुए तब ब्रह्माजीने इस स्तोत्रके द्वारा दुर्गाजीका स्तवन एवं नमन किया। उनके द्वारा स्तुति की जानेपर साक्षात् दुर्गाने उन्हें 'सर्वरक्षण' नामक दिव्य श्रीकृष्ण-कवचका उपदेश दिया। कवच देकर महामाया अदृश्य हो गयीं। उस स्तोत्रके ही प्रभावसे विधाताको दिव्य कवचकी प्राप्ति हुई। उस श्रेष्ठ कवचको पाकर निश्चय ही वे निर्भय हो गये। फिर ब्रह्माने महेश्वरको उस समय स्तोत्र और कवचका उपदेश दिया, जब कि त्रिपुरासुरके साथ युद्ध करते समय रथसहित भगवान् शंकर नीचे गिर गये थे। उस कवचके द्वारा आत्मरक्षा करके उन्होंने निद्राकी स्तुति की। फिर योगनिद्राके अनुग्रह और स्तोत्रके प्रभावसे वहाँ शीघ्र ही वृषभरूपधारी भगवान् जनार्दन आये। उनके साथ शक्तिस्वरूपा दुर्गा भी थीं। वे भगवान् शंकरको विजय देनेके लिये आये थे। उन्होंने रथसहित शंकरको मस्तकपर बिठाकर अभय दान दिया और उन्हें आकाशमें बहुत ऊँचाईतक पहुँचा दिया। फिर जयाने शिवको विजय दी। उस समय ब्रह्मास्त्र हाथमें ले योगनिद्रासहित श्रीहरिका स्मरण करते हुए भगवान् शंकरने स्तोत्र और कवच पाकर त्रिपुरासुरका वध किया था।

इसी स्तोत्रसे दुर्गाका स्तवन करके गोपकुमारियोंने श्रीहरिको प्राणवल्लभके रूपमें प्राप्त कर लिया। इस स्तोत्रका ऐसा ही प्रभाव है। गोपकन्याओंद्वारा किया गया 'सर्वमङ्गल' नामक स्तोत्र शीघ्र ही समस्त विघ्नोंका विनाश करनेवाला और मनोवाञ्छित वस्तुको देनेवाला है। शैव, वैष्णव अथवा शाक्त कोई भी क्यों न हो, जो मानव तीनों संध्याओंके समय प्रतिदिन भक्तिभावसे इस स्तोत्रका पाठ करता है, वह संकटसे मुक्त हो जाता है। स्तोत्रके स्मरणमात्रसे मनुष्य तत्काल ही संकटमुक्त एवं निर्भय हो जाता है। साथ ही सम्पूर्ण उत्तम ऐश्वर्य एवं मनोवाञ्छित वस्तुको शीघ्र प्राप्त कर लेता है। पार्वतीकी कृपासे इहलोकमें श्रीहरिकी सुदृढ़ भक्ति और निरन्तर स्मृति पाता है एवं अन्तमें भगवान्‌के दास्यसुखको उपलब्ध करता है।

इस स्तवराजके द्वारा व्रजाङ्गनाओंने एक मासतक प्रतिदिन बड़ी भक्तिके साथ ईश्वरीका स्तवन एवं नमन किया। जब मास पूरा हुआ

तो व्रतकी समाप्तिके दिन वे गोपियाँ अपने वस्त्रोंको तटपर रखकर यमुनाजीमें स्नानके लिये उतरीं। नारद! रत्नोंके मोलपर मिलनेवाले नाना प्रकारके द्रव्य, लाल, पीले, सफेद और मिश्रित रंगवाले मनोहर वस्त्र यमुनाजीके तटपर छा रहे थे। उनकी गणना नहीं की जा सकती थी। उन सबके द्वारा यमुनाजीके उस तटकी बड़ी शोभा हो रही थी। चन्दन, अगुरु और कस्तूरीकी वायुसे सारा तट-प्रान्त सुरभित था। भाँति-भाँतिके नैवेद्य, देश-कालके अनुसार प्राप्त होनेवाले फल, धूप, दीप, सिन्दूर और कुंकुम यमुनाके उस तटको सुशोभित कर रहे थे। जलमें उतरनेपर गोपियाँ कौतूहलवश क्रीडाके लिये उन्मुख हुईं। उनका मन श्रीकृष्णको समर्पित था। वे अपने नग्न शरीरसे जल-क्रीड़ामें आसक्त हो गयीं। श्रीकृष्णने तटपर रखे हुए भाँति-भाँतिके द्रव्यों और वस्त्रोंको देखा। देखकर वे ग्वाल-बालोंके साथ वहाँ गये और सारे वस्त्र लेकर वहाँ रखी हुई खाद्य वस्तुओंको सखाओंके साथ खाने लगे। फिर कुछ वस्त्र लेकर बड़े हर्षके साथ उनका गट्ठर बाँधा और कदम्बकी ऊँची डालपर चढ़कर गोविन्दने गोपिकाओंसे इस प्रकार कहा।

श्रीकृष्ण बोले—गोपियो! तुम सब-की-सब इस व्रतकर्ममें असफल हो गयीं। पहले मेरी बात सुनकर विधि-विधानका पालन करो। उसके बाद इच्छानुसार जलक्रीड़ा करना। जो मास व्रत करनेके योग्य है; जिसमें मङ्गलकर्मके अनुष्ठानका संकल्प किया गया है; उसी मासमें तुम लोग जलके भीतर घुसकर नंगी नहा रही हो; ऐसा क्यों किया? इस कर्मके द्वारा तुम अपने व्रतको अङ्गहीन करके उसमें हानि पहुँचा रही हो। तुम्हारे पहननेके वस्त्र, पुष्पहार तथा व्रतके योग्य वस्तुएँ, जो यहाँ रखी गयी थीं, किसने चुरा लीं? जो स्त्री व्रतकालमें नंगी स्नान करती है, उसके ऊपर स्वयं वरुणदेव रुष्ट हो जाते हैं। जान पड़ता है, वरुणके अनुचर तुम्हारे वस्त्र उठा ले गये। अब तुम नंगी होकर घरको कैसे जाओगी? तुम्हारे इस व्रतका क्या होगा? व्रतके द्वारा जिस देवीकी आराधना की जा रही थी, वह कैसी है? तुम्हारी वस्तुओंकी रक्षा क्यों नहीं कर रही है?

श्रीकृष्णकी यह बात सुनकर व्रजाङ्गनाओंको बड़ी चिन्ता हुई। उन्होंने देखा, यमुनाजीके तटपर न तो हमारे वस्त्र हैं और न वस्तुएँ ही। वे जलमें नंगी खड़ी हो विषाद करने लगीं। जोर-जोरसे रोने लगीं और बोलीं—'यहाँ रखे हुए हमारे वस्त्र कहाँ गये और पूजाकी वस्तुएँ भी कहाँ हैं? इस प्रकार विषाद करके वे सब गोपकन्याएँ दोनों हाथ जोड़ भक्ति और विनयके साथ हाथ जोड़कर वहीं श्यामसुन्दरसे बोलीं।'

गोपिकाओंने कहा—गोविन्द! तुम्हीं हम दासियोंके श्रेष्ठ स्वामी हो; अतः हमारे पहनने योग्य वस्त्रोंको तुम अपनी ही वस्तु समझो। उन्हें लेने या स्पर्श करनेका तुम्हें पूरा अधिकार है; परंतु व्रतके उपयोगमें आनेवाली जो दूसरी वस्तुएँ हैं, वे इस समय आराध्य देवताकी सम्पत्ति हैं; उन्हें दिये बिना उन वस्तुओंको ले लेना तुम्हारे लिये कदापि उचित नहीं है। हमारी साड़ियाँ दे दो; उन्हें पहनकर हम व्रतकी पूर्ति करेंगी। श्यामसुन्दर! इस समय उनके अतिरिक्त अन्य वस्तुओंको ही अपना आहार बनाओ।

यह सुनकर श्रीकृष्णने कहा—तुम लोग आकर अपने-अपने वस्त्र ले जाओ।

यह सुनकर श्रीराधाके अङ्गोंमें रोमाञ्च हो आया। वे श्रीहरिके निकट वस्त्र लेनेके लिये नहीं गयीं। उन्होंने जलमें योगासन लगाकर श्रीहरिके उन चरणकमलोंका चिन्तन किया, जो ब्रह्मा, शिव अनन्त (शेषनाग) तथा धर्मके भी वन्दनीय एवं मनोवाञ्छित वस्तु देनेवाले हैं। उन चरणकमलोंका चिन्तन करते-करते उनके नेत्रोंमें

प्रेमके आँसू उमड़ आये और वे भावातिरेकसे उन गुणातीत प्राणेश्वरकी स्तुति करने लगीं।

राधिका बोलीं—गोलोकनाथ! गोपीश्वर! मेरे स्वामिन्! प्राणवल्लभ! दीनबन्धो! दीनेश्वर! सर्वेश्वर! आपको नमस्कार है। गोपेश्वर! गोसमुदायके ईश्वर! यशोदानन्दवर्धन! नन्दनन्दन! सदानन्द! नित्यानन्द! आपको नमस्कार है। इन्द्रके क्रोधको भङ्ग (व्यर्थ) करनेवाले गोविन्द! आपने ब्रह्माजीके दर्पका भी दलन किया है। कालियदमन! प्राणनाथ! श्रीकृष्ण! आपको नमस्कार है। शिव और अनन्तके भी ईश्वर! ब्रह्मा और ब्राह्मणोंके ईश्वर! परात्पर! ब्रह्मस्वरूप! ब्रह्मज्ञ! ब्रह्मबीज! आपको नमस्कार है। चराचर जगत्रूपी वृक्षके बीज! गुणातीत! गुणस्वरूप! गुणबीज! गुणाधार! गुणेश्वर! आपको नमस्कार है। प्रभो! आप अणिमा आदि सिद्धियोंके स्वामी हैं। सिद्धिकी भी सिद्धिरूप हैं। तपस्विन्! आप ही तप हैं और आप ही तपस्याके बीज; आपको नमस्कार है। जो अनिर्वचनीय अथवा निर्वचनीय वस्तु है, वह सब आपका ही स्वरूप है। आप ही उन दोनोंके बीज हैं। सर्वबीजरूप प्रभो! आपको नमस्कार है। मैं, सरस्वती, लक्ष्मी, दुर्गा, गङ्गा और वेदमाता सावित्री—ये सब देवियाँ जिनके चरणारविन्दोंकी अर्चनासे नित्य पूजनीया हुई हैं; उन आप परमेश्वरको बारंबार नमस्कार है। जिनके सेवकोंके स्पर्श और निरन्तर ध्यानसे तीर्थ पवित्र होते हैं; उन भगवान्‌को मेरा नमस्कार है।

यों कहकर सती देवी राधिका अपने शरीरको जलमें और मन-प्राणोंको श्रीकृष्णमें स्थापित करके ठूँठे काठके समान अविचल-भावसे स्थित हो गयीं। श्रीराधाद्वारा किये गये श्रीहरिके इस स्तोत्रका जो मनुष्य तीनों संध्याओंके समय पाठ करता है, वह श्रीहरिकी भक्ति और दास्यभाव प्राप्त कर लेता है तथा उसे निश्चय ही श्रीराधाकी गति सुलभ होती है।* जो विपत्तिमें भक्तिभावसे इसका पाठ करता है, उसे शीघ्र ही सम्पत्ति प्राप्त होती है और चिरकालका खोया हुआ नष्ट द्रव्य भी उपलब्ध हो जाता है। यदि कुमारी कन्या भक्तिभावसे एक वर्षतक प्रतिदिन इस स्तोत्रको सुने तो निश्चय ही उसे श्रीकृष्णके समान कमनीय कान्तिवाला गुणवान् पति प्राप्त होता है।

जलमें स्थित हुई राधिकाने श्रीकृष्णके चरणारविन्दोंका ध्यान एवं स्तुति करनेके पश्चात् जब आँखें खोलकर देखा तो उन्हें सारा जगत् श्रीकृष्णमय दिखायी दिया। मुने! तदनन्तर उन्होंने यमुनातटको वस्त्रों और द्रव्योंसे सम्पन्न देखा। देखकर राधाने इसे तन्द्रा अथवा स्वप्नका विकार

---

* गोलोकनाथ गोपीश मदीश प्राणवल्लभ । हे दीनबन्धो दीनेश सर्वेश्वर नमोऽस्तु ते॥
गोपेश गोसमूहेश यशोदानन्दवर्धन । नन्दात्मज सदानन्द नित्यानन्द नमोऽस्तु ते॥
शतमन्योर्मन्युभग्न ब्रह्मदर्पविनाशक । कालीयदमन प्राणनाथ कृष्ण नमोऽस्तु ते॥
शिवानन्तेश ब्रह्मेश ब्राह्मणेश परात्पर । ब्रह्मस्वरूप ब्रह्मज्ञ ब्रह्मबीज नमोऽस्तु ते॥
चराचरतरोर्बीज गुणातीत गुणात्मक । गुणबीज गुणाधार गुणेश्वर नमोऽस्तु ते॥
अणिमादिकसिद्धीश सिद्धेः सिद्धिस्वरूपक । तपस्तपस्विस्तपसां बीजरूप नमोऽस्तु ते॥
यदनिर्वचनीयं च वस्तु निर्वचनीयकम् । तत्स्वरूप तयोर्बीज सर्वबीज नमोऽस्तु ते॥
अहं सरस्वती लक्ष्मीर्दुर्गा गङ्गा श्रुतिप्रसूः । यस्य पादार्चनान्नित्यं पूज्या तस्मै नमो नमः॥
स्पर्शने यस्य भृत्यानां ध्यानेन च दिवानिशम् । पवित्राणि च तीर्थानि तस्मै भगवते नमः॥
इत्येवमुक्त्वा सा देवी जले संन्यस्य विग्रहम् । मनः प्राणांश्च श्रीकृष्णे तस्थौ स्थाणुसमा सती॥
राधाकृतं हरेः स्तोत्रं त्रिसंध्यं यः पठेन्नरः । हरिभक्तिं च दास्यं च लभेद्राधागतिं ध्रुवम्॥
(२७। १००—११०)

माना। जिस स्थानपर और जिस आधारमें जो द्रव्य पहले रखा गया था, वस्त्रोंसहित वह सब द्रव्य गोपकन्याओंको उसी रूपमें प्राप्त हुआ। फिर तो वे सब-की-सब देवियाँ जलसे निकलकर व्रत पूर्ण करके मनोवाञ्छित वर पाकर अपने-अपने घरको चली गयीं।

नारदजीने पूछा—प्रभो! उस व्रतका क्या विधान है? क्या नाम है और क्या फल है? उसमें कौन-कौन-सी वस्तुएँ और कितनी दक्षिणा देनी चाहिये। व्रतके अन्तमें कौन-सा मनोहर रहस्य प्रकट हुआ? महाभाग! इस नारायण-कथाको विस्तारपूर्वक कहिये।

भगवान् नारायण बोले—वत्स! उस व्रतका सारा विधान मुझसे सुनो। उसका नाम गौरीव्रत है। मार्गशीर्ष मासमें सबसे पहले स्त्रियोंने इसे किया था। यह पुरुषोंको भी धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष देनेवाला तथा श्रीकृष्णकी भक्ति प्रदान करनेवाला है। भिन्न-भिन्न देशोंमें इसकी प्रसिद्धि है। यह व्रत पूर्वपरम्परासे पालित होनेवाला माना गया है। पतिकी कामना रखनेवाली स्त्रियोंको उनकी इच्छाके अनुसार फल देनेवाला है। इससे प्रियतम पति-निमित्तक फलकी प्राप्ति होती है। कुमारी कन्याको चाहिये कि वह पहले दिन उपवास करके अपने वस्त्रको धो डाले और संयमपूर्वक रहे। फिर मार्गशीर्ष मासकी संक्रान्तिके दिन प्रातःकाल श्रद्धापूर्वक नदीके तटपर जाकर स्नान करके वह दो धुले हुए वस्त्र (साड़ी और चोली) धारण करे। तत्पश्चात् कलशमें गणेश, सूर्य, अग्नि, विष्णु, शिव और दुर्गा (पार्वती)—इन छः देवताओंका आवाहन करके नाना द्रव्योंद्वारा उनका पूजन करे। इन सबका पञ्चोपचार पूजन करके वह व्रत आरम्भ करे। कलशके सामने नीचे भूमिपर एक सुविस्तृत वेदी बनावे। वह वेदी चौकोर होनी चाहिये। चन्दन, अगुरु, कस्तूरी और कुंकुमसे उस वेदीका संस्कार करे (इन द्रव्योंसे चौक पूरकर उसे सजा दे)। इसके बाद बालूकी दशभुजा दुर्गामूर्ति बनावे। देवीके ललाटमें सिन्दूर लगावे और नीचेके अङ्गोंमें चन्दन एवं कपूर अर्पित करे। तदनन्तर ध्यानपूर्वक देवीका आवाहन करे। उस समय हाथ जोड़कर निम्नाङ्कित मन्त्रका पाठ करे। उसके बाद पूजा आरम्भ करनी चाहिये।

हे गौरि शंकरार्धाङ्गि यथा त्वं शंकरप्रिया।
तथा मां कुरु कल्याणि कान्तकान्तां सुदुर्लभाम्॥

'भगवान् शंकरकी अर्धाङ्गिनी कल्याणमयी गौरीदेवि! जैसे तुम शंकरजीको बहुत ही प्रिय हो, उसी प्रकार मुझे भी अपने प्रियतम पतिकी परम दुर्लभा प्राणवल्लभा बना दो।'

इस मन्त्रको पढ़कर देवी जगदम्बाका ध्यान करे। उनका गूढ़ ध्यान सामवेदमें वर्णित है, जो सम्पूर्ण कामनाओंको देनेवाला है। नारद! वह ध्यान मुनीन्द्रोंके लिये भी दुर्लभ है, तथापि मैं तुम्हें बता रहा हूँ। इसके अनुसार सिद्ध पुरुष दुर्गतिनाशिनी दुर्गाका ध्यान करते हैं।

दुर्गाका ध्यान

भगवती दुर्गा शिवा (कल्याणस्वरूपा), शिवप्रिया, शैवी (शिवसे प्रगाढ़ सम्बन्ध रखनेवाली) तथा शिवके वक्षःस्थलपर विराजमान होनेवाली हैं। उनके प्रसन्न मुखपर मन्द मुस्कानकी प्रभा फैली रहती है। उनकी बड़ी प्रतिष्ठा है। उनके नेत्र मनोहर हैं। वे नित्य नूतन यौवनसे सम्पन्न हैं और रत्नमय आभूषण धारण करती हैं। उनकी भुजाएँ रत्नमय केयूर तथा कङ्कणोंसे और दोनों चरण रत्ननिर्मित नूपुरोंसे विभूषित हैं। रत्नोंके बने हुए दो कुण्डल उनके दोनों कपोलोंकी शोभा बढ़ाते हैं। उनकी वेणीमें मालतीकी माला लगी हुई है, जिसपर भ्रमर मँड़राते रहते हैं। भालदेशमें कस्तूरीकी बेंदीके साथ सिन्दूरका सुन्दर तिलक शोभा पाता है। उनके दिव्य वस्त्र अग्निकी ज्वालासे शुद्ध किये गये हैं। वे मस्तकपर रत्नमय

मुकुट धारण करती हैं। उनकी आकृति बड़ी मनोहर है। श्रेष्ठ मणियोंके सारतत्त्वसे जटित रत्नमयी माला उनके कण्ठ एवं वक्षःस्थलको उद्भासित किये रहती है। पारिजातके फूलोंकी मालाएँ गलेसे लेकर घुटनोंतक लटकी रहती हैं। उनकी कटिका निम्नभाग अत्यन्त स्थूल और कठोर है। वे स्तनों और नूतन यौवनके भारसे कुछ-कुछ झुकी-सी रहती हैं। उनकी झाँकी मनको मोह लेनेवाली है। ब्रह्मा आदि देवता निरन्तर उनकी स्तुति करते हैं। उनके श्रीअङ्गोंकी प्रभा करोड़ों सूर्योंको लज्जित करती है। नीचे-ऊपरके ओठ पके बिम्बफलके सदृश लाल हैं। अङ्गकान्ति सुन्दर चम्पाके समान है। मोतीकी लड़ियोंको भी लजानेवाली दन्तावली उनके मुखकी शोभा बढ़ाती है। वे मोक्ष और मनोवाञ्छित कामनाओंको देनेवाली हैं। शरत्कालके पूर्ण चन्द्रको भी तिरस्कृत करनेवाली चन्द्रमुखी देवी पार्वतीका मैं भजन करता हूँ।

इस प्रकार ध्यान करके मस्तकपर फूल रखकर व्रती पुरुष प्रसन्नतापूर्वक हाथमें पुष्प ले पुनः भक्तिभावसे ध्यान करके पूजन आरम्भ करे। पूर्वोक्त मन्त्रसे ही प्रतिदिन हर्षपूर्वक षोडशोपचार चढ़ावे। फिर व्रती भक्ति और प्रसन्नताके साथ पूर्वकथित स्तोत्रद्वारा ही देवीकी स्तुति करके उन्हें प्रणाम करे। प्रणामके पश्चात् भक्तिभावसे मनको एकाग्र करके गौरीव्रतकी कथा सुने।

नारदजीने पूछा—भगवन्! आपने व्रतके विधान, फल और गौरीके अद्भुत स्तोत्रका वर्णन कर दिया। अब मैं गौरी-व्रतकी शुभ कथा सुनना चाहता हूँ। पहले किसने इस व्रतको किया था? और किसने भूतलपर इसे प्रकाशित किया था? इन सब बातोंको आप विस्तारपूर्वक बताइये; क्योंकि आप संदेहका निवारण करनेवाले हैं।

भगवान् श्रीनारायणने कहा—नारद! कुशध्वजकी पुत्री सती वेदवतीने महान् तीर्थ पुष्करमें पहले-पहल इस व्रतका अनुष्ठान किया था। व्रतकी समाप्तिके दिन कोटि सूर्योंके समान प्रकाशमान भगवती जगदम्बाने उसे साक्षात् दर्शन दिया। देवीके साथ लाख योगिनियाँ भी थीं। वे परमेश्वरी सुवर्णनिर्मित रथपर बैठी थीं और उनके प्रसन्नमुखपर मुस्कराहट फैल रही थी। उन्होंने संयमशीला वेदवतीसे कहा।

पार्वती बोलीं—वेदवती! तुम्हारा कल्याण हो। तुम इच्छानुसार वर माँगो। तुम्हारे इस व्रतसे मैं संतुष्ट हूँ; अतः तुम्हें मनोवाञ्छित वर दूँगी।

नारद! पार्वतीकी बात सुनकर साध्वी वेदवतीने उन प्रसन्नहृदया देवीकी ओर देखा और दोनों हाथ जोड़ उन्हें प्रणाम करके वह बोली।

वेदवतीने कहा—देवि! मैंने नारायणको मनसे चाहा है; अतः वे ही मेरे प्राणवल्लभ पति हों—यह वर मुझे दीजिये। दूसरे किसी वरको लेनेकी मुझे इच्छा नहीं है। आप उनके चरणोंमें सुदृढ़ भक्ति प्रदान कीजिये।

वेदवतीकी बात सुनकर जगदम्बा पार्वती हँस पड़ीं और तुरंत रथसे उतरकर उस हरिवल्लभासे बोलीं।

पार्वतीने कहा—जगदम्ब! मैंने सब जान लिया। तुम साक्षात् सती लक्ष्मी हो और भारतवर्षको अपनी पदधूलिसे पवित्र करनेके लिये यहाँ आयी हो। साध्वि! परमेश्वरि! तुम्हारी चरणरजसे यह पृथ्वी तथा यहाँके सम्पूर्ण तीर्थ तत्काल पवित्र हो गये हैं। तपस्विनि! तुम्हारा यह व्रत लोकशिक्षाके लिये है। तुम तपस्या करो। देवि! तुम साक्षात् नारायणकी वल्लभा हो और जन्म-जन्ममें उनकी प्रिया रहोगी। भविष्यमें भूतलका भार उतारनेके लिये तथा यहाँके दस्युभूत राक्षसोंका नाश करनेके लिये पूर्ण परमात्मा विष्णु दशरथनन्दन श्रीरामके रूपमें वसुधापर पधारेंगे। उनके दो भक्त जय और विजय ब्राह्मणोंके शापके कारण वैकुण्ठधामसे

नीचे गिर गये हैं। उनका उद्धार करनेके लिये त्रेतायुगमें अयोध्यापुरीके भीतर श्रीहरिका आविर्भाव होगा। तुम भी शिशुरूप धारण करके मिथिलाको जाओ। वहाँ राजा जनक अयोनिजा कन्याके रूपमें तुम्हें पाकर यत्नपूर्वक तुम्हारा लालन-पालन करेंगे। वहाँ तुम्हारा नाम सीता होगा। श्रीराम भी मिथिलामें जाकर तुम्हारे साथ विवाह करेंगे। तुम प्रत्येक कल्पमें नारायणकी ही प्राणवल्लभा होओगी।

यों कह पार्वती वेदवतीको हृदयसे लगाकर अपने निवास-स्थानको लौट गयीं। साध्वी वेदवती मिथिलामें जाकर मायासे हलद्वारा भूमिपर की गयी रेखा (हराई)-में सुखपूर्वक स्थित हो गयीं। उस समय राजा जनकने देखा, एक नग्न बालिका आँख बंद किये भूमिपर पड़ी है। उसकी अङ्गकान्ति तपाये हुए सुवर्णके समान उद्दीप्त है तथा वह तेजस्विनी बालिका रो रही है। उसे देखते ही राजाने उठाकर गोदमें चिपका लिया। जब वे घरको लौटने लगे, उस समय वहीं उनके प्रति आकाशवाणी हुई—'राजन्! यह अयोनिजा कन्या साक्षात् लक्ष्मी है; इसे ग्रहण करो। स्वयं भगवान् नारायण तुम्हारे दामाद होंगे।' यह आकाशवाणी सुन कन्याको गोदमें लिये राजर्षि जनक घरको गये और प्रसन्नतापूर्वक उन्होंने लालन-पालनके लिये उसे अपनी प्यारी रानीके हाथमें दे दिया। युवती होनेपर सती सीताने इस व्रतके प्रभावसे त्रिलोकीनाथ विष्णुके अवताररूप दशरथनन्दन श्रीरामको प्रियतम पतिके रूपमें प्राप्त कर लिया। महर्षि वसिष्ठने इस व्रतको पृथ्वीपर प्रकाशित किया तथा श्रीराधाने इस व्रतका अनुष्ठान करके श्रीकृष्णको प्राणवल्लभके रूपमें प्राप्त किया। अन्यान्य गोपकुमारियोंने इस व्रतके प्रभावसे उनको पाया। नारद! इस प्रकार मैंने गौरी-व्रतकी कथा कही। जो कुमारी भारतवर्षमें इस व्रतका पालन करती है, उसे श्रीकृष्ण-तुल्य पतिकी प्राप्ति होती है, इसमें संशय नहीं है।

भगवान् नारायण कहते हैं—इस प्रकार उन गोपकुमारियोंने एक मासतक व्रत किया। वे पूर्वोक्त स्तोत्रसे प्रतिदिन देवीकी स्तुति करती थीं। समाप्तिके दिन व्रत पूर्ण करके गोपियोंको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने काण्व-शाखामें वर्णित उस स्तोत्रद्वारा परमेश्वरी पार्वतीका स्तवन किया, जिसके द्वारा स्तुति करके सत्यपरायणा सीताने शीघ्र ही कमल-नयन श्रीरामको प्रियतम पतिके रूपमें प्राप्त किया था। वह स्तोत्र यह है।

जानकी बोलीं—सबकी शक्तिस्वरूपे! शिवे! आप सम्पूर्ण जगत्की आधारभूता हैं। समस्त सद्गुणोंकी निधि हैं तथा सदा भगवान् शंकरके संयोग-सुखका अनुभव करनेवाली हैं; आपको नमस्कार है। आप मुझे सर्वश्रेष्ठ पति दीजिये। सृष्टि, पालन और संहार आपका रूप है। आप सृष्टि, पालन और संहाररूपिणी हैं। सृष्टि, पालन और संहारके जो बीज हैं, उनकी भी बीजरूपिणी हैं; आपको नमस्कार है। पतिके मर्मको जाननेवाली पतिव्रतपरायणे गौरि! पतिव्रते! पत्यनुरागिणि! मुझे पति दीजिये; आपको नमस्कार है। आप समस्त मङ्गलोंके लिये भी मङ्गलकारिणी हैं। सम्पूर्ण मङ्गलोंसे सम्पन्न हैं, सब प्रकारके मङ्गलोंकी बीजरूपा हैं; सर्वमङ्गले! आपको नमस्कार है। आप सबको प्रिय हैं, सबकी बीजरूपिणी हैं, समस्त अशुभोंका विनाश करनेवाली हैं, सबकी ईश्वरी तथा सर्वजननी हैं; शंकरप्रिये! आपको नमस्कार है। परमात्मस्वरूपे! नित्यरूपिणि! सनातनि! आप साकार और निराकार भी हैं; सर्वरूपे! आपको नमस्कार है। क्षुधा, तृष्णा, इच्छा, दया, श्रद्धा, निद्रा, तन्द्रा, स्मृति और क्षमा—ये सब आपकी कलाएँ हैं; नारायणि! आपको नमस्कार है। लज्जा, मेधा, तुष्टि, पुष्टि, शान्ति, सम्पत्ति और वृद्धि—ये सब भी आपकी ही कलाएँ हैं; सर्वरूपिणि! आपको नमस्कार है। दृष्ट और अदृष्ट दोनों आपके ही स्वरूप

हैं, आप उन्हें बीज और फल दोनों प्रदान करती हैं, कोई भी आपका निर्वचन (निरूपण) नहीं कर सकता है, महामाये! आपको नमस्कार है। शिवे! आप शंकरसम्बन्धी सौभाग्यसे सम्पन्न हैं तथा सबको सौभाग्य देनेवाली हैं। देवि! श्रीहरि ही मेरे प्राणवल्लभ और सौभाग्य हैं; उन्हें मुझे दीजिये। आपको नमस्कार है। जो स्त्रियाँ व्रतकी समाप्तिके दिन इस स्तोत्रसे शिवादेवीकी स्तुति करके बड़ी भक्तिसे उन्हें मस्तक झुकाती हैं; वे साक्षात् श्रीहरिको पतिरूपमें प्राप्त करती हैं। इस लोकमें परात्पर परमेश्वरको पतिरूपमें पाकर कान्त-सुखका उपभोग करके अन्तमें दिव्य विमानपर आरूढ़ हो भगवान् श्रीकृष्णके समीप चली जाती हैं*।

समाप्तिके दिन गोपियोंसहित श्रीराधाने देवीकी वन्दना और स्तुति करके गौरीव्रतको पूर्ण किया। एक ब्राह्मणको प्रसन्नतापूर्वक एक सहस्र गौएँ तथा सौ सुवर्णमुद्राएँ दक्षिणाके रूपमें देकर वे घर जानेको उद्यत हुईं। उन्होंने आदरपूर्वक एक हजार ब्राह्मणोंको भोजन कराया, बाजे बजवाये और भिखमंगोंको धन बाँटा। इसी समय दुर्गतिनाशिनी दुर्गा वहाँ आकाशसे प्रकट हुईं, जो ब्रह्मतेजसे प्रकाशित हो रही थीं। उनके प्रसन्न मुखपर मन्द हास्यकी प्रभा फैल रही थी। वे सौ योगिनियोंके साथ थीं। सिंहसे जुते हुए रथपर बैठी तथा रत्नमय अलंकारोंसे विभूषित थीं। उनके दस भुजाएँ थीं। उन्होंने रत्नसारमय उपकरणोंसे युक्त सुवर्णनिर्मित दिव्य रथसे उतरकर तुरंत ही श्रीराधाको हृदयसे लगा लिया। देवी दुर्गाको देखकर अन्य गोपकुमारियोंने भी प्रसन्नतापूर्वक प्रणाम किया। दुर्गाने उन्हें आशीर्वाद देते हुए कहा—'तुम सबका मनोरथ सिद्ध होगा।' इस प्रकार गोपिकाओंको वर दे उनसे सादर सम्भाषण कर देवीने मुस्कराते हुए

*जानक्युवाच—

शक्तिस्वरूपे सर्वेषां सर्वाधारे गुणाश्रये। सदा शंकरयुक्ते च पतिं देहि नमोऽस्तु ते॥
सृष्टिस्थित्यन्तरूपेण सृष्टिस्थित्यन्तरूपिणि। सृष्टिस्थित्यन्तबीजानां बीजरूपे नमोऽस्तु ते॥
हे गौरि पतिमर्मज्ञे पतिव्रतपरायणे। पतिव्रते पतिरते पतिं देहि नमोऽस्तु ते॥
सर्वमङ्गलमङ्गल्ये सर्वमङ्गलसंयुते। सर्वमङ्गलबीजे च नमस्ते सर्वमङ्गले॥
सर्वप्रिये सर्वबीजे सर्वाशुभविनाशिनि। सर्वेशे सर्वजनके नमस्ते शंकरप्रिये॥
परमात्मस्वरूपे च नित्यरूपे सनातनि। साकारे च निराकारे सर्वरूपे नमोऽस्तु ते॥
क्षुत्तृष्णेच्छा दया श्रद्धा निद्रा तन्द्रा स्मृतिः क्षमा। एतास्तव कलाः सर्वा नारायणि नमोऽस्तु ते॥
लज्जा मेधा तुष्टिपुष्टिशान्तिसम्पत्तिवृद्धयः। एतास्तव कलाः सर्वाः सर्वरूपे नमोऽस्तु ते॥
दृष्टादृष्टस्वरूपे च तयोर्बीजफलप्रदे। सर्वानिर्वचनीये च महामाये नमोऽस्तु ते॥
शिवे शंकरसौभाग्ययुक्ते सौभाग्यदायिनि। हरिं कान्तं च सौभाग्यं देहि देवि नमोऽस्तु ते॥
स्तोत्रेणानेन याः स्तुत्वा समाप्तिदिवसे शिवाम्। नमन्ति परया भक्त्या ता लभन्ति हरिं पतिम्॥
इह कान्तसुखं भुक्त्वा पतिं प्राप्य परात्परम्। दिव्यं स्यन्दनमारुह्य यान्त्यन्ते कृष्णसंनिधिम्॥
(२७। १७३—१८४)

मुखारविन्दसे राधिकाको सम्बोधित करके कहा।

पार्वती बोलीं—राधे! तुम सर्वेश्वर श्रीकृष्णको प्राणोंसे भी बढ़कर प्रिय हो। जगदम्बिके! तुम्हारा यह व्रत लोकशिक्षाके लिये है। तुम मायासे मानवरूपमें प्रकट हुई हो। सुन्दरि! क्या तुम गोलोकनाथ, गोलोक, श्रीशैल, विरजाके तटप्रान्त, श्रीरासमण्डल तथा दिव्य मनोहर वृन्दावनको कुछ याद करती हो? क्या तुम्हें प्रेमशास्त्रके विद्वान् तथा रतिचोर श्यामसुन्दरके उस चरित्रका किञ्चित् भी स्मरण होता है, जो नारियोंके चित्तको बरबस अपनी ओर खींच लेता है? तुम श्रीकृष्णके अर्धाङ्गसे प्रकट हुई हो; अतः उन्हींके समान तेजस्विनी हो। समस्त देवाङ्गनाएँ तुम्हारी अंशकलासे प्रकट हुई हैं; फिर तुम मानवी कैसे हो? तुम श्रीहरिके लिये प्राणस्वरूपा हो और स्वयं श्रीहरि तुम्हारे प्राण हैं। वेदमें तुम दोनोंका भेद नहीं बताया गया है; फिर तुम मानवी कैसे हो? पूर्वकालमें ब्रह्माजी साठ हजार वर्षोंतक तप करके भी तुम्हारे चरणकमलोंका दर्शन न पा सके; फिर तुम मानुषी कैसे हो? तुम तो साक्षात् देवी हो। श्रीकृष्णकी आज्ञासे गोपीका रूप धारण करके पृथ्वीपर पधारी हो; शान्ते! तुम मानवी स्त्री कैसे हो? मनुवंशमें उत्पन्न नृपश्रेष्ठ सुयज्ञ तुम्हारी ही कृपासे गोलोकमें गये थे; फिर तुम मानुषी कैसे हो? तुम्हारे मन्त्र और कवचके प्रभावसे ही भृगुवंशी परशुरामजीने इस पृथ्वीको इक्कीस बार क्षत्रिय-नरेशोंसे शून्य कर दिया था। ऐसी दशामें तुम्हें मानवी स्त्री कैसे कहा जा सकता है? परशुरामजीने भगवान् शंकरसे तुम्हारे मन्त्रको प्राप्त कर पुष्करतीर्थमें उसे सिद्ध किया और उसीके प्रभावसे वे कार्तवीर्य अर्जुनका संहार कर सके; फिर तुम मानुषी कैसे हो? उन्होंने अभिमानपूर्वक महात्मा गणेशका एक दाँत तोड़ दिया। वे केवल तुमसे ही भय मानते थे; फिर तुम मानवी स्त्री कैसे हो? जब मैं क्रोधसे उन्हें भस्म करनेको उद्यत हुई, तब हे ईश्वरि! मेरी प्रसन्नताके लिये तुमने स्वयं आकर उनकी रक्षा की; फिर तुम मानुषी कैसे हो? श्रीकृष्ण प्रत्येक कल्पमें तथा जन्म-जन्ममें तुम्हारे पति हैं। जगन्मातः! तुमने लोकहितके लिये ही यह व्रत किया है। अहो! श्रीदामके शापसे और भूमिका भार उतारनेके लिये पृथ्वीपर तुम्हारा निवास हुआ है; फिर तुम मानवी स्त्री कैसे हो? तुम जन्म, मृत्यु और जराका नाश करनेवाली देवी हो। कलावतीकी अयोनिजा पुत्री एवं पुण्यमयी हो; फिर तुम्हें साधारण मानुषी कैसे माना जा सकता है? तीन मास व्यतीत होनेपर जब मनोहर मधुमास (चैत्र) उपस्थित होगा, तब रात्रिके समय निर्जन, निर्मल एवं सुन्दर रासमण्डलमें वृन्दावनके भीतर श्रीहरिके साथ समस्त गोपिकाओंसहित तुम्हारी रासक्रीड़ा सानन्द सम्पन्न होगी। सती राधे! प्रत्येक कल्पमें भूतलपर श्रीहरिके साथ तुम्हारी रसमयी लीला होगी, यह विधाताने ही लिख दिया है। इसे कौन रोक सकता है? सुन्दरी! श्रीहरिप्रिये! जैसे मैं महादेवजीकी सौभाग्यवती पत्नी हूँ, उसी प्रकार तुम श्रीकृष्णकी सौभाग्यशालिनी वल्लभा हो। जैसे दूधमें धवलता, अग्निमें दाहिका शक्ति, भूमिमें गन्ध और जलमें शीतलता है; उसी प्रकार श्रीकृष्णमें तुम्हारी स्थिति है। देवाङ्गना, मानवकन्या, गन्धर्वजातिकी स्त्री तथा राक्षसी—इनमेंसे कोई भी तुमसे बढ़कर सौभाग्यशालिनी न तो हुई है और न होगी ही। मेरे वरसे ब्रह्मा आदिके भी वन्दनीय, परात्पर एवं गुणातीत भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं तुम्हारे अधीन होंगे। पतिव्रते! ब्रह्मा, शेषनाग तथा शिव भी जिनकी आराधना करते हैं, जो ध्यानसे भी वशमें होनेवाले नहीं हैं तथा जिन्हें आराधनाद्वारा रिझा लेना समस्त योगियोंके लिये भी अत्यन्त कठिन है; वे ही भगवान् तुम्हारे अधीन रहेंगे। राधे! स्त्रीजातिमें तुम विशेष सौभाग्यशालिनी हो। तुमसे बढ़कर दूसरी कोई

स्त्री नहीं है। तुम दीर्घकालतक यहाँ रहनेके पश्चात् श्रीकृष्णके साथ ही गोलोकमें चली जाओगी।

मुने! ऐसा कहकर पार्वतीदेवी तत्काल वहीं अन्तर्हित हो गयीं। फिर गोपकुमारियोंके साथ श्रीराधिका भी घर जानेको उद्यत हुईं। इतनेमें ही श्रीकृष्ण राधिकाके सामने उपस्थित हो गये। राधाने किशोर-अवस्थावाले श्यामसुन्दर श्रीकृष्णको देखा। उनके श्रीअङ्गोंपर पीताम्बर शोभा पा रहा था। वे नाना प्रकारके आभूषणोंसे विभूषित थे। घुटनोंतक लटकती हुई मालती-माला एवं वनमाला उनकी शोभा बढ़ा रही थी। उनका प्रसन्न मुख मन्द हास्यसे शोभायमान था। वे भक्तजनोंपर अनुग्रह करनेके लिये कातर जान पड़ते थे। उनके सम्पूर्ण अङ्ग चन्दनसे चर्चित थे। नेत्र शरद् ऋतुके प्रफुल्ल कमलोंको लज्जित कर रहे थे। मुख शरद् ऋतुकी पूर्णिमाके चन्द्रमाकी भाँति मनोहर था, मस्तकपर श्रेष्ठ रत्नमय मुकुट अपनी उज्ज्वल आभा बिखेर रहा था। दाँत पके हुए अनारके दाने-जैसे स्वच्छ दिखायी देते थे। आकृति बड़ी मनोहर थी। उन्होंने विनोदके लिये एक हाथमें मुरली और दूसरे हाथमें लीलाकमल ले रखा था। वे करोड़ों कन्दर्पोंकी लावण्य-लीलाके मनोहर धाम थे। उन गुणातीत परमेश्वरकी ब्रह्मा, शेषनाग और शिव आदि निरन्तर स्तुति करते हैं। वे ब्रह्मस्वरूप तथा ब्राह्मणहितैषी हैं। श्रुतियोंने उनके ब्रह्मरूपका निरूपण किया है। वे अव्यक्त और व्यक्त हैं। अविनाशी एवं सनातन ज्योतिः-स्वरूप हैं। मङ्गलकारी, मङ्गलके आधार, मङ्गलमय तथा मङ्गलदाता हैं।

श्यामसुन्दरके उस अद्भुत रूपको देखकर राधाने वेगपूर्वक आगे बढ़कर उन्हें प्रणाम किया। उन्हें अच्छी तरह देखकर प्रेमके वशीभूत हो वे सुध-बुध खो बैठीं। प्रियतमके मुखारविन्दकी बाँकी चितवनसे देखते-देखते उनके अधरोंपर मुस्कराहट दौड़ गयी और उन्होंने लज्जावश अञ्चलसे अपना मुख ढँक लिया। उनकी बारंबार ऐसी अवस्था हुई। श्रीराधाको देखकर श्यामसुन्दरके मुख और नेत्र प्रसन्नतासे खिल उठे। समस्त गोपिकाओंके सामने खड़े हुए वे भगवान् श्रीराधासे बोले।

श्रीकृष्णने कहा—प्राणाधिके राधिके! तुम मनोवाञ्छित वर माँगो। हे गोपकिशोरियो! तुम सब लोग भी अपनी इच्छाके अनुसार वर माँगो।

श्रीकृष्णकी यह बात सुनकर श्रीराधिका तथा अन्य सब गोपकन्याओंने बड़े हर्षके साथ उन भक्तवाञ्छाकल्पतरु प्रभुसे वर माँगा।

राधिका बोलीं—प्रभो! मेरा चित्तरूपी चञ्चरीक आपके चरणकमलोंमें सदा रमता रहे। जैसे मधुप कमलमें स्थित हो उसके मकरन्दका पान करता है; उसी प्रकार मेरा मनरूपी भ्रमर भी आपके चरणारविन्दोंमें स्थित हो भक्तिरसका निरन्तर आस्वादन करता रहे। आप जन्म-जन्ममें मेरे प्राणनाथ हों और अपने चरणकमलोंकी परम दुर्लभ भक्ति मुझे दें। मेरा चित्त सोते-जागते, दिन-रात आपके स्वरूप तथा गुणोंके चिन्तनमें सतत निमग्न रहे। यही मेरी मनोवाञ्छा है।

गोपियाँ बोलीं—प्राणबन्धो! आप जन्म-जन्ममें हमारे प्राणनाथ हों और श्रीराधाकी ही भाँति हम सबको भी सदा अपने साथ रखें।

गोपियोंका यह वचन सुनकर प्रसन्नमुखवाले श्रीमान् यशोदानन्दनने कहा—'तथास्तु' (ऐसा ही हो)। तत्पश्चात् उन जगदीश्वरने श्रीराधिकाको प्रेमपूर्वक सहस्रदलोंसे युक्त क्रीडाकमल तथा मालतीकी मनोहर माला दी। साथ ही अन्य गोपियोंको भी उन गोपीवल्लभने हँसकर प्रसादस्वरूप पुष्प तथा मालाएँ भेंट कीं। तदनन्तर वे बड़े प्रेमसे बोले।

श्रीकृष्णने कहा—व्रजदेवियो! तीन मास व्यतीत होनेपर वृन्दावनके सुरम्य रासमण्डलमें तुम सब लोग मेरे साथ रासक्रीड़ा करोगी। जैसा

मैं हूँ, वैसी ही तुम हो। हममें तुममें भेद नहीं है। मैं तुम्हारे प्राण हूँ और तुम भी मेरे लिये प्राणस्वरूपा हो। प्यारी गोपियो! तुमलोगोंका यह व्रत लोकरक्षाके लिये है, स्वार्थसिद्धिके लिये नहीं; क्योंकि तुमलोग गोलोकसे मेरे साथ आयी हो और फिर मेरे साथ ही तुम्हें वहाँ चलना है। (तुम मेरी नित्यसिद्धा प्रेयसी हो। तुमने साधन करके मुझे पाया है, ऐसी बात नहीं है।) अब शीघ्र अपने घर जाओ। मैं जन्म-जन्ममें तुम्हारा ही हूँ। तुम मेरे लिये प्राणोंसे भी बढ़कर हो; इसमें संशय नहीं है।

ऐसा कहकर श्रीहरि वहीं यमुनाजीके किनारे बैठ गये। फिर सारी गोपियाँ भी बारंबार उन्हें निहारती हुई बैठ गयीं। उन सबके मुखपर प्रसन्नता छा रही थी; मन्द मुस्कानकी प्रभा फैल रही थी। वे प्रेमपूर्वक बाँकी चितवनसे देखती हुई अपने नेत्र-चकोरोंद्वारा श्रीहरिके मुखचन्द्रकी सुधाका पान कर रही थीं। तत्पश्चात् वे बारंबार जय बोलकर शीघ्र ही अपने-अपने घर गयीं और श्रीकृष्ण भी ग्वाल-बालोंके साथ प्रसन्नतापूर्वक अपने घरको लौटे। इस प्रकार मैंने श्रीहरिका यह सारा मङ्गलमय चरित्र कह सुनाया, गोपीचीर-हरणकी यह लीला सब लोगोंके लिये सुखदायिनी है। (अध्याय २७)

श्रीकृष्णके रास-विलासका वर्णन

नारदजीने पूछा—भगवन्! तीन मास व्यतीत होनेपर उन गोपाङ्गनाओंका श्रीहरिके साथ किस प्रकार मिलन हुआ? वृन्दावन कैसा है? रासमण्डलका क्या स्वरूप है? श्रीकृष्ण तो एक थे और गोपियाँ बहुत। ऐसी दशामें किस तरह वह क्रीड़ा सम्भव हुई? मेरे मनमें इस नयी-नयी लीलाको सुननेके लिये बड़ी उत्सुकता हो रही है। महाभाग! आपके नाम और यशका श्रवण एवं कीर्तन बड़ा पवित्र है। कृपया आप उस रासक्रीड़ाका वर्णन कीजिये। अहो! श्रीहरिकी रासयात्रा, पुराणोंके सारकी भी सारभूता कथा है। इस भूतलपर उनके द्वारा की गयी सारी लीलाएँ ही सुननेमें अत्यन्त मनोहर जान पड़ती हैं।

सूतजी कहते हैं—शौनक! नारदजीकी यह बात सुनकर साक्षात् नारायण ऋषि हँसे और प्रसन्न मुखसे उन्होंने कथा सुनाना आरम्भ किया।

श्रीनारायण बोले—मुने! एक दिन श्रीकृष्ण चैत्रमासके शुक्लपक्षकी त्रयोदशी तिथिको चन्द्रोदय होनेके पश्चात् वृन्दावनमें गये। उस समय जूही, मालती, कुन्द और माधवीके पुष्पोंका स्पर्श करके बहनेवाली शीतल, मन्द एवं सुगन्धित मलयवायुसे सारा वनप्रान्त सुवासित हो रहा था। भ्रमरोंके मधुर गुञ्जारवसे उसकी मनोहरता बढ़ गयी थी। वृक्षोंमें नये-नये पल्लव निकल आये थे और कोकिलकी कुहू-कुहू-ध्वनिसे वह वन मुखरित हो रहा था। नौ लाख रासगृहोंसे संयुक्त वह वृन्दावन बड़ा ही मनोहर जान पड़ता था। चन्दन, अगुरु, कस्तूरी और कुंकुमकी सुगन्ध सब ओर फैल रही थी। कर्पूरयुक्त ताम्बूल तथा भोग-द्रव्य सजाकर रखे गये थे। कस्तूरी और चन्दनयुक्त चम्पाके फूलोंसे रचित नाना प्रकारकी शय्याएँ उस स्थानकी शोभा बढ़ा रही थीं। रत्नमय प्रदीपोंका प्रकाश सब ओर फैला था। धूपकी सुगन्धसे वह वनप्रान्त महमह महक रहा था। वहीं सब ओरसे गोलाकार रासमण्डल बनाया गया था, जो नाना प्रकारके फूलों और मालाओंसे सुसज्जित था। चन्दन, अगुरु, कस्तूरी और केसरसे वहाँकी भूमिका संस्कार किया गया था। रासमण्डलके चारों ओर फूलोंसे भरे उद्यान तथा क्रीड़ासरोवर थे। उन सरोवरोंमें हंस, कारण्डव तथा जलकुक्कुट

आदि पक्षी कलरव कर रहे थे। वे जलक्रीड़ाके योग्य सुन्दर तथा सुरत-श्रमका निवारण करनेवाले थे। उनमें शुद्ध स्फटिकमणिके समान स्वच्छ तथा निर्मल जल भरा था। उस रासमण्डलमें दही, अक्षत और जल छिड़के गये थे। केलेके सुन्दर खम्भोंद्वारा वह चारों ओरसे सुशोभित था। सूतमें बँधे हुए आमके पल्लवोंके मनोहर बन्दनवारों तथा सिन्दूर, चन्दनयुक्त मङ्गल-कलशोंसे उसको सजाया गया था। मङ्गलकलशोंके साथ मालतीकी मालाएँ और नारियलके फल भी थे। उस शोभासम्पन्न रासमण्डलको देखकर मधुसूदन हँसे। उन्होंने कौतूहलवश वहाँ विनोदकी साधनभूता मुरलीको

बजाया। वह वंशीकी ध्वनि उनकी प्रेयसी गोपाङ्गनाओंके प्रेमको बढ़ानेवाली थी।

राधिकाने जब वंशीकी मधुर ध्वनि सुनी तो तत्काल ही वे प्रेमाकुल हो अपनी सुध-बुध खो बैठीं। उनका शरीर ठूँठे काठकी तरह स्थिर और चित्त ध्यानमें एकतान हो गया। क्षणभरमें चेत होनेपर पुनः मुरलीकी ध्वनि उनके कानोंमें पड़ी। वे बैठी थीं, फिर उठकर खड़ी हो गयीं। अब उन्हें बार-बार उद्वेग होने लगा, वे आवश्यक कर्म छोड़कर घरसे निकल पड़ीं। यह एक अद्भुत बात थी। चारों ओर देखकर वंशीध्वनिका अनुसरण करती हुई आगे बढ़ीं। मन-ही-मन महात्मा श्रीकृष्णके चरणारविन्दोंका चिन्तन करती जाती थीं। वे अपने सहज तेज तथा श्रेष्ठ रत्नसारमय भूषणोंकी कान्तिसे वनप्रान्तको प्रकाशित कर रही थीं। राधिकाकी सुशीला आदि जो अत्यन्त प्यारी तैंतीस सखियाँ थीं और समस्त गोपियोंमें श्रेष्ठ समझी जाती थीं; वे भी श्रीकृष्णके दिये हुए वरसे आकृष्ट-चित्त हो डरी हुई-सी घरसे बाहर निकलीं। कुलधर्मका त्याग करके निःशङ्क हो वनकी ओर चलीं। वे सब-की-सब प्रेमातिरेकसे मोहित थीं। फिर उन प्रधान गोपियोंके पीछे-पीछे दूसरी गोपियाँ भी जो जैसे थीं, वैसे ही—लाखोंकी संख्यामें निकल पड़ीं। वे सब वनमें एक स्थानपर इकट्ठी हुईं और कुछ देरतक प्रसन्नतापूर्वक वहीं खड़ी रहीं। वहाँ कुछ गोपियाँ अपने हाथोंमें माला लिये आयी थीं। कुछ गोपाङ्गनाएँ व्रजसे मनोहर चन्दन हाथमें लेकर वहाँ पहुँची थीं। कई गोपियोंके हाथोंमें श्वेत चँवर शोभा पा रहे थे। वे सब बड़े हर्षके

साथ वहाँ आयी थीं। कुछ गोपकन्याएँ कुंकुम, ताम्बूल-पात्र तथा काञ्चन, वस्त्र लिये आयी थीं।

कुछ शीघ्रतापूर्वक उस स्थानपर आयीं, जहाँ चन्द्रावली (राधा) सानन्द खड़ी थीं। वे सब एकत्र हो प्रसन्नतापूर्वक मुस्कराती हुई वहाँ राधिकाकी वेशभूषा सँवारकर बड़े हर्षके साथ आगे बढ़ीं। मार्गमें बारंबार वे हरि-नामका जप करती थीं। वृन्दावनमें पहुँचकर उन्होंने रमणीय रासमण्डल देखा, जहाँका दृश्य स्वर्गसे भी अधिक सुन्दर था। चन्द्रमाकी किरणें उस वनप्रान्तको अनुरञ्जित कर रही थीं। अत्यन्त निर्जन, विकसित कुसुमोंसे अलंकृत तथा फूलोंको छूकर प्रवाहित होनेवाली मलयवायुसे सुवासित वह रम्य रासमण्डल नारियोंके प्रेमभावको जगानेवाला और मुनियोंके भी मनको मोह लेनेवाला था। उन सबको वहाँ कोकिलोंकी मधुर काकली सुनायी दी। भ्रमरोंका अत्यन्त सूक्ष्म मधुर गुञ्जारव भी बड़ा मनोहर जान पड़ता था। वे भ्रमर भ्रमरियोंके साथ रह फूलोंका मकरन्द पान करके मतवाले हो गये थे।

तदनन्तर शुभ वेलामें सम्पूर्ण सखियोंके साथ श्रीकृष्णके चरणकमलोंका चिन्तन करके श्रीराधिकाने रासमण्डलमें प्रवेश किया। राधाको अपने समीप देखकर श्रीकृष्ण वहाँ बड़े प्रसन्न हुए। वे बड़े प्रेमसे मुस्कराते हुए उनके निकट गये। उस समय प्रेमसे आकुल हो रहे थे। राधा अपनी सखियोंके बीचमें रत्नमय अलंकारोंसे विभूषित होकर खड़ी थीं। उनके श्रीअङ्गोंपर दिव्य वस्त्रोंके परिधान शोभा पा रहे थे। वे मुस्कराती हुई बाँकी चितवनसे श्यामसुन्दरकी ओर देखती हुई गजराजकी भाँति मन्द गतिसे चल रही थीं। रमणीय राधा नवीन वेशभूषा, नयी अवस्था तथा रूपसे अत्यन्त मनोहर जान पड़ती थीं। वे मुनियोंके मनको भी मोह लेनेमें समर्थ थीं। उनकी अङ्गकान्ति सुन्दर चम्पाके समान गौर थी। मुख शरत्पूर्णिमाके चन्द्रमाको लज्जित कर रहा था। वे सिरपर मालतीकी मालासे युक्त वेणीका भार वहन करती थीं।

श्रीराधाने भी किशोर अवस्थासे युक्त श्यामसुन्दरकी ओर दृष्टिपात किया। वे नूतन यौवनसे सम्पन्न तथा रत्नमय आभरणोंसे विभूषित थे। करोड़ों कामदेवोंकी लावण्यलीलाके मनोहर धाम प्रतीत होते थे और बाँके नयनोंसे उनकी ओर निहारती हुई उन प्राणाधिका राधिकाको देख रहे थे। उनके परम अद्भुत रूपकी कहीं उपमा नहीं थी। वे विचित्र वेशभूषा तथा मुकुट धारण किये सानन्द मुस्करा रहे थे। बाँके नेत्रोंके कोणसे बार-बार प्रीतमकी ओर देख-देखकर सती राधाने लज्जावश मुखको आँचलसे ढक लिया और वे मुस्कराती हुई अपनी सुध-बुध खो बैठीं। प्रेमभावका उद्दीपन होनेसे उनके सारे अङ्ग पुलकित हो उठे। तदनन्तर श्रीकृष्ण एवं राधिकाका परस्पर प्रेम-शृङ्गार हुआ।

मुने! नौ लाख गोपियाँ और उतने ही गोप-विग्रहधारी श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण—ये अठारह लाख गोपी-कृष्ण रासमण्डलमें परस्पर मिले। नारद! वहाँ कङ्कणों, किङ्किणियों, वलयों और श्रेष्ठ रत्न-निर्मित नूपुरोंकी सम्मिलित झनकार कुछ कालतक निरन्तर होती रही। इस प्रकार स्थलमें रासक्रीड़ा करके वे सब प्रसन्नतापूर्वक जलमें उतरे और वहाँ जल-क्रीड़ा करते-करते थक गये। फिर वहाँसे निकलकर नवीन वस्त्र धारण करके कौतूहलपूर्वक कर्पूरयुक्त ताम्बूल ग्रहण करके सबने रत्नमय दर्पणमें अपना-अपना मुँह देखा। तदनन्तर श्रीकृष्ण राधिका तथा गोपियोंके साथ नाना प्रकारकी मधुर-मनोहर क्रीड़ाएँ करने लगे।

फिर पवित्र उद्यानके निर्जन प्रदेशमें सरोवरके रमणीय तटपर जहाँ बाहर चन्द्रमाका प्रकाश फैल रहा था, जहाँकी भूमि पुष्प और चन्दनसे चर्चित थी, जहाँ सब ओर अगुरु तथा चन्दनसे सम्पृक्त मलय-समीरद्वारा सुगन्ध फैलायी जा रही थी और भ्रमरोंके गुञ्जारवके साथ नर-कोकिलोंकी मधुर काकली कानोंमें पड़ रही थी; योगियोंके परम गुरु

श्यामसुन्दर श्रीकृष्णने अनेक रूप धारण करके स्थल-प्रदेशमें मधुर लीला-विलास किये। इसके बाद राधाके साथ सनातन पूर्णब्रह्मस्वरूप श्रीकृष्णने यमुनाजीके जलमें प्रवेश किया। श्रीकृष्णके जो अन्य मायामय स्वरूप थे, वे भी गोपियोंके साथ जलमें उतरे। यमुनाजीमें परम रसमयी क्रीड़ा करनेके पश्चात् सबने बाहर निकलकर सूखे वस्त्र पहने और माला आदि धारण कीं।

तदनन्तर सब गोप-किशोरियाँ पुनः रासमण्डलमें गयीं। वहाँके उद्यानमें सब ओर तरह-तरहके फूल खिले हुए थे। उन्हें देखकर परमेश्वरी राधाने कौतुकपूर्वक गोपियोंको पुष्पचयनके लिये आज्ञा दी। कुछ गोपियोंको उन्होंने माला गूँथनेके काममें लगाया। किन्हींको पानके बीड़े सुसज्जित करनेमें तथा किन्हींको चन्दन घिसनेमें लगा दिया। गोपियोंके दिये हुए पुष्पहार, चन्दन तथा पानको लेकर बाँके नेत्रोंसे देखती हुई सुन्दरी राधाने मन्द हास्यके साथ श्यामसुन्दरको प्रेमपूर्वक वे सब वस्तुएँ अर्पित कीं। फिर कुछ गोपियोंको श्रीकृष्णकी लीलाओंके गानमें और कुछको मृदङ्ग, मुरज आदि बाजे बजानेमें उन्होंने लगाया। इस प्रकार रासमें लीला-विलास करके राधा निर्जन वनमें श्रीहरिके साथ सर्वत्र मनोहर विहार करने लगीं। रमणीय पुष्पोद्यान, सरोवरोंके तट, सुरम्य गुफा, नदों और नदियोंके समीप, अत्यन्त निर्जन प्रदेश, पर्वतीय कन्दरा, नारियोंके मनोवाञ्छित स्थान, तैंतीस वन—वन, रमणीय श्रीवन, कदम्बवन, तुलसीवन, कुन्दवन, चम्पकवन, निम्बवन, मधुवन, जम्बीरवन, नारिकेलवन, पूगवन, कदलीवन, बदरीवन, बिल्ववन, नारंगवन, अश्वत्थवन, वंशवन, दाडिमवन, मन्दारवन, तालवन, आम्रवन, केतकीवन, अशोकवन, खर्जूरवन, आम्रातकवन, जम्बूवन, शालवन, कटकीवन, पद्मवन, जातिवन, न्यग्रोधवन, श्रीखण्डवन और विलक्षण केसरवन—इन सभी स्थानोंमें तीस दिन-राततक कौतूहलपूर्वक शृङ्गार किया, तथापि उनका मन तनिक भी तृप्त नहीं हुआ। अधिकाधिक इच्छा बढ़ती गयी, ठीक उसी तरह, जैसे घीकी धारा पड़नेसे अग्नि प्रज्वलित होती है। देवता, देवियाँ और मुनि, जो रास-दर्शनके लिये पधारे थे, अपने-अपने घरको लौट गये। उन सबने रास-रसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की और आश्चर्यचकित हो हर्षका अनुभव करते हुए वे वहाँसे विदा हुए। बहुत-सी देवाङ्गनाओंने श्रीहरिके साथ प्रेम-मिलनकी लालसा लेकर भारतवर्षके श्रेष्ठ नरेशोंके घर-घरमें जन्म लिया। (अध्याय २८)

श्रीराधाके साथ श्रीकृष्णका वन-विहार, वहाँ अष्टावक्र मुनिके द्वारा उनकी स्तुति तथा मुनिका शरीर त्यागकर भगवच्चरणोंमें लीन होना

भगवान् नारायण कहते हैं—नारद! तदनन्तर प्रेम-विह्वला गोपियोंके साथ भगवान् श्रीकृष्णने विविध भाँतिसे रास-क्रीड़ा की। गोपियाँ उन्मत्ता-सी हो गयीं। तब श्रीकृष्ण राधिकाको लेकर वहाँसे अन्तर्धान हो गये तथा अनेक सुरम्य वनों, पर्वतों, सरोवरों एवं नदी-तटोंपर ले जाकर राधिकाको आनन्द प्रदान करते रहे। श्रीराधाके साथ भ्रमण करते हुए श्यामसुन्दरने अपने सामने एक वट-वृक्ष देखा, जिसकी शाखाओंका अग्रभाग बहुत ही ऊँचा था। उस वृक्षका विस्तार भी बहुत अधिक था। उसके नीचे एक योजनतकका भूभाग छायासे घिरा हुआ था। केतकीवन भी वहाँसे निकट ही था। श्रीकृष्ण राधाके साथ वहीं बैठे थे। शीतल-मन्द-सुगन्ध वायु उस स्थानको सुवासित कर रही थी। हर्षसे भरे हुए श्रीकृष्णने वहाँ राधासे चिरकालतक पुरातन एवं विचित्र रहस्यको

बतानेवाली कथाएँ कहीं। इसी समय उन्होंने वहाँ आते हुए एक श्रेष्ठ मुनिको देखा, जिनके मुख और नेत्र प्रसन्नतासे खिले हुए थे। परमात्मा श्रीहरिके जिस रूपका वे ध्यान करते थे, उसे हृदयमें न देखकर उनका ध्यान टूट गया था। अब वे अपने सामने बाहर ही उस रूपका प्रत्यक्ष दर्शन करने लगे थे। उनका शरीर काला था। सारे अवयव टेढ़े-मेढ़े थे और वे नाटे तथा दिगम्बर थे। उनका नाम था—अष्टावक्र। वे ब्रह्मतेजसे प्रकाशित हो रहे थे। उनका मस्तक जटाओंसे भरा था और वे अपने मुँहसे आग उगल रहे थे, मानो मुखद्वारसे उनकी तपस्याजनित तेजोराशि ही प्रकट हो रही हो। अथवा वे ऐसे लगते थे, मानो उनके रूपमें स्वयं ब्रह्मतेज ही मूर्तिमान्-सा हो गया हो। उनके नख और मूँछ-दाढ़ीके बाल बढ़े हुए थे। वे तेजस्वी और परम शान्त थे तथा भयभीत हो भक्तिभावसे दोनों हाथ जोड़ मस्तक झुकाये हुए थे। उन्हें देख राधा हँसने लगीं; परंतु माधवने उन्हें ऐसा करनेसे रोका और उन महात्मा मुनीन्द्रके प्रभावका वर्णन किया। मुनिवर अष्टावक्रने गोविन्दको प्रणाम करके उनकी स्तुति की। पूर्वकालमें महात्मा भगवान् शंकरने उन्हें जिस

स्तोत्रका उपदेश दिया था, उसीको उन्होंने सुनाया।

अष्टावक्र बोले—प्रभो! आप तीनों गुणोंसे परे होकर भी समस्त गुणोंके आधार हैं। गुणोंके कारण और गुणस्वरूप हैं। गुणियोंके स्वामी तथा उनके आदिकारण हैं। गुणनिधे! आपको नमस्कार है। आप सिद्धिस्वरूप हैं। समस्त सिद्धियाँ आपकी अंशस्वरूपा हैं। आप सिद्धिके बीज और परात्पर हैं। सिद्धि और सिद्धगणोंके अधीश्वर हैं तथा समस्त सिद्धोंके गुरु हैं; आपको नमस्कार है। वेदोंके बीजस्वरूप परमात्मन्! आप वेदोंके ज्ञाता, वेदवान् और वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ हैं। वेद भी आपको पूर्णतः नहीं जान सके हैं। रूपेश्वर! आप वेदज्ञोंके भी स्वामी हैं; आपको नमस्कार है। आप ब्रह्मा, अनन्त, शिव, शेष, इन्द्र और धर्म आदिके अधिपति हैं। सर्वस्वरूप सर्वेश्वर! आप शर्व (महादेवजी)-के भी स्वामी हैं; सबके बीजरूप गोविन्द! आपको नमस्कार है। आप ही प्रकृति और प्राकृत पदार्थ हैं। प्राज्ञ, प्रकृतिके स्वामी तथा परात्पर हैं। संसार-वृक्ष तथा उसके बीज और फलरूप हैं। आपको नमस्कार है। सृष्टि, पालन और संहारके बीजस्वरूप ब्रह्मा आदिके भी ईश्वर! आप ही सृष्टि, पालन और संहारके कारण हैं। महाविराट् (नारायण)-रूपी वृक्षके बीज राधावल्लभ! आपको नमस्कार है। अहो! आप जिसके बीज हैं, उस महाविराट्रूपी वृक्षके तीन स्कन्ध (तने) हैं—ब्रह्मा, विष्णु और शिव। वेदादि शास्त्र उसकी शाखा-प्रशाखाएँ हैं और तपस्या पुष्प हैं। जिसका फल संसार है, वह वृक्ष प्रकृतिका कार्य है। आप ही उसके भी आधार हैं, पर आपका आधार कोई नहीं है। सर्वाधार! आपको नमस्कार है। तेजःस्वरूप! निराकार! आपतक प्रत्यक्ष प्रमाणकी पहुँच नहीं है। सर्वरूप! प्रत्यक्षके अविषय! स्वेच्छामय परमेश्वर! आपको नमस्कार है।

यों कहकर मुनिश्रेष्ठ अष्टावक्र श्रीकृष्णके

चरणकमलोंमें पड़ गये और श्रीराधा तथा गोविन्द दोनोंके सामने ही उन्होंने अपने प्राण त्याग दिये। उनका शरीर भगवान्‌के पाद-पद्मोंके समीप गिर पड़ा और उससे प्रज्वलित अग्नि-शिखाके समान उनका तेज ऊपरको उठा। वह सात ताड़के बराबर ऊँचा उठकर भगवान्‌के चारों तरफ घूमकर पुनः उनके चरणोंमें गिरा और वहीं विलीन हो गया।

जो प्रातःकाल उठकर अष्टावक्रद्वारा किये गये स्तोत्रका पाठ करता है, वह परम निर्वाणरूप मोक्षको प्राप्त कर लेता है; इसमें संशय नहीं है। नारद! यह स्तोत्रराज मुमुक्षुजनोंके लिये प्राणोंसे भी बढ़कर है। श्रीहरिने पहले इसे वैकुण्ठधाममें भगवान् शंकरको दिया था। (अध्याय २९)

भगवान् श्रीकृष्णद्वारा अष्टावक्र (देवल)- के शवका संस्कार तथा उनके गूढ़ चरित्रका परिचय

नारदजीने पूछा—ब्रह्मन्! (नारायणदेव!) उन महामुनिका कौन-सा अद्भुत रहस्य सुना गया? मुनि अष्टावक्रके देह-त्यागके पश्चात् भक्तवत्सल भगवान् श्रीकृष्णने क्या किया?

भगवान् श्रीनारायण बोले—मुनिको मरा देख भगवान् श्रीकृष्ण उनके शरीरका दाह-संस्कार करनेको उद्यत हुए। महात्मा अष्टावक्रका वह रक्त, मांस एवं हड्डियोंसे हीन शरीर साठ हजार वर्षोंतक निराहार रहा; अतः प्रज्वलित हुई जठराग्निने उस शरीरके रक्त, मांस तथा हड्डियोंको दग्ध कर दिया था। मुनिका चित्त श्रीहरिके चरणारविन्दोंके चिन्तनमें ही लगा था; अतः उन्हें बाह्य ज्ञान बिलकुल नहीं रह गया था। मधुसूदन श्रीकृष्णने चन्दन-काष्ठकी चिता बनाकर उसमें अग्निसम्बन्धी कार्य (संस्कार) किया और फिर शोक-लीला करते हुए अश्रुपूर्ण नेत्रोंसे मुनिके शवको उस चितापर स्थापित कर दिया। तदनन्तर शवके ऊपर भी काठ रखकर चितामें आग लगा दी। मुनिका शरीर जलकर भस्म हो गया। आकाशमें देवता दुन्दुभियाँ बजाने लगे और तत्काल ही वहाँसे फूलोंकी वर्षा होने लगी। इसी बीच वहाँ रत्नोंके सारतत्त्वसे निर्मित, मनके समान तीव्र गतिसे चलनेवाला तथा वस्त्रों और पुष्पहारोंसे अलंकृत एक सुन्दर विमान गोलोकसे उतरा और श्रीहरिके सामने प्रकट हो गया। उसमें श्रीकृष्णके समान ही रूप और वेशभूषावाले श्रेष्ठ पार्षद विराजमान थे। वे उत्तम पार्षद तत्काल ही विमानसे उतर गये। उन सबके आकार श्रीकृष्णसे मिलते-जुलते थे। उन्होंने राधिका और श्यामसुन्दरको प्रणाम करके सूक्ष्म-देहधारी मुनीश्वर अष्टावक्रको भी मस्तक झुकाया और उन्हें उस विमानपर बिठाकर वे उत्तम गोलोकधामको चले गये। मुनीन्द्र अष्टावक्रके गोलोकधामको चले जानेपर वृन्दावनविनोदिनी साध्वी राधाने चकित हो जगदीश्वर श्रीकृष्णसे पूछा।

श्रीराधिका बोलीं—नाथ! ये मुनिश्रेष्ठ कौन थे, जिनके समस्त अङ्ग ही टेढ़े-मेढ़े थे? ये बहुत ही नाटे थे। इनके शरीरका रंग काला था और ये देखनेमें अत्यन्त कुत्सित होनेपर भी बड़े तेजस्वी जान पड़ते थे। उनका जो प्रज्वलित अग्निके समान तेज था, वह साक्षात् आपके चरणारविन्दमें विलीन हो गया। वे कितने पुण्यात्मा थे कि तत्काल विमानमें बैठकर गोलोकधामको चले गये और उन स्वात्माराम मुनिके लिये आपको भी रोना आ गया। प्रभो! आपने अश्रुपूर्ण नेत्रोंसे इनका सत्कार किया है; अतः मैंने जो कुछ पूछा है, वह सारा विवरण शीघ्र ही विस्तारपूर्वक बताइये।

राधिकाका यह वचन सुन भगवान् मधुसूदनने हँसकर युगान्तरकी कथाको कहना आरम्भ किया।

श्रीकृष्ण बोले—प्रिये! सुनो। मैं इस विषयमें एक प्राचीन इतिहास बता रहा हूँ, जिसके सुनने और कहनेसे समस्त पापोंका नाश हो जाता है। प्रलयकालमें जब तीनों लोक एकार्णवके जलमें मग्न थे, तब मेरे ही अंशभूत महाविष्णुके नाभिकमलसे मेरी ही कलाद्वारा जगत्-विधाता ब्रह्माका प्रादुर्भाव हुआ। ब्रह्माजीके हृदयसे पहले चार पुत्र उत्पन्न हुए, जो सब-के-सब नारायणपरायण तथा ब्रह्मतेजसे प्रकाशमान थे। वे ज्ञानहीन बालकोंकी भाँति सदा नग्न रहते हैं और पाँच वर्षकी ही अवस्थासे युक्त दिखायी देते हैं। उन्हें बाह्यज्ञान नहीं होता; परंतु ब्रह्मतत्त्वकी व्याख्यामें वे बड़े निपुण हैं। सनक, सनन्दन, सनातन और भगवान् सनत्कुमार—ये ही क्रमशः उन चारोंके नाम हैं। एक दिन ब्रह्माजीने उनसे कहा—'पुत्रो! तुम जगत्की सृष्टि करो।' परंतु उन्होंने पिताकी बात नहीं मानी और मेरी प्रसन्नताके लिये वे तपस्या करनेको वनमें चले गये। उन पुत्रोंके चले जानेपर विधाताका मन उदास हो गया। यदि पुत्र आज्ञाका पालन न करे तो पिताको बड़ा दुःख होता है। उन्होंने ज्ञानद्वारा अपने विभिन्न अङ्गोंसे कई पुत्र उत्पन्न किये, जो तपस्याके धनी, वेद-वेदाङ्गोंके विद्वान् तथा ब्रह्मतेजसे जाज्वल्यमान थे। उनके नाम इस प्रकार हैं—अत्रि, पुलस्त्य, पुलह, मरीचि, भृगु, अङ्गिरा, क्रतु, वसिष्ठ, बोढु, कपिल[1], आसुरि, कवि[2], शंकु, शङ्खु, पञ्चशिख और प्रचेता। उन तपोधनोंने ब्रह्माजीकी आज्ञासे दीर्घकालतक तप करके सृष्टिका कार्य सम्पन्न किया। वे सभी सपत्नीक थे और संसारकी सृष्टि करनेके लिये उन्मुख रहते थे। उन सभी तपोधनोंके बहुत-से पुत्र और पौत्र हुए। मुनिवंशकी परम्पराका कीर्तन करनेवाली वह मनोहर एवं पुण्यस्वरूपा कथा बहुत बड़ी है; अतः उसे यहीं समाप्त किया जाता है। सुन्दरि राधिके! अब तुम वह कथा सुनो, जो प्रकृत प्रसङ्गके अनुकूल है। प्रचेता मुनिके पुत्र श्रीमान् मुनिवर असित हुए। असितने पुत्रकी कामनासे पत्नीसहित दीर्घकालतक तप किया; परंतु तब भी जब पुत्र नहीं हुआ तो वे अत्यन्त विषादग्रस्त हो गये। उस समय आकाशवाणी हुई—'मुने! तुम भगवान् शंकरके पास जाओ और उनके मुखसे मन्त्रका उपदेश ग्रहण करके उसे सिद्ध करो। उस मन्त्रकी जो अधिष्ठात्री देवी हैं वे शीघ्र ही तुम्हें साक्षात् दर्शन देंगी। उन अभीष्ट देवीके वरसे निश्चय ही तुम्हें पुत्रकी प्राप्ति होगी।' यह बात सुनकर वे ब्राह्मणदेवता शंकरजीके समीप गये। जो योगियोंके लिये भी अगम्य है, उस निरामय शिवलोकमें पहुँचकर पत्नीसहित असित दोनों हाथ जोड़ भक्तिभावसे मस्तक झुकाकर एक योगीकी भाँति योगियोंके गुरु महादेवजीकी स्तुति करने लगे।

असित बोले—जगद्गुरो! आपको नमस्कार है। आप शिव हैं और शिव (कल्याण)-के दाता हैं। योगीन्द्रोंके भी योगीन्द्र तथा गुरुओंके भी गुरु हैं; आपको प्रणाम है। मृत्युके लिये भी मृत्युरूप होकर जन्म-मृत्युमय संसारका खण्डन करनेवाले देवता! आपको नमस्कार है। मृत्युके ईश्वर! मृत्युके बीज! मृत्युञ्जय! आपको मेरा प्रणाम है। कालगणना करनेवालोंके लक्ष्यभूत कालरूप परमेश्वर! आप कालके भी काल, ईश्वर और कारण हैं तथा कालके लिये भी कालातीत हैं। कालकाल! आपको नमस्कार है। गुणातीत! गुणाधार! गुणबीज! गुणात्मक! गुणीश! और गुणियोंके आदिकारण! आप समस्त गुणवानोंके गुरु हैं; आपको नमस्कार है। ब्रह्मस्वरूप! ब्रह्मज्ञ!

१-२ अन्य पुराणोंके अनुसार कपिलजी कर्दमके तथा कवि भृगुके पुत्र थे।

ब्रह्मचिन्तनपरायण! आपको नमस्कार है। आप वेदोंके बीजरूप हैं। इसलिये ब्रह्मबीज कहलाते हैं; आपको मेरा प्रणाम है।

इस प्रकार स्तुति करके शिवको प्रणाम करनेके पश्चात् मुनीश्वर असित उनके सामने खड़े हो गये और दीनकी भाँति नेत्रोंसे आँसू बहाने लगे। उनके सम्पूर्ण शरीरमें रोमाञ्च हो आया। जो असितद्वारा किये गये महात्मा शंकरके इस स्तोत्रका प्रतिदिन भक्तिभावसे पाठ करता और एक वर्षतक नित्य हविष्य खाकर रहता है—उसे ज्ञानी, चिरञ्जीवी एवं वैष्णव पुत्रकी प्राप्ति होती है। जो धनाभावसे दुःखी हो, वह धनाढ्य और जो मूर्ख हो, वह पण्डित हो जाता है। पत्नीहीन पुरुषको सुशीला एवं पतिव्रता पत्नी प्राप्त होती है तथा वह इस लोकमें सुख भोगकर अन्तमें भगवान् शिवके समीप जाता है। पूर्वकालमें ब्रह्माजीने यह उत्तम स्तोत्र प्रचेताको दिया था और प्रचेताने अपने पुत्र असितको।

श्रीकृष्ण कहते हैं—मुनिका यह स्तोत्र सुनकर भक्तवत्सल भगवान् शंकर स्वयं ही अपने भक्त ब्राह्मणसे बोले।

शंकरजीने कहा—मुनिश्रेष्ठ! धैर्य धारण करो। मैं तुम्हारी इच्छाको जानता हूँ; अतः सत्य कहता हूँ। तुम्हें मेरे अंशसे मेरे ही समान पुत्र प्राप्त होगा। इसके लिये मैं तुम्हें एक ऐसा मन्त्र दूँगा, जिसकी कहीं तुलना नहीं है तथा जो सबके लिये परम दुर्लभ है।

यों कहकर भगवान् शिवने असितमुनिको वहीं षोडशाक्षर मन्त्र, स्तोत्र, पूजाविधि, परम अद्भुत 'संसार-विजय' नामक कवच तथा पुरश्चरणका उपदेश दिया। साथ ही यह भी कहा कि 'इस मन्त्रकी इष्टदेवी तुम्हें वर देनेके लिये प्रत्यक्ष दर्शन देंगी।' यों कहकर रुद्रदेव चुप हो गये और असितमुनि उन्हें नमस्कार करके चले गये। उन्होंने सौ वर्षोंतक उस उत्कृष्ट मन्त्रका जप किया। सती राधिके! तदनन्तर तुमने ही मुनिको प्रत्यक्ष दर्शन देकर उन्हें वर दिया—'वत्स! तुम्हें निश्चय ही महाज्ञानी पुत्रकी प्राप्ति होगी।' यह वर देकर तुम पुनः गोलोकमें मेरे पास चली आयीं। तदनन्तर यथासमय भगवान् शिवके अंशसे असितके एक पुत्र हुआ, जो कामदेवके समान सुन्दर था। उसका नाम हुआ देवल। देवल ब्रह्मनिष्ठ महात्मा हुए। उन्होंने राजा सुयज्ञकी सुन्दरी कन्या रत्नमालावतीको, जो सबका मन मोह लेनेवाली थी, विवाहकी विधिसे सानन्द ग्रहण किया। दीर्घकालतक पत्नीके साथ रहकर कालान्तरमें मुनिवर देवल संसारसे विरक्त हो गये और सारा सुख छोड़कर धर्ममें तत्पर हो श्रीहरिके चिन्तनमें लग गये। एक समय रात्रिमें वे विरक्त तपोधन शय्यासे उठे और कमनीय गन्धमादन पर्वतपर तपस्याके लिये चले गये। उनकी पत्नीकी जब निद्रा टूटी, तब वह सती अपने स्वामीको वहाँ न देख विरहाग्निसे दग्ध हो शोकवश अत्यन्त विलाप करने लगी। वह उठकर कभी खड़ी होती और कभी पछाड़ खाकर गिरती थी। रत्नमालावती बारंबार उच्चस्वरसे रोदन करने लगी। तपे हुए पात्रमें पड़े हुए धान्यकी जो दशा होती है, वही दशा उस समय उसके मनकी थी। उस सुन्दरीने खाना-पीना छोड़कर प्राणोंका परित्याग कर दिया। उसके पुत्रने उसका दाह-संस्कार आदि पारलौकिक कृत्य किया। मुनिवर देवल मेरे भक्त एवं जितेन्द्रिय थे। उन्होंने एक सहस्र दिव्य वर्षोंतक गन्धमादनकी गुफामें तप किया।

एक दिन रम्भाने उन परम सुन्दर, शान्तस्वभाव एवं कन्दर्पसदृश रूपवान् मुनिको देख उनसे मिलनकी प्रार्थना की। मुनिने उसकी याचना स्वीकार न करके कहा—'रम्भे! सुनो। मैं वेदोंका

सारभूत वचन सुना रहा हूँ, जो तपस्वी ब्राह्मणोंके कुलधर्मके अनुकूल और सत्य है। जो मनुष्य अपनी पत्नीको त्यागकर परायी स्त्रीके साथ सम्बन्ध स्थापित करता है, वह जीते-जी मरा हुआ है। उसके यश, धन और आयुकी हानि होती है। भूतलपर जिसके यशका विस्तार नहीं हुआ, उसका जीवन निष्फल है। एक तपस्वीको उत्तम सम्पत्ति, राज्य और सुखसे क्या लेना है? मैं निष्काम और वृद्ध हूँ। मुझसे तुम्हारा क्या प्रयोजन सिद्ध होगा? माँ! तुम सुन्दरी हो; अतः किसी उत्तम वेशभूषावाले सुन्दर तरुण पुरुषकी खोज करो।'

देवलजीकी यह बात सुनते ही रम्भाको क्रोध आ गया। उसने पुनः अपनी वही बात दोहरायी। तब मुनि उसे कुछ भी उत्तर न देकर पूर्ववत् ध्यानस्थ हो गये। यह देख रम्भाने रोषपूर्वक शाप देते हुए कहा—'कुटिलहृदय ब्राह्मण! तेरे सारे अवयव टेढ़े-मेढ़े हो जायँ। तेरा शरीर काजलके समान काला तथा रूप-यौवनसे शून्य हो जाय। आकार अत्यन्त विकृत तथा तीनों लोकोंमें निन्दित हो और तेरा पुरातन तप अवश्य ही शीघ्र नष्ट हो जाय।'

यह शाप प्राप्त होनेपर जब मुनिवर देवलने आँख खोलकर देखा तो सारा अङ्ग विकृत तथा पूर्वपुण्यसे वर्जित दिखायी दिया। तब वे अग्निकुण्ड तैयार करके शोकवश अपने प्राण त्याग देनेको उद्यत हुए। उस समय मैंने उन्हें दर्शन एवं वर दिया तथा दिव्य ज्ञान देकर उन्हें समझाया। प्रेमपूर्वक मेरे आश्वासन देनेपर वे शान्त हुए। उन महामुनिके आठों अङ्गोंको वक्र देख मैंने तत्काल ही कौतूहलवश उनका नाम अष्टावक्र[1] रख दिया। मेरे कहनेसे उन्होंने मलयाचलकी कन्दरामें आकर साठ हजार वर्षोंतक बड़ी भारी तपस्या की। प्रिये! उस तपकी समाप्ति होनेपर मेरा वह भक्त मुझसे आ मिला है। मैंने स्वयं उसे अपनेमें मिला लिया है। प्रलयकालमें सबके नष्ट हो जानेपर भी मेरे भक्तका नाश नहीं होता। इस मुनिने आहार बिलकुल छोड़ दिया था। अतः दीर्घकालकी तपस्या एवं जठराग्निकी ज्वालासे इनके शरीरका भीतरी भाग जलकर भस्मरूप हो गया था। प्रिये! ये मुनि मेरे ही लिये मलयाचलकी कन्दरा छोड़कर यहाँ आये थे। इन अष्टावक्र (देवल)-से बढ़कर दूसरा कोई मेरा भक्त न तो हुआ है और न होगा। ब्रह्माजीके प्रपौत्र मुनिवर देवल ऐसे उत्तम तपस्वी थे; परंतु उस पुंश्चलीके शापसे उसी तरह हीन अवस्थाको पहुँच गये, जैसे पूर्वकालमें ब्रह्माजी अपूजनीय हो गये थे। महात्मा देवलका यह सारा गूढ़ रहस्य मैंने कह सुनाया, जो सुखद और पुण्यप्रद है। अब तुम और क्या सुनना चाहती हो? (अध्याय ३०)

१- इस प्रसङ्गसे यह सूचित होता है कि असितपुत्र देवल (भी) कुछ कालतक 'अष्टावक्र' कहलाये। महाभारतके अनुसार 'अष्टावक्र' नामसे प्रसिद्ध एक दूसरे मुनि भी थे, जो जन्मसे ही वक्राङ्ग थे। उद्दालक-कन्या सुजाता उनकी माता थीं और महर्षि कहोड पिता। उन्होंने राजा जनकके दरबारमें शास्त्रार्थी पण्डित बन्दीको पराजित किया था। श्वेतकेतु उनके मामा थे। महर्षि वदान्यकी पुत्री सुप्रभाके साथ उनका विवाह हुआ था। समङ्गा नदीमें स्नान करनेसे इनके सब अङ्ग सीधे हो गये थे। महाभारत वनपर्वके अध्याय १३२ से लेकर १३४ तक उनका प्रसङ्ग है। अनुशासनपर्वके उन्नीसवें और इक्कीसवें अध्यायोंमें भी उनकी कथा आयी है।

ब्रह्माजीका मोहिनीके शापसे अपूज्य होना, इस शापके निवारणके लिये उनका वैकुण्ठधाममें जाना और वहाँ अन्यान्य ब्रह्माओंके दर्शनसे उनके अभिमानका दूर होना

तदनन्तर श्रीराधिकाने पूछा—श्यामसुन्दर! ब्रह्माजीको क्यों और किससे शाप प्राप्त हुआ था?

श्रीकृष्ण बोले—प्रिये! एक बार मोहिनीने ब्रह्माजीसे मिलनकी प्रार्थना की। बहुत समयतक उसका इसके लिये प्रयास चलता रहा; परंतु ब्रह्माजीने उसके उस प्रस्तावको ठुकरा दिया और एक दिन मुनियोंके सामने मोहिनीका उपहास किया। इससे मोहिनी कुपित हो उठी और शाप देती हुई बोली—'ब्रह्मन्! मैं आपकी दासीके समान हूँ, विनयशील हूँ और दैववश आपकी शरणमें आयी हूँ तो भी आप घमंडमें आकर मेरी हँसी उड़ा रहे हैं; अतः सुदीर्घ कालके लिये आप अपूजनीय हो जायँ। स्वयं भगवान् श्रीहरि शीघ्र ही आपके दर्पका दलन करेंगे। अन्य देवताओंकी प्रत्येक युगमें वार्षिक पूजा होगी; किंतु आपकी नहीं होगी। इस कल्पमें या कल्पान्तरमें, इस देहमें अथवा देहान्तरमें फिर आपकी पूजा नहीं होगी। अबतक जो हो गयी, सो हो गयी।'

यों कहकर मोहिनी शीघ्र ही कामलोकमें गयी और पुनः सचेत होनेपर अपने कुकृत्यको याद करके विलाप करने लगी। जगद्विधाता ब्रह्मा मोहिनीका शाप सुनकर काँप उठे। उनका मस्तक झुक गया। उस समय कल्याणकारी मुनियोंने उन्हें एक उपाय बताया—'आप भगवान् वैकुण्ठनाथकी शरणमें जाइये।' ऐसा कहकर वे ऋषि-मुनि अपने-अपने आश्रमोंको चले गये। तत्पश्चात् ब्रह्माजी मेरे ही दूसरे स्वरूप परम शान्त कमलाकान्त श्यामवर्ण भगवान् नारायणकी शरणमें गये। वहाँ जा खिन्नवदन हो चार भुजाधारी श्रीहरिको प्रणाम करके वे जगत्स्रष्टा ब्रह्मा उनके पास ही बैठे। उन्होंने विपत्तिसे उबारनेवाले, दयासिन्धु, दीनबन्धु भगवान्से अपने आगमनका रहस्य बताया। वह सारा रहस्य सुनकर भगवान् विष्णु हँसते हुए बोले।

श्रीनारायणने कहा—लोकनाथ! क्षणभर ठहरो। इसी बीचमें कोई शीघ्रगामी द्वारपाल श्रीहरिके सामने आया और उन्हें प्रणाम करके बोला—'भगवन्! दूसरे किसी ब्रह्माण्डके अधिपति दशमुख ब्रह्मा स्वयं पधारकर द्वारपर खड़े हैं। वे आपके महान् भक्त हैं और आपका दर्शन करनेके लिये ही आये हैं।' द्वारपालकी यह बात सुनकर भगवान् नारायणने उक्त ब्रह्माको भीतर बुला लानेके लिये उसे अनुमति दे दी। द्वारपालकी आज्ञासे ब्रह्माने भीतर आकर भक्तिभावसे भगवान्की स्तुति की। उन्होंने ऐसे-ऐसे अति विचित्र स्तोत्र सुनाये, जो चतुर्मुख ब्रह्माने कभी नहीं सुने थे। स्तुति करके भगवान् विष्णुकी आज्ञा पाकर वे चतुर्मुख ब्रह्माको पीछे करके बैठे। तदनन्तर भगवान् नारायणने अपने चार भुजाधारी द्वारपालोंसे कहा—'जो कोई भी आगन्तुक सज्जन हों, उन्हें आदरपूर्वक भीतर ले आओ।' वृन्दावनविनोदिनि! इसी समय वहाँ अत्यन्त विनीतभावसे स्वयं शतमुख ब्रह्माका आगमन हुआ। उन्होंने भी अत्यन्त सुन्दर दिव्य स्तोत्रोंद्वारा गूढ़भावसे भगवान्का स्तवन किया। उनके मुखसे निकले हुए श्रेष्ठ स्तोत्र सभीके लिये अश्रुतपूर्व (सर्वथा नवीन) थे। वे भी स्तुतिके पश्चात् भगवान्की आज्ञा पाकर पहलेके आये हुए दोनों ब्रह्माओंके आगे बैठ गये। इसके बाद दूसरे किसी ब्रह्माण्डके अधिपति सहस्रमुख ब्रह्मा श्रीहरिके सामने उपस्थित हुए। उन्होंने भी भक्तिभावसे मस्तक झुकाकर किसीके द्वारा भी अबतक नहीं सुने गये उत्तम स्तोत्रोंसे भगवान्की स्तुति की।

तत्पश्चात् वे भी आज्ञा पाकर सबसे आगे बैठे। उनसे श्रीहरिने समस्त ब्रह्माण्डोंके ब्रह्माओंका और उनके राज्यमें रहनेवाले देवताओंका क्रमशः कुशल-समाचार पूछा। उन सब ब्रह्माओंको देखकर अपनेको विष्णु-तुल्य माननेवाले चतुर्मुख ब्रह्माका घमंड चूर-चूर हो गया। इसके बाद श्रीहरिने विभिन्न ब्रह्माण्डोंमें रहनेवाले अन्यान्य ब्रह्माओंके भी दर्शन कराये। उन्हें देखकर चतुर्मुख ब्रह्मा मृतक-तुल्य हो गये। उस समय भगवान्‌ने कहा—'मुझ नारायणके शरीरमें जितने रोम हैं, उतने ही ब्रह्माण्ड और उनके उतने ही ब्रह्मा विद्यमान हैं।' यह सुनकर वे सभी आगन्तुक ब्रह्मा नारायणको प्रणाम करके शीघ्र ही अपने-अपने स्थानको चले गये। चतुर्मुख ब्रह्माने अपनेको अत्यन्त छोटा तथा अल्प राज्यका अधिपति माना। लज्जासे उनका सिर झुक गया और वे भगवान् विष्णुके चरणोंमें पड़ गये। तब भगवान्‌ने उनसे पूछा—'ब्रह्मन्! बोलो, इस समय तुमने स्वप्नकी भाँति यह क्या देखा है।' उनका प्रश्न सुनकर ब्रह्मा बोले—'प्रभो! भूत, वर्तमान और भविष्य—सारा जगत् आपकी मायासे ही उत्पन्न हुआ है।' यों कह चतुर्भुज ब्रह्मा वैकुण्ठकी सभामें लज्जाका अनुभव करते हुए चुप हो गये। तब सर्वान्तर्यामी भगवान् श्रीहरिने उनके शाप-निवारणका उपाय किया।

(अध्याय ३१—३३)

गङ्गाकी उत्पत्ति तथा महिमा

श्रीकृष्ण कहते हैं—प्रिये! इसी बीचमें भगवान् शंकर वहाँ उपस्थित हुए। उनके मुखपर मुस्कराहट थी। वे सारे अङ्गोंमें विभूति लगाये वृषभराज नन्दिकेश्वरकी पीठपर बैठे थे। व्याघ्रचर्मका वस्त्र, सर्पमय यज्ञोपवीत, सिरपर सुनहरे रंगकी जटाका भार, ललाटमें अर्धचन्द्र, हाथोंमें त्रिशूल, पट्टिश तथा उत्तम खट्वाङ्ग धारण किये, श्रेष्ठ रत्नोंके सारतत्त्वसे निर्मित स्वर-यन्त्र लिये भगवान् शिव शीघ्र ही वाहनसे उतरे और भक्तिभावसे मस्तक झुका कमलाकान्तको प्रणाम करके उनके वामभागमें बैठे। फिर इन्द्र आदि समस्त देवता, मुनि, आदित्य, वसु, रुद्र, मनु, सिद्ध और चारण वहाँ पधारे। उन सबने पुरुषोत्तमकी स्तुति की। उस समय उनके सारे अङ्ग पुलकित हो रहे थे। फिर समस्त देवताओंने सिर झुकाकर भगवान् शिवको प्रणाम किया। तदनन्तर स्वर-यन्त्र लिये भगवान् शंकरने सुमधुर तालस्वरके साथ संगीत आरम्भ किया। प्रिये! उसमें हम दोनोंके गुणों तथा राससम्बन्धी सुन्दर पदोंका गान होने लगा।

मनको मोह लेनेवाले सामयिक राग,[१] कण्ठकी

१- संगीतमें षड्ज आदि स्वरों, उनके वर्णों और अङ्गोंसे युक्त वह ध्वनि जो किसी विशिष्ट तालमें बैठायी हुई हो और जो मनोरञ्जनके लिये गायी जाती हो। संगीत-शास्त्रके भारतीय आचार्योंने छः राग माने हैं; परंतु इन

एकतानता, एक मनोहर मान, गुरु-लघुके क्रमसे पद-भेद-विराम, अतिदीर्घ गमक तथा मधुर आनन्दके साथ उन्होंने प्रेमपूर्वक स्वयं-निर्मित ऐसा संगीत छेड़ा, जो संसारमें अत्यन्त दुर्लभ है। उस समय भगवान् शिवके सम्पूर्ण अङ्गोंमें रोमाञ्च हो आया था और वे नेत्रोंसे बारंबार आँसू बहाते थे। प्रिये! उस संगीतको सुननेमात्रसे वहाँ बैठे हुए मुनि तथा देवता मूर्च्छित एवं बेसुध हो द्रव (जल)-रूप हो गये। श्रीहरिके पार्षदोंकी तथा ब्रह्माजीकी भी यही दशा हुई। भगवान् नारायण, लक्ष्मी तथा गान करनेवाले स्वयं शिव भी द्रवरूप हो गये। प्राणेश्वरि! उस समय वैकुण्ठधामको जलसे पूर्ण हुआ देख मुझे शङ्का हुई। तब वहाँ जाकर मैंने उन सब देवता आदिकी मूर्तियों (शरीरों)-का पूर्ववत् निर्माण किया। उनके वैसे ही रूप, वैसे ही अस्त्र-शस्त्र तथा वैसे ही वाहन-भूषण बनाये। उनके स्वभाव, मन तथा विषय-वासनाएँ भी पूर्ववत् थीं। तदनन्तर उस जलराशिके लिये वैकुण्ठके चारों ओर स्थान बनाया; फिर उसकी अधिष्ठात्री देवी (गङ्गा) अपने उस वासस्थानमें आयीं।

समस्त देवताओंके शरीरोंसे उत्पन्न हुई वह

रागोंके नामोंके सम्बन्धमें बहुत मतभेद है। भरत और हनुमत्के मतसे ये छः राग इस प्रकार हैं—भैरव, कौशिक (मालकोस), हिंडोल, दीपक, श्री और मेघ। सोमेश्वर और ब्रह्माके मतसे इन छः रागोंके नाम इस प्रकार हैं—श्री, वसंत, पञ्चम, भैरव, मेघ और नटनारायण। नारद-संहिताका मत है कि मालव, मल्लार, श्री, वसंत, हिंडोल और कर्णाट—ये छः राग हैं। परंतु आजकल प्रायः ब्रह्मा और सोमेश्वरका मत ही अधिक प्रचलित है। स्वर-भेदसे राग तीन प्रकारके कहे गये हैं—(१) सम्पूर्ण, जिसमें सातों स्वर लगते हों; (२) षाड़व, जिसमें केवल छः स्वर लगते हों और कोई एक स्वर वर्जित हो; और (३) ओड़व, जिसमें केवल पाँच स्वर लगते हों और दो स्वर वर्जित हों। मतङ्गके मतसे रागोंके ये तीन भेद हैं—(१) शुद्ध, जो शास्त्रीय नियम तथा विधानके अनुसार हो और जिसमें किसी दूसरे रागकी छाया न हो; (२) सालंक या छायालग, जिसमें किसी दूसरे रागकी छाया भी दिखायी देती हो, अथवा जो दो रागोंके योगसे बना हो; और (३) संकीर्ण, जो कई रागोंके मेलसे बना हो। संकीर्णको 'संकर राग' भी कहते हैं। ऊपर जिन छः रागोंके नाम बतलाये गये हैं, उनमेंसे प्रत्येक रागका एक निश्चित सरगम या स्वर-क्रम है। उसका एक विशिष्ट स्वरूप माना गया है। उसके लिये एक विशिष्ट ऋतु, समय और पहर आदि निश्चित हैं। उसके लिये कुछ रस नियत हैं तथा अनेक ऐसी बातें भी कही गयी हैं, जिनमेंसे अधिकांश केवल कल्पित ही हैं। जैसे, माना गया है कि अमुक रागका अमुक द्वीप या वर्षपर अधिकार है, उसका अधिपति अमुक ग्रह है, आदि। इसके अतिरिक्त भरत और हनुमत्के मतसे प्रत्येक रागकी पाँच-पाँच रागिनियाँ और सोमेश्वर आदिके मतसे छः-छः रागिनियाँ हैं। इस अन्तिम मतके अनुसार प्रत्येक रागके आठ-आठ पुत्र तथा आठ-आठ पुत्रवधुएँ भी हैं। (४) यदि वास्तविक दृष्टिसे देखा जाय तो राग और रागिनीमें कोई अन्तर नहीं है। जो कुछ अन्तर है, वह केवल कल्पित है। हाँ, रागोंमें रागिनियोंकी अपेक्षा कुछ विशेषता और प्रधानता अवश्य होती है और रागिनियाँ उनकी छायासे युक्त जान पड़ती हैं; अतः हम रागिनियोंको रागोंके अवान्तर भेद कह सकते हैं। इसके सिवा और भी बहुत-से राग हैं, जो कई रागोंकी छायापर अथवा मेलसे बनते हैं और 'संकर राग' कहलाते हैं। शुद्ध रागोंकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें लोगोंका विश्वास है कि जिस प्रकार श्रीकृष्णकी वंशीके सात छेदोंमेंसे सात स्वर निकले हैं, उसी प्रकार श्रीकृष्णजीकी १६०८ गोपिकाओंके गानेसे १६०८ प्रकारके राग उत्पन्न हुए थे और उन्हींमेंसे बचते-बचते अन्तमें केवल छः राग और उनकी ३० या ३६ रागिनियाँ रह गयीं। कुछ लोगोंका यह भी मत है कि महादेवजीके पाँच मुखोंसे पाँच राग (श्री, वसंत, भैरव, पञ्चम और मेघ) निकले हैं और पार्वतीके मुखसे छठा 'नटनारायण' राग निकला है।

१- संगीत-शास्त्रके अनुसार तालमेंका विराम जो सम, विषम, अतीत और अनागत—चार प्रकारका होता है।

२- संगीतमें एक श्रुति या स्वरपरसे दूसरी श्रुति या स्वरपर जानेका एक प्रकार। इसके सात भेद हैं—कम्पित, स्फुरित, लीन, भिन्न, स्थविर, आहत और आन्दोलित। पर साधारणतः लोग गानेमें स्वरके कँपानेको ही गमक कहते हैं। तबलेकी गम्भीर आवाजको भी गमक कहते हैं। (हिंदी-शब्दसागरसे संकलित)

दिव्य जलराशि ही देवनदी गङ्गाके नामसे प्रख्यात हुई। वह मुमुक्षुओंको मोक्ष और भक्तोंको हरि-भक्ति प्रदान करनेवाली है। उसका स्पर्श करके आयी हुई वायुके सम्पर्कसे भी पापियोंके करोड़ों जन्मोंके नानाविध पाप तत्काल नष्ट हो जाते हैं। प्राणेश्वरि! देवनदीके साक्षात् दर्शन तथा स्पर्शका क्या फल होगा—यह मैं भी नहीं जानता; फिर उसके जलमें स्नान करनेसे प्राप्त होनेवाले पुण्यके विषयमें तो कहना ही क्या है? उसकी महिमाका सम्यक् निरूपण असम्भव है। पृथ्वीपर 'पुष्कर' को सब तीर्थोंसे उत्तम बताया गया है। वेदोंने उसे सर्वश्रेष्ठ कहा है; परंतु वह भी इस (गङ्गा)-की सोलहवीं कलाके भी बराबर नहीं है। राजा भगीरथ इस देवनदीको भूतलपर लाये थे, इसलिये यह 'भागीरथी' नामसे प्रसिद्ध हुई। सुरधुनी अपने स्रोतके अंशसे पृथ्वीपर आयी थी; अतः 'गां गता' इस व्युत्पत्तिके अनुसार उसका 'गङ्गा' नाम प्रसिद्ध हुआ। इसके जलपर क्रोध होनेके कारण महात्मा जह्नुने इस नदीको अपने जानुओं (घुटनों)-द्वारा ग्रहण कर लिया था। फिर उनकी कन्यारूपसे इसका प्राकट्य हुआ; अतः इसका दूसरा नाम 'जाह्नवी' है। वसुके अवतार भीष्म इसके गर्भसे उत्पन्न हुए थे, इस कारण यह 'भीष्मसू' (भीष्मजननी) कहलाती है। गङ्गा मेरी आज्ञासे तीन धाराओंद्वारा स्वर्ग, पृथ्वी तथा पातालमें गयी है; अतः 'त्रिपथगा' कही जाती है। इसकी प्रमुख धारा स्वर्गमें है। वहाँ इसे 'मन्दाकिनी' कहते हैं। स्वर्गमें इसका पाट एक योजन चौड़ा है और यह दस हजार योजनकी दूरीमें प्रवाहित होती है। इसका जल दूधके समान स्वच्छ एवं स्वादिष्ट है तथा इसमें सदा ऊँची-ऊँची लहरें उठती रहती हैं। वैकुण्ठसे यह ब्रह्मलोकमें और वहाँसे स्वर्गमें आयी है। स्वर्गसे चलकर हिमालयके शिखरपर होती हुई यह प्रसन्नतापूर्वक पृथ्वीपर उतरी है। इसकी उस धाराका नाम 'अलकनन्दा' है। यह क्षार-समुद्रमें जाकर मिली है। इसकी जलराशि शुद्ध स्फटिकके समान स्वच्छ तथा अत्यन्त वेगवती है। यह पापियोंके पापरूपी सूखे काठको जलानेके लिये अग्निरूपिणी है। इसीने राजा सगरके पुत्रोंको निर्वाणमोक्ष प्रदान किया है। यह वैकुण्ठधामतक जानेके लिये श्रेष्ठ सोपान है।

यदि मृत्युकालमें पहले पुण्यात्मा सत्पुरुषोंके चरणोंको धोकर उस चरणोदकको मुमूर्षु मनुष्यके मुखमें दिया जाय तो उसे गङ्गाजल पीनेका पुण्य होता है। ऐसे पुण्यात्मा सत्पुरुष गङ्गारूपी सोपानपर आरूढ़ हो निरामयपद (वैकुण्ठधाम)-को प्राप्त होते हैं। वे ब्रह्मलोकतकको लाँघकर विमानपर बैठे हुए निर्बाध गतिसे ऊपरके लोक (वैकुण्ठ)-में चले जाते हैं। यदि दैववश पूर्वकर्मके प्रभावसे पापी पुरुष गङ्गामें डूब जायँ तो वे शरीरमें जितने रोएँ हैं, उतने दिव्य वर्षोंतक भगवद्धाममें सानन्द निवास करते हैं। तदनन्तर उन्हें निश्चय ही अपने पाप-पुण्यका फल भोगना पड़ता है। परंतु वह भोग स्वल्पकालमें ही पूरा हो जाता है; तत्पश्चात् भारतवर्षमें पुण्यवानोंके घरमें जन्म ले निश्चल भक्ति पाकर वे भगवत्स्वरूप हो जाते हैं। जो शुद्धिके लिये यात्रा करके देवेश्वरी गङ्गामें नहानेके लिये जाता है, वह जितने पग चलता है, उतने वर्षोंतक अवश्य ही वैकुण्ठधाममें आनन्द भोगता है। यदि आनुषङ्गिकरूपसे भी गङ्गाको पाकर कोई पापयुक्त मनुष्य उसमें स्नान करता है तो वह उस समय सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। यदि वह फिर पापमें लिप्त न हो तो निष्पाप ही रहता है। कलियुगमें पाँच हजार वर्षोंतक भारतवर्षमें गङ्गाकी साक्षात् स्थिति है। उसके विद्यमान होते हुए कलिका क्या प्रभाव रह सकता है? कलिमें दस हजार वर्षोंतक मेरी प्रतिमाएँ तथा पुराण रहते हैं। उनके होते हुए वहाँ कलिका प्रभाव क्या हो सकता है?

गङ्गाकी जो धारा पाताललोकको जाती है, उसका नाम भोगवती है। वह सदा दुग्ध-फेनके समान स्वच्छ तथा अत्यन्त वेगवती है। अमूल्य रत्नों तथा श्रेष्ठ मणियोंकी वह सदा खान बनी रहती है। सुस्थिर यौवनवाली नागकन्याएँ उसके तटपर सदा ही क्रीड़ा करती हैं। स्वयं देवी गङ्गा वैकुण्ठको चारों ओरसे घेरकर सदा प्रवाहित होती रहती हैं। मेरी इस पुत्रीका विनाश प्रलयकालमें भी नहीं होता। उसका परम मनोहर दिव्य तट नाना रत्नोंकी खान है। इस प्रकार गङ्गाके जन्मका सारा पुण्यदायक प्रसङ्ग मैंने कह सुनाया। अब ब्रह्माजीको मोहिनीके शापसे किस प्रकार छुटकारा मिला, यह सुनो।

(अध्याय ३४)

गङ्गा-स्नानसे ब्रह्माजीको मिले हुए शापकी निवृत्ति, गोलोकमें ब्रह्माजीको भारतीकी प्राप्ति, भारतीसहित ब्रह्माका अपने लोकमें प्रवेश, भगवान् शिवके दर्पभङ्गकी कथा, वृकासुरसे उनकी रक्षा, श्रीराधिकाके पूछनेपर श्रीकृष्णके द्वारा शिवके तत्त्व-रहस्यका निरूपण

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—प्रिये! तदनन्तर सबने गङ्गाको देखकर मेरी माया मानी। उस समय नारायणने कृपापूर्वक ब्रह्माजीसे कहा।

श्रीनारायण बोले—चतुर्मुख! उठो, जाओ, तुम्हारा कल्याण होगा। तुम्हें शाप लगा है; अतः मेरी आज्ञासे इस गङ्गामें स्नान करके पवित्र हो जाओ। यद्यपि तुम स्वयं पवित्र हो और वे समस्त तीर्थ तुम वैष्णवपतिका स्पर्श प्राप्त करना चाहते हैं, तथापि प्रकृतिकी अवहेलना करने (हँसी उड़ाने)- से तुम्हें शाप मिला है। अहंकार सभीके लिये पापोंका बीज और अमङ्गलकारी होता है। तुम शीघ्र मेरे परात्पर धाम गोलोकको जाओ। वहाँ प्रकृतिकी अंशरूपा मङ्गलदायिनी भारतीको पाओगे। कल्याण-सृष्टिकी बीजरूपिणी प्रकृतिको अपनाओ। अहो! तुमने एक कल्पतक तप किया है तो भी इस समय एक अप्सराके शापसे कोई भी तुम्हारे मन्त्रको नहीं ग्रहण करते हैं। अन्य देवताओंकी पूजामें भी तुम्हारी ही पूजा होगी; क्योंकि तुम्हीं जगत्के धारण-पोषण करनेवाले, स्वात्माराम, सर्वरूपी तथा सब ओर समस्त देहोंमें पूजास्वरूप हो।

उस समय मेरी आज्ञा मानकर जगद्गुरु ब्रह्माने गङ्गाके जलमें स्नान किया और मुझे प्रणाम करके वे शीघ्र ही गोलोकको चले गये। फिर समस्त देवता और मुनि भी प्रसन्नतापूर्वक अपने-अपने स्थानको लौट गये। वे बारंबार मेरे परम निर्मल यशका गान कर रहे थे। ब्रह्माजीने गोलोकमें जाकर मेरे मुखारविन्दसे निर्गत, सम्पूर्ण विद्याओंकी अधिदेवी सती भारतीको प्राप्त किया। वागीश्वरी भारतीको पाकर उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। उन त्रिभुवनमोहिनी देवीको प्राप्त करके मुझे प्रणाम करनेके अनन्तर वे लौट आये। ब्रह्मलोकके निवासियोंने उन भारतीदेवीको देखा। वे कौतूहलसे भरी हुई, परम सुन्दरी, रमणीया तथा श्वेतवर्णा थीं। उनके मुखपर मन्द मुस्कानकी प्रभा फैल रही थी। मुख शरद् ऋतुके चन्द्रमाको लज्जित कर रहा था। नेत्र शरद् ऋतुके प्रफुल्ल कमलोंके समान जान पड़ते थे। दीप्तिमान् ओष्ठ और अधरपल्लव पके बिम्बफलकी प्रभाको छीने लेते थे। मुक्तापंक्तिकी शोभाको तिरस्कृत करनेवाली दन्तपंक्तियोंसे उनके मुखकी मनोहरता बढ़ गयी थी। रत्ननिर्मित केयूर-कंगन हाथोंकी और रत्नोंके नूपुर चरणोंकी शोभा बढ़ाते थे। रत्नमय युगल कुण्डलोंसे कानोंके नीचेके भाग झलमला रहे थे।

रत्नेन्द्रसारनिर्मित हारसे उनका वक्षःस्थल अत्यन्त प्रकाशमान दिखायी देता था। वे अग्निशुद्ध सूक्ष्म वस्त्र धारण करके नूतन यौवनसे सम्पन्न एवं अत्यन्त कमनीय दृष्टिगोचर होती थीं। उनके दो हाथोंमें वीणा और पुस्तक तथा अन्य हाथोंमें व्याख्याकी मुद्रा देखी जाती थी। ब्रह्मलोकनिवासियोंने उनपर प्रिय वस्तुएँ निछावर करके परम मङ्गलमय उत्सव मनाया और ब्रह्मा तथा भारतीको वे सानन्द पुरीके भीतर ले गये।

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—प्रिये! ब्रह्माण्डोंमें जिन-जिन लोगोंको अपनी शक्तिपर गर्व होता है, उनके उस गर्व या अभिमानको जानकर मैं ही उनपर शासन करता हूँ—उनके घमंडको चूर कर देता हूँ; क्योंकि मैं सबका आत्मा और परात्पर परमेश्वर हूँ; पहले ब्रह्माके गर्वको जो मैंने चूर्ण किया था, वह प्रसङ्ग तो तुमने सुन लिया। अब शंकर, पार्वती, इन्द्र, सूर्य, अग्नि, दुर्वासा तथा धन्वन्तरिके अभिमान-भञ्जनका प्रसङ्ग क्रमशः सुनाता हूँ, सुनो। प्रिये! छोटे-बड़े जो भी लोग हैं, उनके इस तरहके गर्वको मैं अवश्य चूर्ण कर देता हूँ। स्वयं शिव मेरे अंश हैं, जगत्के संहारक हैं और मेरे समान ही तेज, ज्ञान तथा गुणसे परिपूर्ण हैं। प्रिये! योगीलोग उनका ध्यान करते हैं। वे योगीन्द्रोंके गुरुके भी गुरु हैं तथा ज्ञानानन्दस्वरूप हैं। उनकी कथा कहता हूँ, सुनो। साठ सहस्र युगोंतक दिन-रात तपस्या करके मेरी कलासे पूर्ण भगवान् शिव तप और तेजमें मेरे समान हो गये। सनातन तेजकी राशि हो गये। उनमें करोड़ों सूर्योंके समान प्रकाश प्रकट हुआ। वे भक्तोंकी मनोवाञ्छा पूर्ण करनेके लिये कल्पवृक्षरूप हो गये। योगीन्द्रगण दीर्घकालतक उनके तेजका ध्यान करते-करते उसके भीतर अत्यन्त सुन्दर स्वरूपका साक्षात्कार करने लगते हैं। उनकी अङ्गकान्ति शुद्ध स्फटिकके समान उज्ज्वल है। वे पाँच मुखोंसे सुशोभित होते हैं और उनके प्रत्येक मुखमें तीन-तीन नेत्र शोभा पाते हैं। हाथोंमें त्रिशूल और पट्टिश हैं। कटिभागमें व्याघ्रचर्ममय वस्त्र शोभा पाता है। वे श्वेत कमलके बीजकी मालासे स्वयं ही अपने-आपका—अपने मन्त्रोंका जप करते हैं। उनके प्रसन्न मुखपर मन्द हास्यकी छटा छायी रहती है। वे परात्पर शिव मस्तकपर अर्धचन्द्रका मुकुट तथा सुनहरे रंगकी जटाओंका भार धारण करते हैं। उनका स्वरूप शान्त है। वे तीनों लोकोंके स्वामी तथा भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये कातर रहनेवाले हैं। अपने-आपको परमेश्वर मानकर समस्त सम्पत्तियोंके दाता होकर कल्पवृक्षके समान सबको सारी मनोवाञ्छित वस्तुएँ देते हैं। जो जिस वस्तुकी इच्छा करता है, उसे वही वर देकर वे समस्त वरोंके स्वामी हो गये हैं। इस प्रकार स्वात्माराम शिव अपनी ही लीलासे अभिमानको अपनाकर गर्वयुक्त हो गये।

एक समयकी बात है। वृक नामक दैत्यने शिवके केदारतीर्थमें एक वर्षतक दिन-रात कठोर तपस्या की। कृपानिधान शिव प्रतिदिन कृपापूर्वक अभीष्ट वर देनेके लिये उसके पास जाते थे; परंतु वह असुर किसी दिन भी वर नहीं ग्रहण करता था; वर्ष पूर्ण होनेपर भगवान् शंकर निरन्तर उसके सामने उपस्थित रहने लगे। वे भक्ति-पाशसे बँधकर वर देनेके लिये उद्यत हो क्षणभर भी वहाँसे अन्यत्र न जा सके। सम्पूर्ण ऐश्वर्य, समस्त सिद्धि, भोग, मोक्ष तथा श्रीहरिका पद—यह सब कुछ भगवान् शूलपाणि देना चाहते थे; परंतु उस दैत्यने कुछ भी ग्रहण नहीं किया। वह केवल उनके चरणकमलोंका ध्यान करता रहा। जब ध्यान टूटा, तब उस दैत्यराजने अपने सामने साक्षात् शिवको देखा, जो सम्पूर्ण सम्पदाओंके दाता हैं। उनकी ही मायासे प्रेरित हो वृकने भक्तिपूर्वक यह वर माँगा कि 'प्रभो! मैं जिसके माथेपर हाथ रख दूँ, वह जलकर भस्म हो

जाय।' तब 'बहुत अच्छा' कहकर जाते हुए भगवान् शिवके पीछे वह दैत्यराज दौड़ा। फिर तो मृत्युञ्जय शंकर मृत्युके भयसे त्रस्त होकर भागे। उनका डमरू गिर पड़ा। मनोहर व्याघ्रचर्मकी भी यही दशा हुई। वे दिगम्बर होकर दानवके भयसे दसों दिशाओंमें भागने लगे। वे चाहते तो उसे मार डालते; परंतु भक्तवत्सल जो ठहरे। अतः भक्तपर कृपा करके उसे मारते नहीं थे। साधु पुरुष दुष्टके अनुसार बर्ताव कदापि नहीं करते हैं। भगवान् शिव उसे समझा भी न सके। उन्होंने कृपापूर्वक उसे अपना स्वरूप ही माना; क्योंकि उनकी सर्वत्र समान दृष्टि थी। शिव उसे अपनी मृत्यु मानकर भयभीत हो उठे। उनका अहंकार गल गया। भद्रे! मुझे याद करते हुए उन्होंने मेरी ही शरण ली। उस समय मुझे अपने आश्रमपर आते देख उन्हें कुछ धैर्य मिला। उनके कण्ठ, ओठ और तालु सूख गये थे और वे भयसे विह्वल हो 'हे हरे! रक्षा करो, रक्षा करो'—इसका जप कर रहे थे। तब मैंने उस दैत्यको अपने पास बिठाकर समझाया और सब समाचार पूछा। पूछनेपर उसने सब बातें क्रमशः बतायीं। उस समय मेरी आज्ञासे वह असुर तुरंत मायाद्वारा ठगा गया। (मैंने उसको यह कहकर मोहमें डाल दिया कि तुम अपने सिरपर हाथ रखकर परीक्षा तो करो कि यह बात सत्य है या नहीं।) उसने अपने मस्तकपर हाथ रखा और तत्काल जलकर भस्म हो गया। तब सिद्ध, सुरेन्द्र, मुनीन्द्र और मनु प्रसन्नतापूर्वक उत्तम भक्तिभावसे मेरी स्तुति करने लगे और शिवजी लज्जित हो गये। उनका गर्व चूर्ण हो गया। फिर मैंने उन्हें समझाया और वे अपने स्थानको गये।

इसी तरह गर्वमें भरे हुए रुद्र भयानक असुर त्रिपुरका वध करनेके लिये गये। वे मन-ही-मन यह समझकर कि 'मैं तो समस्त लोकोंका संहारक हूँ, फिर मेरे सामने इस पतिंगेके समान दैत्यकी क्या बिसात है?' युद्धक्षेत्रमें गये। उस समय उन्होंने मेरे दिये हुए त्रिशूल तथा श्रेष्ठ कवचको साथ नहीं लिया था। उनका त्रिपुरके साथ एक वर्षतक दिन-रात युद्ध होता रहा; किंतु कोई भी किसीपर विजय नहीं पा सका। समराङ्गणमें दोनों समान सिद्ध हुए। प्रिये! पृथ्वीपर युद्ध करके दैत्यराज मायासे बहुत ऊँचाईपर पचास करोड़ योजन ऊपर उठ गया। साथ ही विश्वनाथ शंकर भी उस दैत्यका वध करनेके लिये तत्काल ऊपरको उठे। वहाँ निराधार स्थानपर एक मासतक युद्ध चलता रहा। भयानक संग्राम हुआ। अन्तमें शिवको उठाकर उस दैत्यने भूतलपर दे मारा। रथसहित रुद्रके धराशायी हो जानेपर देवर्षिगण भयभीत हो मेरी स्तुति करने लगे और बार-बार बोले—'श्रीकृष्ण! रक्षा करो, रक्षा करो।' भयका कारण उपस्थित हुआ जान शिवने निर्भयतापूर्वक मेरा ही स्मरण किया। उन्होंने संकटकालमें मेरे ही दिये हुए स्तोत्रसे भक्तिपूर्वक मेरा स्तवन किया। उस समय अपनी कलाद्वारा शीघ्र ही वृषभरूप धारण करके मैंने सोते शंकरको सींगोंसे उठाया और उन्हें अपना कवच तथा शत्रुमर्दन शूल दिया। उसे पाकर उन्होंने दानवोंके उस अत्यन्त ऊँचे स्थान त्रिपुरको, जो आकाशमें निराधार टिका हुआ था, मेरे दिये हुए शूलसे नष्ट कर दिया। इसके बाद शिवने मुझ दर्पहन्ताका ही बारंबार लज्जापूर्वक स्तवन किया। दैत्यराज त्रिपुर उसी क्षण चूर-चूर होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा। यह देख सब देवता और मुनि प्रसन्नतापूर्वक शिवजीकी स्तुति करने लगे। तबसे भगवान् शंकरने विघ्नके बीजस्वरूप दर्पको त्याग दिया। वे ज्ञानानन्दस्वरूपसे स्थित हो सब कर्मोंमें निर्लिप्तभावसे संलग्न रहने लगे। तदनन्तर मैं अपने प्रिय भक्त शंकरको वृषरूपसे पीठपर वहन करने लगा; क्योंकि तीनों लोकोंमें शिवसे बढ़कर प्रियतम मेरे लिये दूसरा

कोई नहीं है*। ब्रह्मा मेरे मनस्वरूप, महेश्वर मेरे ज्ञानरूप और मूलप्रकृति ईश्वरी भगवती दुर्गा मेरी बुद्धिरूपा हैं। निद्रा आदि जो-जो शक्तियाँ हैं, वे सब-की-सब प्रकृतिकी कलाएँ हैं। साक्षात् सरस्वती मेरी वाणीकी अधिष्ठात्री देवी हैं। कल्याणके अधिदेवता गणेशजी मेरे हर्ष हैं। स्वयं धर्म परमार्थ है तथा अग्निदेव मेरे भक्त हैं; गोलोकके सम्पूर्ण निवासी मेरे समस्त ऐश्वर्यके अधिदेवता हैं। तुम सदा मेरे प्राणोंकी अधिष्ठात्री देवी एवं प्राणोंसे भी अधिक प्यारी हो। गोपाङ्गनाएँ तुम्हारी कलाएँ हैं; अतएव मुझे प्यारी हैं। गोलोकनिवासी समस्त गोप मेरे रोमकूपसे उत्पन्न हुए हैं†। सूर्य मेरे तेज और वायु मेरे प्राण हैं। वरुण जलके अधिदेवता तथा पृथ्वी मेरे मलसे प्रकट हुई है। मेरे शरीरका शून्यभाग ही महाकाश कहा गया है। कामकी उत्पत्ति मेरे मनसे हुई है। इन्द्र आदि सब देवता मेरी कलाके अंशांशसे प्रकट हुए हैं। सृष्टिके बीजरूप जो महत् आदि तत्त्व हैं, उन सबका बीजरूप आश्रयहीन आत्मा मैं स्वयं ही हूँ। कर्मभोगका अधिकारी जीव मेरा प्रतिबिम्ब है। मैं साक्षी और निरीह हूँ। किसी कर्मका भोगी नहीं हूँ। मुझ स्वेच्छामय परमेश्वरका यह शरीर भक्तोंके ध्यानके लिये है। एकमात्र परात्पर परमेश्वर मैं ही प्रकृति हूँ और मैं ही पुरुष हूँ।

श्रीराधिकाने पूछा—भगवन्! आप सब तत्त्वोंके ज्ञाता, सबके बीज और सनातन पुरुष हैं। समस्त संदेहोंका निवारण करनेवाले प्रभो! मेरे अभीष्ट प्रश्नका समाधान कीजिये। भगवान् शंकर सम्पूर्ण ज्ञानोंके अधिदेवता, समस्त तत्त्वोंके ज्ञाता, मृत्युञ्जय, कालके भी काल तथा आपके ही तुल्य महान् हैं। फिर वे अपने सारे अङ्गोंमें विभूति क्यों लगाते हैं? पञ्चमुख और त्रिलोचन क्यों कहलाते हैं? दिगम्बर और जटाधारी क्यों हैं? सर्प-समुदायसे क्यों विभूषित होते हैं? वे देवेन्द्र श्रेष्ठ वाहन छोड़कर वृषभके द्वारा क्यों भ्रमण करते हैं? रत्नसारनिर्मित आभूषण क्यों नहीं धारण करते हैं? अग्निशुद्ध दिव्य वस्त्रको त्यागकर व्याघ्रचर्म क्यों पहनते हैं? पारिजात छोड़कर धतूरके फूल क्यों धारण करते हैं? उन्हें मस्तकपर रत्नमय किरीट धारण करनेकी इच्छा क्यों नहीं होती? जटापर ही उनकी अधिक प्रीति क्यों है? दिव्यलोक छोड़कर उन प्रभुको श्मशानमें रहनेकी अभिलाषा क्यों होती है? चन्दन, अगुरु, कस्तूरी तथा सुगन्धित पुष्पोंको छोड़कर वे बिल्वपत्र तथा बिल्व-काष्ठके अनुलेपनकी स्पृहा क्यों रखते हैं? मैं यह सब जानना चाहती हूँ। प्रभो! आप विस्तारके साथ इसका वर्णन करें। नाथ! इसे सुननेके लिये मेरे मनमें कौतूहल बढ़ रहा है। इच्छा जाग उठी है।

राधिकाकी यह बात सुनकर मधुसूदनने हँसते हुए उन्हें अपने समीप बिठा लिया और कथा कहना आरम्भ किया।

श्रीकृष्ण बोले—प्रिये! पूर्णतम महेश्वरने साठ हजार युगोंतक तप करते हुए मनके द्वारा सानन्द मेरा ध्यान किया। तत्पश्चात् वे तपस्यासे विरत हो गये। इसी बीच उन्होंने मुझे अपने सामने खड़ा देखा। अत्यन्त कमनीय अङ्ग, किशोर अवस्था और परम उत्तम श्यामसुन्दर रूप—सब कुछ अनिर्वचनीय था। मेरे उस रूपको देखकर त्रिलोचनके लोचन तृप्त न हो सके। वे एकटक नेत्रोंसे देखते रहे तथा भक्तिके उद्रेकसे

---

* ततोऽहं वृषरूपेण वहामि तेन तं प्रियम्। मम प्रियतमो नास्ति त्रैलोक्येषु शिवात्परः॥ (३६। ५७)

† गोपाङ्गनास्तव कला अतएव मम प्रियाः। मल्लोमकूपजा गोपाः सर्वे गोलोकवासिनः॥ (३६। ६२)

प्रेम-विह्वल हो महाभक्त शिव रोने लगे। उन्होंने सोचा, सहस्रमुख शेषनाग तथा चतुर्मुख ब्रह्मा बड़े भाग्यवान् हैं, जिन्होंने बहुसंख्यक नेत्रोंसे भगवान्‌के मनोहर रूपका दर्शन करके अनेक मुखोंसे उनकी स्तुति की है। मैं ऐसे स्वामीको पाकर दो ही नेत्रोंसे इनके रूपको क्या देखूँ और एक ही मुखसे इनकी क्या स्तुति करूँ? इस बातको उन्होंने चार बार दोहराया। तपस्वी शंकरके मन-ही-मन इस प्रकार संकल्प करनेपर उनके चार मुख और प्रकट हो गये तथा पहलेके मुखको लेकर पञ्चम संख्याकी ही पूर्ति हो गयी। उनका एक-एक मुख तीन-तीन नेत्रोंसे सुशोभित होने लगा; इसलिये वे पञ्चमुख और त्रिलोचन नामसे प्रसिद्ध हुए। शिवकी स्तुतिकी अपेक्षा मेरे रूपके दर्शनमें ही अधिक प्रेम है; इसलिये उनके नेत्र ही अधिक प्रकट हुए। उन ब्रह्मस्वरूप शिवके वे तीन नेत्र सत्त्व, रज तथा तम नामक तीन गुणरूप हैं; इसका कारण सुनो। भगवान् शिव सात्त्विक अंशवाली दृष्टिसे देखते हुए सात्त्विक जनोंकी, राजस दृष्टिसे राजसिक लोगोंकी तथा तामस दृष्टिसे तमोगुणी लोगोंकी रक्षा करते हैं। संहारकर्ता हरके ललाटवर्ती तामस नेत्रसे पीछे चलकर संहारकालमें क्रोधपूर्वक संवर्तक अग्निका आविर्भाव होता है। वे अग्निदेव करोड़ों ताड़ोंके बराबर ऊँचे, करोड़ों सूर्योंके समान प्रकाशमान तथा विशाल लपटोंसे युक्त हो अपनी जीभ लपलपाते हुए तीनों लोकोंको दग्ध कर देनेमें समर्थ हैं।

भगवान् शंकर सतीके दाह-संस्कारजनित भस्मको लेकर अपने अङ्गोंमें मलते हैं। इसलिये 'विभूतिधारी' कहे जाते हैं। सतीके प्रति प्रेमभावके कारण ही वे उनकी हड्डियोंकी माला और भस्म धारण करते हैं। यद्यपि शिव स्वात्माराम हैं, तथापि उन्होंने पूरे एक सालतक सतीके शवको लेकर चारों ओर घूमते हुए रोदन किया था। सतीका एक-एक अङ्ग जहाँ-जहाँ गिरा, वहाँ-वहाँ सिद्धपीठ हो गया, जो मन्त्रोंकी सिद्धि प्रदान करनेवाला है। राधिके! तदनन्तर अवशिष्ट शवको छातीसे लगाकर वे मूर्च्छित हो सिद्धिक्षेत्रमें गिर पड़े। तब मैंने महेश्वरके पास जा उन्हें गोदमें ले सचेत किया और शोकको हर लेनेवाले परम उत्तम दिव्य तत्त्वका उपदेश दिया। उस समय शिव संतुष्ट हो अपने लोकको पधारे और अपनी ही दूसरी मूर्ति कालके द्वारा उन्होंने अपनी प्रिया सतीको प्राप्त कर लिया। वे योगस्थ होनेके कारण दिगम्बर हैं। उन नित्य परमेश्वरमें इच्छाका सर्वथा अभाव है। उनके सिरपर जो जटाएँ हैं, वे तपस्या-कालकी हैं, जिन्हें वे आज भी विवेकपूर्वक धारण करते हैं। योगीको केशोंका संस्कार करने (बालोंको सँवारने) तथा शरीरको वेशभूषासे विभूषित करनेकी इच्छा नहीं होती। उसका चन्दन और कीचड़में तथा मिट्टीके ढेले और श्रेष्ठ मणिरत्नमें भी समभाव होता है। गरुड़से द्वेष रखनेवाले सर्प भगवान् शंकरकी शरणमें गये। उन्हीं शरणागतोंको वे कृपापूर्वक अपने शरीरमें धारण करते हैं। उनका वृषभरूप वाहन तो मैं स्वयं हूँ। दूसरा कोई भी उनका भार वहन करनेमें समर्थ नहीं है। पूर्वकालमें त्रिपुरके वधके समय मेरे कलांशसे उस वृषभकी उत्पत्ति हुई। पारिजात आदि पुष्प तथा चन्दन आदि सुगन्धित पदार्थ वे शिव मुझको अर्पित कर चुके हैं; इसलिये उनमें उनकी कभी प्रीति नहीं होती। धतूर, बिल्वपत्र, बिल्व-काष्ठका अनुलेपन, गन्धहीन पुष्प तथा व्याघ्रचर्म योगियोंको अभीष्ट हैं। इसलिये उनमें उनकी सदा प्रीति रहती है। दिव्य लोकमें, दिव्य शय्यामें और जनसमुदायमें उनका मन नहीं लगता है; इसलिये वे अत्यन्त एकान्त श्मशानमें रहकर दिन-रात मेरा ध्यान किया करते हैं। ब्रह्मासे लेकर कीटपर्यन्त प्रत्येक प्राणीको भगवान् शिव समान समझते हैं। केवल मेरे इस अनिर्वचनीय रूपमें ही उनका मन निरन्तर लगा

रहता है। ब्रह्माजीका पतन हो जानेपर भी शूलपाणि शंकरका क्षय नहीं होता। उनकी आयुका प्रमाण मैं भी नहीं जानता, फिर श्रुति क्या जानेगी? मृत्युञ्जय शिव ज्ञानस्वरूप हैं। वे मेरे तेजके समान शूल धारण करते हैं। मेरे बिना कोई भी शंकरको जीत नहीं सकता। शंकर मेरे परम आत्मा हैं। शिव मेरे लिये प्राणोंसे भी बढ़कर हैं। उन त्रिलोचनमें मेरा मन सदा लगा रहता है। भगवान् भवसे बढ़कर मेरा प्रिय और कोई नहीं है। राधे! मैं गोलोक और वैकुण्ठमें नहीं रहता। तुम्हारे वक्षमें भी वास नहीं करता। मैं तो सदाशिवके प्रेमपाशमें बँधकर उन्हींके हृदयमें निरन्तर निवास करता हूँ*।

शंकर अपने पाँच मुखोंद्वारा मीठी तानके साथ सदा मेरी गाथाका स्वरसिद्ध गान किया करते हैं। इसलिये मैं उनके समीप रहता हूँ। वे योगद्वारा भ्रूभङ्गकी लीलामात्रसे ब्रह्माण्ड-समुदायकी सृष्टि और संहार करनेमें समर्थ हैं। शंकरसे बढ़कर दूसरा कोई योगी नहीं है। जो अपने दिव्य ज्ञानसे भ्रूभङ्ग-लीलाद्वारा नष्ट हुए मृत्यु और काल आदिकी पुनः सृष्टि करनेमें समर्थ हैं; उन शंकरसे बढ़कर कोई ज्ञानी नहीं है। वे मेरी भक्ति, दास्यभाव, मुक्ति, समस्त सम्पत्ति तथा सम्पूर्ण सिद्धिको भी देनेमें समर्थ हैं; अतः शंकरसे बढ़कर कोई दाता नहीं है। वे पाँच मुखोंसे दिन-रात मेरे नाम और यशका गान करते हैं और निरन्तर मेरे स्वरूपका ध्यान करते रहते हैं; अतः शंकरसे बढ़कर कोई भक्त नहीं है। मैं, सुदर्शनचक्र तथा शिव—ये तीनों समान तेजस्वी हैं। सृष्टिकर्ता ब्रह्मा भी योग और तेजमें हम लोगोंकी समानता नहीं करते हैं। प्रिये! इस प्रकार मैंने शंकरके निर्मल यशका पूर्णतः वर्णन किया, तथापि उनका भी दर्प दलित हुआ। अब तुम और क्या सुनना चाहती हो? (अध्याय ३५-३६)

देवी सती और पार्वतीके गर्व-मोचनकी कथा, सतीका देहत्याग, पार्वतीका जन्म, गर्ववश उनके द्वारा आकाशवाणीकी अवहेलना, शंकरजीका आगमन, शैलराजद्वारा उनकी स्तुति तथा उस स्तुतिकी महिमा

तदनन्तर शिव-निर्माल्यका प्रसङ्ग सुनाकर श्रीकृष्णने कहा—देवि! जगद्गुरु शंकरके दर्प-भङ्गका वृत्तान्त तो तुमने सुन लिया। अब मुझसे दुर्गाके दर्पविमोचनकी कथा सुनो। सम्पूर्ण देवताओंके तेजसे प्रकट हो जगदम्बाने कामिनीका कमनीय एवं मनोहर रूप धारण किया तथा दानवेन्द्रोंका वध करके देवकुलकी रक्षा की। इसके बाद देवीने दक्षपत्नीके उदरसे जन्म लिया। दक्षकन्या सतीदेवीने पिनाकपाणि शिवको पतिरूपमें ग्रहण किया और बड़ी भक्तिके साथ वे निरन्तर स्वामीकी सेवामें लगी रहीं। दैवयोगसे देवताओंकी सभामें दक्षके साथ शिवकी अकारण शत्रुता हो गयी। दक्षने घर आकर एक यज्ञका आयोजन किया। उसमें उन्होंने समस्त देवताओंको आमन्त्रित किया; किंतु क्रोधके कारण शंकरको नहीं बुलाया। सब देवता अपनी पत्नियोंके साथ दक्षके घर आये; परंतु स्वाभिमानवश शंकर अपने गणोंके साथ वहाँ नहीं गये। उनके मनमें भी

*शंकरः परमात्मा मे प्राणेभ्योऽपि परः शिवः। त्र्यम्बके मन्मनः शश्वन्न प्रियो मे भवात्परः॥
न संवसामि गोलोके वैकुण्ठे तव वक्षसि। सदाशिवस्य हृदये निबद्धः प्रेमपाशतः॥
(३६। १०८, ११०)

दक्षके प्रति बड़ा रोष था। सतीके मनमें पिता आदिके प्रति मोह था; इसलिये उन्होंने यत्नपूर्वक पतिदेवको उस यज्ञमें चलनेके लिये समझाया। जब किसी तरह उन्हें वहाँ ले जानेमें वे समर्थ न हो सकीं, तब स्वयं चञ्चल हो उठीं और पतिकी आज्ञा प्राप्त किये बिना ही दर्पवश पिताके घर चली आयीं। पतिके शापसे वहाँ उनका दर्प-भङ्ग हुआ। पिताने उनसे बाततक नहीं की। वाणीमात्रसे भी पुत्रीका सत्कार नहीं किया। इतना ही नहीं, उन्हें वहाँ पतिकी निन्दा भी सुननी पड़ी। उसे सुनकर स्वाभिमानवश सतीने अपने शरीरको त्याग दिया।

प्रिये! इस प्रकार सतीके दर्प-भङ्गका वृत्तान्त कहा गया। अब तुम उनके जन्मान्तर तथा दर्प-दलनकी कथा सुनो। सतीने शीघ्र ही गिरिराज हिमालयकी पत्नी मेनाके गर्भसे जन्म ग्रहण किया। शिवने प्रेमवश सतीकी चिताका भस्म और उनकी अस्थियाँ ग्रहण कीं। अस्थियोंकी तो माला बनायी और भस्मसे अङ्गरागका काम लिया। वे प्रेमवश बार-बार सतीको याद करते और उनके विरहमें इधर-उधर घूमते रहते थे। उधर मेनाने देवीको जन्म दिया। उनकी आकृति बड़ी ही मनोहर थी। विधाताकी सृष्टिमें गिरिराजनन्दिनीके लिये कहीं कोई उपमा नहीं थी। गुणोंकी तो वे जननी ही हैं; अतः सभी और सब प्रकारके सद्गुणोंको धारण करती हैं। समस्त देवपत्नियाँ उनकी सोलहवीं कलाके बराबर भी नहीं हैं। जैसे शुक्लपक्षमें चन्द्रमाकी कला बढ़ती है, उसी तरह हिमालयके घरमें वे देवी दिनोंदिन बढ़ने लगीं। जब उन्होंने युवावस्थामें प्रवेश किया, तब उन जगदम्बाको सम्बोधित करके आकाशवाणीने कहा—'शिवे! तुम कठोर तपस्याद्वारा भगवान् शिवको पति-रूपमें प्राप्त करो; क्योंकि तपस्याके बिना ईश्वरको पाना अथवा उनके अंशसे गर्भ धारण करना असम्भव है।' यह आकाशवाणी सुनकर यौवनके गर्वसे भरी हुई पार्वती हँसकर चुप हो रहीं। वह मन-ही-मन सोचने लगीं कि 'जो मेरे दूसरे जन्मकी अस्थि और भस्मको धारण करते हैं; वे इस जन्ममें मुझे सयानी हुई देख कैसे नहीं ग्रहण करेंगे। जो चतुर होकर भी मेरे शोकसे समूचे ब्रह्माण्डमें भटकते फिरे; वे ही मुझ परम सुन्दरीको अपनी आँखोंसे देख लेनेपर क्यों नहीं ग्रहण करेंगे? जिन कृपानिधानने मेरे लिये दक्षयज्ञका विध्वंस कर डाला था; वे अपनी जन्म-जन्मकी पत्नी मुझ पार्वतीको क्यों नहीं ग्रहण करेंगे? पूर्वजन्मसे ही जो जिसकी पत्नी है और जिसका जो पति है, उन दोनोंमें यहाँ भेद कैसे हो सकता है? क्योंकि प्रारब्धको कोई पलट नहीं सकता।'

अत्यन्त अभिमानके कारण अपनेको समस्त रूप और गुणोंका आधार मानकर साध्वी शिवाने तप नहीं किया। उन्होंने शिवको ईश्वर नहीं समझा। 'समस्त सुन्दरियोंमें मुझसे बढ़कर सुन्दरी दूसरी कोई नहीं है'—यह धारणा हृदयमें लेकर शिवादेवी गर्ववश तपस्यामें नहीं प्रवृत्त हुईं। वे यही सोचती थीं कि पुरुष अपनी स्त्रियोंके रूप, यौवन तथा वेशभूषाका ग्राहक है। शिव मेरा नाम सुनते ही बिना तपस्याके मुझे ग्रहण कर लेंगे। मनमें यह विश्वास लेकर गिरिजा हिमवान्‌के घरमें रहती थीं और दिन-रात सखी-सहेलियोंके बीच खेल-कूदमें मतवाली रहा करती थीं। इसी समय शीघ्रतापूर्वक दूतने गिरिराजके भवनमें आकर दोनों हाथ जोड़ उनके सामने मधुर वाणीमें कहा।

दूत बोला—शैलराज! उठिये, उठिये। अक्षयवटके पास जाइये। वहाँ वृषभवाहन महादेवजी अपने गणोंके साथ पधारे हैं। महाराज! आप भक्तिभावसे मस्तक झुका उन्हें मधुपर्क आदि देकर उन इन्द्रियातीत देवेश्वरका पूजन कीजिये।

महादेवजी सिद्धिस्वरूप, सिद्धोंके स्वामी, योगीन्द्रोंके गुरुके भी गुरु, मृत्युञ्जय, कालके भी काल तथा सनातन ब्रह्मज्योति हैं। वे प्रभु परमात्मस्वरूप, सगुण तथा निर्गुण हैं। उन्होंने भक्तोंके ध्यानके लिये निर्मल महेश्वररूप धारण किया है।

दूतकी यह बात सुनकर हिमवान् प्रसन्नता-पूर्वक उठे और मधुपर्क आदि साथ ले भगवान् शंकरके समीप गये। दूतकी पूर्वोक्त बात सुनकर देवी शिवाके मुख और नेत्र प्रसन्नतासे खिल उठे। उन्होंने अपने मनमें यही माना कि महेश्वर मेरे ही लिये आये हैं। यही जानकर उन्होंने विविध दिव्य वस्त्रों तथा दिव्य रत्नालंकारों एवं मालाओंके द्वारा अपने सम्पूर्ण अङ्गोंको सुसज्जित किया। तत्पश्चात् अपने अनुपम रूपको देखकर पार्वतीने मन-ही-मन शंकरजीका ध्यान किया। विशेषतः स्वामीके चरणकमलोंका वे चिन्तन करने लगीं। उस समय शिवको छोड़कर पिता, माता, बन्धु-बान्धव, साध्वी वर्ग तथा सहोदर भाई किसीको भी उन्होंने अपने मनमें स्थान नहीं दिया।

इधर गिरिराज हिमालयने वहाँ जाकर भगवान् चन्द्रशेखरके दर्शन किये। वे गङ्गाजीके रमणीय तटसे ऊपरको आ रहे थे। उनके मुखपर मन्द मुस्कानकी प्रभा फैल रही थी। वे संस्कारयुक्त माला धारण किये मेरे नामका जप कर रहे थे। उनके सिरपर सुनहरी प्रभासे युक्त जटाराशि विराजमान थी। वे वृषभकी पीठपर बैठकर हाथमें त्रिशूल लिये सब प्रकारके आभूषणोंसे सुशोभित थे। सर्पका ही यज्ञोपवीत पहने सर्पमय आभूषणोंसे विभूषित थे। उनकी अङ्गकान्ति शुद्ध स्फटिकके समान उज्ज्वल थी, वे वस्त्रके स्थानमें व्याघ्रचर्म धारण किये, हड्डियोंकी माला पहने तथा अङ्गोंमें विभूति रमाये बड़ी शोभा पाते थे। दिगम्बर वेष, पाँच मुख और प्रत्येक मुखमें तीन-तीन नेत्र थे। उनके श्रीअङ्गोंसे करोड़ों सूर्योंके समान प्रकाश फैल रहा था। हिमवान्‌ने उनके चारों ओर एकादश रुद्रोंको देखा, जो ब्रह्मतेजसे प्रकाशमान थे। शिवके वामभागमें महाकाल और दाहिने भागमें नन्दिकेश्वर खड़े थे। भूत, प्रेत, पिशाच, कूष्माण्ड, ब्रह्मराक्षस, बेताल, क्षेत्रपाल, भयानक पराक्रमी भैरव, सनक, सनन्दन, सनत्कुमार, सनातन, जैगीषव्य, कात्यायन, दुर्वासा और अष्टावक्र आदि ऋषि—सब उनके सामने खड़े थे। हिमालयने इन सबको मस्तक झुकाकर भगवान् शिवको प्रणाम किया और पृथ्वीपर माथा टेक दण्डकी भाँति पड़कर दोनों हाथ जोड़ लिये। इसके बाद बड़ी भक्ति-भावनासे शिवके चरणकमल पकड़कर पर्वतराजने नमस्कार किया और नेत्रोंसे आँसू बहाते पुलकित-शरीर हो धर्मके दिये हुए स्तोत्रसे परमेश्वर शिवकी स्तुति आरम्भ की।

हिमालय बोले—भगवन्! आप ही सृष्टिकर्ता ब्रह्मा हैं। आप ही जगत्पालक विष्णु हैं। आप ही सबका संहार करनेवाले अनन्त हैं और आप ही कल्याणदाता शिव हैं। आप गुणातीत ईश्वर, सनातन ज्योतिःस्वरूप हैं। प्रकृति और उसके ईश्वर हैं। प्राकृत पदार्थरूप होते हुए भी प्रकृतिसे परे हैं। भक्तोंके ध्यान करनेके लिये आप अनेक रूप धारण करते हैं। जिन रूपोंमें जिसकी प्रीति है, उसके लिये आप वे ही रूप धारण करते हैं। आप ही सृष्टिके जन्मदाता सूर्य हैं। समस्त तेजोंके आधार हैं। आप ही शीतल किरणोंसे सदा शस्योंका पालन करनेवाले सोम हैं। आप ही वायु, वरुण और सर्वदाहक अग्नि हैं। आप ही देवराज इन्द्र, काल, मृत्यु तथा यम हैं। मृत्युञ्जय होनेके कारण मृत्युकी भी मृत्यु, कालके भी काल तथा यमके भी यम हैं। वेद, वेदकर्ता तथा वेद-वेदाङ्गोंके पारङ्गत विद्वान् भी आप ही

हैं। आप ही विद्वानोंके जनक, विद्वान् तथा विद्वानोंके गुरु हैं। आप ही मन्त्र, जप, तप और उनके फलदाता हैं। आप ही वाक् और आप ही वाणीकी अधिष्ठात्री देवी हैं। आप ही उसके स्रष्टा और गुरु हैं। अहो! सरस्वतीका बीज अद्भुत है। यहाँ कौन आपकी स्तुति कर सकता है?

ऐसा कहकर गिरिराज हिमालय उनके चरणकमलोंको धारण करके खड़े रहे। भगवान् शिव वृषभपर बैठे हुए शैलराजको प्रबोध देते रहे। जो मनुष्य तीनों संध्याओंके समय इस परम पुण्यमय स्तोत्रका पाठ करता है, वह भवसागरमें रहकर भी समस्त पापों तथा भयोंसे मुक्त हो जाता है। पुत्रहीन मनुष्य यदि एक मासतक इसका पाठ करे तो पुत्र पाता है। भार्याहीनको सुशीला तथा परम मनोहारिणी भार्या प्राप्त होती है। वह चिरकालसे खोयी हुई वस्तुको सहसा तथा अवश्य पा लेता है। राज्यभ्रष्ट पुरुष भगवान् शंकरके प्रसादसे पुनः राज्यको प्राप्त कर लेता है। कारागार, श्मशान और शत्रु-संकटमें पड़नेपर तथा अत्यन्त जलसे भरे गम्भीर जलाशयमें नाव टूट जानेपर, विष खा लेनेपर, महाभयंकर संग्रामके बीच फँस जानेपर तथा हिंसक जन्तुओंसे घिर जानेपर इस स्तुतिका पाठ करके मनुष्य भगवान् शंकरकी कृपासे समस्त भयोंसे मुक्त हो जाता है।

(अध्याय ३७-३८)

गिरिराज हिमवान्‌द्वारा गणोंसहित शिवका सत्कार, मेनाको शिवके अलौकिक सौन्दर्यके दर्शन, पार्वतीद्वारा शिवकी परिक्रमा, शिवका उन्हें आशीर्वाद, शिवाद्वारा शिवका षोडशोपचार-पूजन, शंकरद्वारा कामदेवका दहन तथा पार्वतीको तपस्याद्वारा शिवकी प्राप्ति

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—प्रिये! इस प्रकार स्तुति करके गिरिराज हिमवान् नगरसे दूर निवास करनेवाले भगवान् शंकरसे कुछ ही दूरीपर उनकी आज्ञा ले स्वयं भी ठहर गये। उन्होंने भक्तिपूर्वक भगवान्‌को मधुपर्क आदि दिया और मुनियों तथा शिवके पार्षदोंका पूजन किया। उस समय मेना स्त्रियोंके साथ वहाँ आयी। उसने वटके नीचे आसन लगाये चन्द्रशेखर शिवको देखा। उनके प्रसन्न मुखपर मन्द हास्यकी छटा छा रही थी। वे व्याघ्रचर्म धारण किये मुनि-मण्डलीके मध्य भागमें ब्रह्मतेजसे प्रकाशित हो रहे थे, मानो आकाशमें तारिकाओंके बीच द्विजराज चन्द्रमा शोभा पा रहे हों। करोड़ों कन्दर्पोंके समान उनका मनोहर रूप अत्यन्त आह्लाद प्रदान करनेवाला था। वे वृद्धावस्था छोड़कर नूतन यौवन धारण करते थे और अत्यन्त सुन्दर रमणीय रूप हो युवतियोंके चित्त चुरा रहे थे। वे कामातुरा कामिनियोंको कामदेवके समान जान पड़ते थे। सतियोंको औरस पुत्रके समान प्रतीत होते थे। वैष्णवोंको महाविष्णु तथा शैवोंको सदाशिवके रूपमें दृष्टिगोचर होते थे। शक्तिके उपासकोंको शक्तिस्वरूप, सूर्यभक्तोंको सूर्यरूप, दुष्टोंको कालरूप तथा श्रेष्ठ पुरुषोंको परिपालकके रूपमें दिखायी देते थे। कालको कालके समान, मृत्युको मृत्यु एवं अत्यन्त भयानक जान पड़ते थे। स्त्रियोंके लिये उनका व्याघ्रचर्म मनोहर वस्त्र बन गया। भस्म चन्दन हो गया। सर्प सुन्दर मालाओंके रूपमें परिणत हो गये। कण्ठमें कालकूटकी प्रभा कस्तूरीके समान प्रतीत हुई। जटा सुन्दर सँवारी हुई चूड़ा

जान पड़ी। चन्द्रमा भाल-देशमें चन्दन जान पड़े। मस्तकपर गङ्गाकी मनोहारिणी धारा परम सुन्दर मालती मालाके रूपमें परिणत हो गयी। अस्थियोंकी माला रत्नमाला बन गयी। धतूर मनोहर चम्पाके रूपमें बदल गया। पाँच मुखके स्थानमें उन्हें एक ही मुख दिखायी देने लगा, जो दो नेत्र-कमलोंसे सुशोभित था। मुख शरत्पूर्णिमाके चन्द्रमाकी आभाको प्रतिहत करके अत्यन्त देदीप्यमान हो रहा था। बन्धुजीव (दुपहरिया)-की लालीको तिरस्कृत करनेवाले उनके ओष्ठ और अधरसे मुखकी मनोहरता बढ़ गयी थी। श्वेत चन्द्रमा ही मानो वृषभराज नन्दी बन गये थे और भूत आदि नर्तकोंका काम करते थे। महेश्वरके स्वरूपमें तत्काल सब कुछ बदल गया। शिवका ऐसा रूप देख मेना बहुत संतुष्ट हुई। कितनी रमणियाँ भगवान् शंकरके रूप-सौन्दर्यको देखकर अत्यन्त मुग्ध हो गयीं और नाना प्रकारकी अभिलाषाएँ करने लगीं। अहो! पार्वती बड़ी पुण्यवती है। भारतवर्षमें इसीका जन्म स्पृहणीय है; क्योंकि ये शिव इसके स्वामी होनेवाले हैं।

इस प्रकारकी बातें कितनी ही स्त्रियाँ कर रही थीं। शिवका दर्शन करके मेना सानन्द अपने घरको लौट गयीं। शिवका पूजन करके उनके चरणोंमें मस्तक नवाकर शैलराज भी अपने घरको गये। गिरिराजने मेनाके साथ एकान्तमें सलाह करके पार्वतीको उसकी मङ्गल-कामनासे शिवके समीप भेजा। पार्वतीका हृदय भगवान् शंकरमें अनुरक्त था। सखियोंके साथ मनोहर वेष धारण करके हर्षपूर्वक वे शिवके निकट गयीं। वहाँ प्रसन्नमुख और नेत्रवाले शान्तस्वरूप शिवका दर्शन करके शिवाने सात बार परिक्रमा की और मुस्कराकर उन्हें प्रणाम किया। उस समय भगवान् शिवने आशीर्वाद देते हुए कहा—'सुन्दरि! तुम्हें अनन्य प्रेमी, गुणवान्, अमर, ज्ञानिशिरोमणि और सुन्दर पति प्राप्त हो। शुभे! तुम्हारा पतिविषयक सौभाग्य सतत बना रहे। साध्वि! तुम्हारा पुत्र नारायणके समान गुणवान् होगा। जगदम्बिके! तीनों लोकोंमें तुम्हारी उत्कृष्ट पूजा होगी। तुम समस्त ब्रह्माण्डोंमें सबसे श्रेष्ठ होओ। सुन्दरि! तुमने सात बार परिक्रमा करके भक्तिभावसे मुझे नमस्कार किया है। अतः मैं सात जन्मोंके लिये संतुष्ट हो गया। तुम उसका फल पाओ। तीर्थ, प्रियतम पति, इष्टदेवता, गुरुमन्त्र तथा औषधमें जिनकी जैसी आस्था होती है, उन्हें वैसी ही सिद्धि प्राप्त होती है।'

ऐसा कहकर योगीश्वर शंकरने व्याघ्रचर्मपर योगासन लगाया और मुझ परब्रह्मरूप ज्योतिका तत्काल ध्यान आरम्भ कर दिया। तब देवी पार्वतीने उनके दोनों चरण पखारकर चरणामृत-पान किया और अग्निशुद्ध वस्त्रसे भक्तिपूर्वक उन चरणोंका मार्जन किया। विश्वकर्माद्वारा निर्मित रमणीय रत्नसिंहासन उनकी सेवामें अर्पित किया। फिर कांस्यपात्रमें रखे हुए अपूर्व नैवेद्यका भोग लगाया। तत्पश्चात् उनके चरणोंमें गङ्गाजलसे युक्त अर्घ्य दिया। इसके बाद मनोहर सुगन्धयुक्त चन्दन तथा कस्तूरी और कुंकुम भी सेवामें प्रस्तुत किये। तदनन्तर हालाहल विषके चिह्नसे सुन्दर प्रतीत होनेवाले कण्ठमें मालतीकी माला पहनायी। भक्ति-भावसे पूजा की। शिवकी प्रसन्नताके लिये उनपर पुष्पोंकी वृष्टि की। सुवर्णपात्रमें अमृत और मधुर मधु दिया। सैकड़ों रत्नमय दीप जलाये। सब ओर उत्तम धूपकी सुगन्ध फैलायी। त्रिभुवन-दुर्लभ वस्त्र, सोनेके तारोंका यज्ञोपवीत तथा पीनेके लिये सुगन्धित एवं शीतल जल पार्वतीने अपने प्रियतमकी सेवामें प्रस्तुत किये। फिर रत्नसारेन्द्रनिर्मित अतिशय सुन्दर रमणीय भूषण, सुवर्णमढ़ी सींगवाली दुर्लभ कामधेनु, स्नानोपयोगी द्रव्य, तीर्थजल तथा मनोहर ताम्बूल भी क्रमशः अर्पित किये। इस

प्रकार षोडशोपचार चढ़ाकर पार्वतीने बारंबार प्रणाम किया। यह उनका नित्यका नियम बन गया। वे प्रतिदिन भक्तिभावसे शिवकी पूजा करके पिताके घर लौट जाया करती थीं।

अप्सराओंके मुखसे इन्द्रने यह सुना कि भगवान् महेश्वर पार्वतीदेवीके प्रति अनुरक्त हैं। यह समाचार सुनकर इन्द्र हर्षसे नाचने लगे। उन्होंने बड़ी उतावलीके साथ दूत भेजकर कामदेवको बुलवाया। इन्द्रकी आज्ञासे कामदेव अमरावतीपुरीमें गये। तब इन्द्रने उन्हें शीघ्र ही उस स्थानपर भेजा, जहाँ शिवा और शिव विद्यमान थे। पञ्चबाण कामने अपने पाँचों बाणोंको साथ ले उस स्थानको प्रस्थान किया, जहाँ शक्तिसहित शिव विराजमान थे। वहाँ पहुँचकर मदनने देखा, भगवान् शिव शिवाके साथ विद्यमान हैं। उनके मुख और नेत्र प्रसन्न दिखायी देते हैं। वे त्रिभुवनकान्त एवं शान्त हैं। उन्हें देखकर कामदेव बाणसहित धनुष हाथमें लिये आकाशमें खड़ा हो गया। उसने बड़े हर्षके साथ अपने अमोघ एवं अनिवार्य अस्त्रका शंकरपर प्रयोग किया; परंतु वह अमोघ अस्त्र भी परमात्मा शंकरपर व्यर्थ हो गया। जैसे आकाश निर्लेप होता है, उसी तरह निर्लिप्त परमात्मा शिवपर जब वह शस्त्र विफल हो गया, तब कामदेवको बड़ा भय हुआ। वह सामने खड़ा हो भगवान् मृत्युञ्जयकी ओर देखता हुआ काँपने लगा। भयसे विह्वल हुए कामने इन्द्र आदि देवताओंका स्मरण किया। तब सब देवता वहाँ आये और शंकरके कोपसे डरकर काँपने लगे। उन्होंने स्तोत्र पढ़कर देवाधिदेव शंकरका स्तवन किया। इतनेमें ही शिवके ललाटवर्ती नेत्रसे कोपाग्नि प्रकट हुई। देवतालोग स्तुति कर ही रहे थे कि शम्भुसे उत्पन्न हुई वह आग ऊँची-ऊँची लपटें उठाती हुई प्रज्वलित हो उठी। वह प्रलयकालिक अग्निकी ज्वालाके समान जान पड़ती थी। आकाशमें ऊपर उठकर चक्कर काटती हुई वह आग पृथ्वीपर उतर आयी और चारों ओर चक्कर देकर कामदेवपर टूट पड़ी। भगवान् शंकरके कोपसे कामदेव एक ही क्षणमें भस्म हो गये। यह देख सब देवता विषादमें डूब गये और पार्वतीने भी सिर नीचा कर लिया। तदनन्तर रति भगवान् शिवके सामने बहुत विलाप करने लगी। भयसे काँपते हुए समस्त देवताओंने शिवका स्तवन किया। इसके बाद वे बार-बार रोते हुए रतिसे बोले—'माँ! पतिके शरीरका थोड़ा-सा भस्म लेकर उसकी रक्षा करो और भय छोड़ो। हम लोग उन्हें जीवित करायेंगे। तुम पुनः अपने प्रियतमको प्राप्त करोगी; परंतु जब भगवान् शंकरका क्रोध दूर हो जायगा और उनकी प्रसन्नताका समय होगा, तभी यह कार्य सम्भव हो सकेगा।'

रतिका विलाप देखकर पार्वती मूर्च्छित हो गयीं और उन अतीन्द्रिय गुणातीत चन्द्रशेखरकी स्तुति करने लगीं। तब भगवान् शिव रोती हुई पार्वतीको वहीं छोड़कर अपने स्थानको चले गये। फिर तो उसी क्षण पार्वतीका सारा अभिमान चूर हो गया। गिरिराजनन्दिनीने अपने रूप और यौवनका गर्व त्याग दिया। अब उन्हें सखियोंको अपना मुँह दिखानेमें भी लज्जाका अनुभव होने लगा। सब देवता रतिको आश्वासन दे रुद्रदेवको दण्डवत् प्रणाम करनेके पश्चात् अपने स्थानको चले गये। उस समय उनका मन शोकसे उद्विग्न हो रहा था। राधिके! कामपत्नी रति रोषसे लाल आँखोंवाले रुद्रदेवका भयसे स्तवन करके शोकसे रोती हुई अपने घरको चली गयी। परंतु पार्वती लज्जावश पिताके घर नहीं गयी। वह सखियोंके मना करनेपर भी तपस्याके लिये वनमें चली गयी। तब शोकसे विह्वल हुई सखियोंने भी उन्हींका अनुगमन किया। माताओंके रोकनेपर भी वे सब-की-सब गङ्गातटवर्ती वनकी ओर चली

गयीं। आगे चलकर पार्वतीने दीर्घकालतक तपस्या करके भगवान् त्रिलोचनको पतिरूपमें प्राप्त किया। रतिने भी शंकरके वरसे यथासमय कामदेवको प्राप्त किया। राधे! इस प्रकार पार्वतीके दर्पमोचनसे सम्बन्ध रखनेवाली सारी बातें कही गयीं। पार्वतीका यह चरित्र गूढ़ है। बताओ, तुम और क्या सुनना चाहती हो?

(अध्याय ३९)

पार्वतीकी तपस्या, उनके तपके प्रभावसे अग्निका शीतल होना, ब्राह्मण-बालकका रूप धारण करके आये हुए शिवके साथ उनकी बातचीत, पार्वतीका घरको लौटना और माता-पिता आदिके द्वारा उनका सत्कार, भिक्षुवेषधारी शंकरका आगमन, शैलराजको उनके विविध रूपोंके दर्शन, उनकी शिव-भक्तिसे देवताओंको चिन्ता, उनका बृहस्पतिजीको शिव-निन्दाके लिये उकसाना तथा बृहस्पतिका देवताओंको शिव-निन्दाके दोष बताकर तपस्याके लिये जाना

श्रीराधिका बोलीं—प्रभो! यह बहुत ही विचित्र और अपूर्व चरित्र सुननेको मिला है, जो कानोंमें अमृतके समान मधुर, सुन्दर, निगूढ़ एवं ज्ञानका कारण है। भगवन्! यह न तो अधिक संक्षेपसे सुना गया है और न विस्तारसे ही। परंतु अब विस्तारसे ही सुननेकी इच्छा है; अतः आप विस्तारपूर्वक इस विषयका वर्णन कीजिये। पार्वतीने स्वयं कौन-कौन-सा कठोर तप किया था? और किस-किस वरको पाकर किस तरह महेश्वरको प्राप्त किया तथा रतिने फिर किस प्रकार कामदेवको जिलाया? प्यारे कृष्ण! आप पार्वती और शिवके विवाहका वर्णन कीजिये।

श्रीकृष्णने कहा—प्राणाधिके राधिके! प्राणवल्लभे! सुनो। प्राणेश्वरि! तुम प्राणोंकी अधिष्ठात्री देवी हो। प्राणाधारे! मनोहरे! जब रुद्रदेव वटवृक्षके नीचेसे चले गये, तब पार्वती माता-पिताके बार-बार रोकनेपर भी तपस्याके लिये चली गयी। गङ्गाके तटपर जा तीनों काल स्नान करके वह मेरे दिये हुए मन्त्रका प्रसन्नतापूर्वक जप करने लगी। उस जगदम्बाने पूरे एक वर्षतक निराहार रहकर भक्ति-भावसे तपस्या की। तदनन्तर और भी कठोर तप आरम्भ किया। ग्रीष्म-ऋतुमें अपने चारों ओर आग प्रज्वलित करके वह दिन-रात उसे जलाये रखती और उसके बीचमें बैठकर निरन्तर मन्त्र जपती रहती थी। वर्षा-ऋतु आनेपर श्मशानभूमिमें शिवा सदा योगासन लगाकर बैठती और शिलाकी ओर देखती हुई जलकी धारासे भीगती रहती थी। शीतकाल आनेपर वह सदा जलके भीतर प्रवेश कर जाती तथा शरत्की भयंकर बर्फवाली रातोंमें भी निराहार रहकर भक्तिपूर्वक तपस्या करती थी।

इस प्रकार अनेक वर्षोंतक कठोर तप करके भी जब सती-साध्वी पार्वती शंकरको न पा सकी, तब वह शोकसे संतप्त हो अग्निकुण्डका निर्माण करके उसमें प्रवेश करनेको उद्यत हो गयी। तपस्यासे अत्यन्त कृशकाय हुई सती शैल-पुत्रीको अग्निकुण्डमें प्रवेश करनेको उद्यत देख कृपासिन्धु शिव कृपा करके स्वयं उसके पास गये। अत्यन्त नाटे कदके बालक ब्राह्मणका रूप धारण करके अपने तेजसे प्रकाशित होते हुए भगवान् शिव

मन-ही-मन बड़े हर्षका अनुभव कर रहे थे। उनके सिरपर जटा थी। उन्होंने दण्ड और छत्र भी ले रखे थे। श्वेत वस्त्र, श्वेत यज्ञोपवीत, श्वेत कमलके बीजोंकी माला एवं श्वेत तिलक धारण किये वे मन्द-मन्द मुस्करा रहे थे। निर्जन स्थानमें उस बालकको देखकर पार्वतीके हृदयमें स्नेह उमड़ आया। उसके तेजसे अत्यन्त आच्छादित हो उन्होंने स्वयं तप छोड़ दिया और सामने खड़े हुए शिशुसे पूछा—'तुम कौन हो?' शिवा बड़े आदरके साथ उसे हृदयसे लगा लेना चाहती थी। शैलकुमारीका प्रश्न सुनकर परमेश्वर शिव हँसे और ईश्वरीके कानोंमें अमृत उँड़ेलते हुए-से मधुर वाणीमें बोले।

शंकरने कहा—मैं इच्छानुसार विचरनेवाला ब्रह्मचारी एवं तपस्वी ब्राह्मण-बालक हूँ; परंतु सुन्दरि! तुम कौन हो, जो परम कान्तिमती होकर भी इस दुर्गम वनमें तप कर रही हो? बताओ, किसके कुलमें तुम्हारा जन्म हुआ है? तुम किसकी कन्या हो और तुम्हारा नाम क्या है? तुम तो तपस्याका फल देनेवाली हो; फिर स्वयं किसलिये तपस्या करती हो? कमललोचने! तुम तपस्याकी मूर्तिमती राशि हो। अवश्य ही तुम्हारा यह तप लोकशिक्षाके लिये है। तुम मूलप्रकृति ईश्वरी, लक्ष्मी, सावित्री और सरस्वती—इन देवियोंमेंसे कौन हो? इसका अनुमान करनेमें मैं असमर्थ हूँ। कल्याणि! तुम जो भी हो, मुझपर प्रसन्न हो जाओ; क्योंकि तुम्हारे प्रसन्न होनेपर परमेश्वर प्रसन्न होंगे। पतिव्रता स्त्रीके संतुष्ट होनेपर स्वयं नारायण संतुष्ट होते हैं और नारायणदेवके संतुष्ट होनेपर सदा तीनों लोक संतोषका अनुभव करते हैं; ठीक उसी तरह जैसे वृक्षकी जड़ सींच देनेपर उसकी शाखाएँ स्वतः सिंच जाती हैं।

शिशुकी यह बात सुनकर परमेश्वरी शिवा हँसने लगी और कानोंमें अमृतकी वर्षा करती हुई मनोहर वाणी बोली।

पार्वतीने कहा—ब्रह्मन्! न तो मैं वेदजननी सावित्री हूँ, न लक्ष्मी हूँ और न वाणीकी अधिष्ठात्री देवी सरस्वती ही हूँ। मेरा जन्म भारतवर्षमें हुआ है। मैं इस समय गिरिराज हिमवान्‌की पुत्री हूँ। इससे पहले मेरा जन्म

प्रजापति दक्षके घरमें हुआ था। उस समय मैं शंकर-पत्नी सतीके नामसे प्रसिद्ध थी। एक बार पिताने पतिकी निन्दा की। इसलिये मैंने योगके द्वारा अपने शरीरको त्याग दिया। इस जन्ममें भी पुण्यके प्रभावसे भगवान् शंकर मुझे मिल गये थे; परंतु दुर्भाग्यवश वे मुझे छोड़कर और कामदेवको भस्म करके चले गये। शंकरजीके चले जानेपर मैं मानसिक संताप और लज्जासे विवश हो पिताके घरसे तपस्याके लिये निकल पड़ी। अब मेरा मन इस गङ्गाजीके तटपर ही लगता है। दीर्घकालतक कठोर तप करके भी मैं अपने प्राणवल्लभको न पा सकी। इसलिये अग्निमें प्रवेश करने जा रही थी। किंतु तुम्हें देखकर क्षणभरके लिये रुक गयी। अब तुम जाओ। मैं प्रलयाग्निकी शिखाके समान प्रज्वलित अग्निमें प्रवेश करूँगी। ब्रह्मन्! महादेवजीकी प्राप्तिका संकल्प मनमें

लेकर शरीरका त्याग करूँगी और जहाँ-जहाँ भी जन्म लूँगी, परमेश्वर शिवको ही पतिके रूपमें प्राप्त करूँगी। प्रत्येक जन्ममें भगवान् शिव ही मेरे प्राणोंसे भी बढ़कर प्रियतम पति होंगे। सब स्त्रियाँ अपने प्रियतमको ही पानेके लिये मनोवाञ्छित जन्म ग्रहण करती हैं। उन सबका वह जन्म अपने अभीष्ट पतिकी उपलब्धिके लिये ही होता है, ऐसा श्रुतिमें सुना गया है। पूर्व-जन्मका जो पति है, वही स्त्रियोंके प्रत्येक जन्ममें पति होता है। जो स्त्री जिनकी पत्नी नियत है, वही उन्हें प्रत्येक जन्ममें प्राप्त होती है; अतः इस जन्ममें घोरतर तपके पश्चात् भी पतिको न पाकर मैं यहाँ इस शरीरको अग्निकुण्डमें होम दूँगी। मेरा यह कार्य पतिकी कामनाको लेकर होगा; इसलिये परलोकमें मैं उन्हें अवश्य प्राप्त करूँगी।

यों कहकर पार्वती वहाँ ब्राह्मणके बार-बार मना करनेपर भी उसके सामने ही अग्निकुण्डमें समा गयी। परमेश्वरी राधे! पार्वतीके अग्नि-प्रवेश करते ही उसकी तपस्याके प्रभावसे वह अग्नि तत्काल चन्दनके समान शीतल हो गयी। वृन्दावनविनोदिनि! एक क्षणतक अग्निकुण्डमें रहकर जब शिवा ऊपर आने लगी, तब शिवने पुनः सहसा उससे पूछा।

श्रीमहादेवजी बोले—भद्रे! तुम्हारी तपस्या क्या है? (सफल है या असफल?) यह कुछ भी मेरी समझमें नहीं आया। जिस तपके प्रभावसे अग्निने तुम्हारा शरीर नहीं जलाया, उसीसे तुम्हारी मनोवाञ्छित कामना पूर्ण नहीं हुई; यह आश्चर्यकी बात है। तुम कल्याणस्वरूप शिवको पति बनाना चाहती हो; परंतु वे तो निराकार हैं! निराकारको पति बनाकर तुम्हारा कौन-सा मनोरथ सिद्ध होगा? शुचिस्मिते! यदि संहारकर्ता हरको स्वामी बनानेकी इच्छा है तो यह भी ठीक नहीं है; क्योंकि कौन ऐसी स्त्री है जो सर्वसंहारकारीको अपना कान्त (प्राणवल्लभ) बनानेकी इच्छा करेगी? देवि! यदि उन्हें अपना स्वामी बनाकर तुम मोक्ष लेना चाहती हो तो इसके लिये तुम्हारी तपस्या व्यर्थ है; क्योंकि सबको मुक्ति प्रदान करनेवाली तो तुम स्वयं ही हो! 'शिव' का अर्थ है—मङ्गल (कल्याण), मोक्ष और संहारकर्ता। इसके अतिरिक्त अन्य अर्थमें इस शब्दका प्रयोग नहीं देखा जाता। शिव शब्दका दूसरा कोई अर्थ वेदमें नहीं निरूपित हुआ है। सुन्दरि! यदि तुम संहारकर्ता शिवको चाहती हो, तब तो सर्वलोकभयंकर रुद्रको अपने प्रति अनुरक्त पाओगी। न तो तुम्हारा मोक्ष होगा और न अपने अभीष्ट देवताकी सेवा ही उपलब्ध होगी। भगवान् श्रीहरिका स्मरण अमोघ है, वह सदा सब प्रकारसे सम्पूर्ण मङ्गलोंका दाता है। अब तुम शीघ्र ही अपने पिताके घर जाओ। वहाँ मेरे आशीर्वादसे और अपने तपके फलसे तुम्हें परम दुर्लभ शिवके दर्शन प्राप्त होंगे।

ऐसा कहकर ब्राह्मण वहीं अन्तर्धान हो गया। दुर्गा 'महादेव! महादेव!' का उच्चारण करती हुई पिताके घरकी ओर चल दी। पार्वतीका आगमन सुनकर मेना और हिमालय दिव्य यानको आगे करके हर्षविह्वल हो अगवानीके लिये चले। सारा नगर सजाया गया। मार्गोंपर चन्दन, कस्तूरी आदिका छिड़काव हुआ। बाजे बजने लगे। शङ्खध्वनि गूँज उठी। सड़कोंपर सिन्दूर तथा चन्दनके जलसे कीच मच गयी। नगरमें प्रवेश करके दुर्गाने माता-पिताके दर्शन किये। वे दोनों अत्यन्त प्रसन्न हो दौड़ते हुए सामने आये। उनके नेत्रोंमें हर्षके आँसू भरे थे और अङ्ग-अङ्ग पुलकित हो रहा था। देवी शिवाके मुखपर भी प्रसन्नता थी। उसने सखियोंसहित निकट जा माता-पिताको प्रणाम किया। तब उन दोनोंने आशीर्वाद देकर पुत्रीको हृदयसे लगा लिया और 'ओ मेरी बच्ची!' कहकर प्रेमसे विह्वल हो रोने लगे। उस समय दुर्गाको रथपर बिठाकर वे दोनों अपने घर गये। स्त्रियोंने निर्मञ्छन किया और

ब्राह्मणोंने आशीर्वाद दिया। पर्वतराजने ब्राह्मणों और बन्दीजनोंको धन दिया। उनसे वेद-पाठ और मङ्गल-पाठ करवाये। इस प्रकार वे दोनों अपनी पुत्रीके साथ सुखसे घरमें रहने लगे। शिवाके आ जानेसे उनके मनमें बड़ा हर्ष था।

एक दिन हिमवान् तप करनेके लिये गङ्गाजीके तटपर गये। मेना अपनी पुत्रीके साथ प्रसन्नतापूर्वक घरके आँगनमें बैठी थीं। इसी समय एक नाचने-गानेवाला भिक्षुक सहसा मेनाके पास आया। उसके बायें हाथमें सींगका बाजा और दायें हाथमें डमरू था। बहुत ही वृद्ध और जरासे अत्यन्त जर्जर हो चुका था। उसने सारे शरीरमें विभूति लगा रखी थी। पीठपर गुदड़ी लिये और लाल वस्त्र पहने वह भिक्षुक बड़ा मनोहर जान पड़ता था। उसका कण्ठ बड़ा ही मधुर था। वह मनोहर नृत्य करते हुए मेरे गुणोंका गान करने लगा। कभी शृङ्ग बजाता और कभी डमरू। उसके बाजेकी आवाज सुनकर बहुत-से नागरिक हर्षविह्वल हो वहाँ आ गये। दर्शकोंमें बालक, बालिका, वृद्ध, युवक, युवतियाँ तथा वृद्धाएँ भी थीं। मधुर तान और स्वरसे युक्त उस सुन्दर गीतको सुनकर सहसा सब लोग मोहित एवं मूर्च्छित हो गये। दुर्गाको भी मूर्च्छा आ गयी। उसने अपने हृदयमें भगवान् शंकरको देखा। वे त्रिशूल, पट्टिश और व्याघ्रचर्म धारण किये सम्पूर्ण अङ्गोंमें विभूतिसे विभूषित थे। बड़ा ही रम्य रूप था। गलेमें अत्यन्त निर्मल अस्थियोंकी माला शोभा देती थी। प्रसन्नमुखपर मन्द हास्यकी छटा छा रही थी। उनकी आकृतिसे आन्तरिक उल्लास सूचित होता था। पाँच मुख और प्रत्येक मुखमें तीन-तीन नेत्र शोभा पाते थे। हाथमें माला, कंधेपर नागोंका यज्ञोपवीत और मस्तकपर चन्द्राकार मुकुट—बड़ी सुन्दर झाँकी थी। वे पार्वतीसे कह रहे थे कि वर माँगो। हृदयस्थित हरको देखकर पार्वतीने मन-ही-मन उन्हें प्रणाम किया और वर माँगा, 'आप हमारे पति हो जाइये।' 'एवमस्तु' कहकर शिव अन्तर्धान हो गये। हृदयमें शिवको न देखकर दुर्गाकी मूर्च्छा भङ्ग हुई। उसने आँख खोलकर देखा, सामने वही भिक्षुक गा रहा है।

भिक्षुके नृत्य और संगीतसे संतुष्ट हो मेना सोनेके पात्रमें बहुत-से रत्न ले उसे देनेके लिये गयीं; परंतु भिक्षुने भिक्षामें दुर्गाको ही माँगा; दूसरी कोई वस्तु नहीं ली। वह कौतुकवश पुनः नृत्य करनेको उद्यत हुआ; परंतु मेना उसकी बात सुनकर कुपित हो उठी थीं। उन्हें आश्चर्य भी हुआ था। उन्होंने भिक्षुकको बहुत डाँटा तथा उसे घरसे बाहर निकाल देनेकी आज्ञा दी। इसी बीचमें अपना तप पूरा करके हिमवान् घरपर आये। वहाँ उन्हें आँगनमें खड़ा हुआ एक भिक्षु दिखायी दिया, जो बड़ा मनोहर था। उसके विषयमें मेनाके मुखसे सब बातें सुनकर हिमवान् हँसे और रुष्ट भी हुए। उन्होंने अपने सेवकको आज्ञा दी—'इस भिक्षुकको बाहर निकाल दो।' परंतु वह कोई साधारण भिक्षुक नहीं था। आकाशकी भाँति उसका स्पर्श करना भी कठिन था। वह अपने तेजसे प्रज्वलित हो रहा था। उसे कोई बाहर न कर सका। उसके निकट जानेकी भी किसीमें क्षमता नहीं थी। हिमवान्ने एक ही क्षणमें देखा—उस भिक्षुकके सुन्दर चार भुजाएँ हैं; मस्तकपर किरीट, कानोंमें कुण्डल तथा शरीरपर पीताम्बर शोभा पाता है; श्याम-सुन्दर रुचिर वेष मनको मोहे लेता है; मुखपर मन्द मुस्कानकी प्रभा फैल रही है। सम्पूर्ण अङ्ग चन्दनसे चर्चित हैं तथा वे श्रीहरि (रूपधारी शिव) भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये कातर जान पड़ते हैं।

हिमवान् श्रीहरिके उपासक थे। उन्होंने पूजाकालमें भगवान् गदाधरको जो-जो फूल चढ़ाये थे, वे सब भिक्षुकके अङ्गमें और

मस्तकपर देखे। उनके द्वारा जो धूप-दीप दिये गये थे, अथवा जो मनोरम नैवेद्य निवेदित हुआ था, वह भी भिक्षुकके सामने प्रस्तुत दिखायी दिया। दूसरे ही क्षणमें वह भिक्षुक द्विभुज-रूपमें दृष्टिगोचर हुआ। अब उसके हाथमें विनोदकी साधनभूता मुरली थी। गोपवेष, किशोर-अवस्था, श्यामसुन्दर वर्ण, मुस्कराता हुआ मुख, मस्तकपर मोरपंखका मुकुट, श्रीअङ्गोंमें रत्नमय आभूषण, चन्दनके अङ्गराग तथा गलेमें वनमाला—मानो साक्षात् श्रीकृष्ण दर्शन दे रहे हों। फिर क्षणभरमें वह उज्ज्वल-कान्ति चन्द्रशेखर शिवके रूपमें दिखायी दिया। उसके हाथोंमें त्रिशूल और पट्टिश शोभा पा रहे थे। वस्त्रकी जगह सुन्दर बाघम्बर था। सम्पूर्ण अङ्गोंमें विभूति लगी थी। धवल वर्ण था। गलेमें अस्थियोंकी माला थी, जो आभूषणका काम देती थी। कंधेपर सर्पमय यज्ञोपवीत तथा सिरपर तपाये हुए सुवर्णकी-सी कान्तिवाली जटा थी। हाथोंमें शृङ्ग और डमरू थे। सुप्रशस्त एवं मनोहर रूप चित्तको आकृष्ट कर लेता था। भगवान् शिव श्वेत कमलोंके बीजकी मालासे हरिनामका जप करते थे। उनके प्रसन्न मुखपर मन्दहासकी छटा छा रही थी। वे भक्तोंपर अनुग्रहके लिये कातर दिखायी देते थे। अपने तेजसे प्रज्वलित हो रहे थे। उनके पाँच मुख और प्रत्येक मुखमें तीन-तीन नेत्र थे। फिर दूसरे ही क्षणमें वह भिक्षुक 'जगत्स्रष्टा' चतुर्मुख ब्रह्माके रूपमें दृष्टिगोचर हुआ। ब्रह्माजी स्फटिककी माला लेकर हरिनामका जप कर रहे थे।

हिमवान्‌ने देखा, क्षणभरमें वह त्रिगुणात्मक सूर्यस्वरूप हो गया। अत्यन्त दुःसह प्रकाशसे युक्त सूर्यदेव ब्रह्मतेजसे जाज्वल्यमान थे। फिर एक क्षणतक वह अत्यन्त तेजसे प्रज्वलित अग्निके रूपमें विद्यमान रहा। तत्पश्चात् क्षणभर आह्लादजनक चन्द्रमाके रूपमें शोभा पाता रहा। तदनन्तर एक ही क्षणमें तेजःस्वरूप, निराकार, निरञ्जन, निर्लिप्त, निरीह परमात्मस्वरूपमें स्थित हो गया। इस प्रकार स्वेच्छामय नाना रूप धारण करनेवाले परमेश्वरका दर्शनकर शैलराजके नेत्रोंमें आनन्दके आँसू छलक आये। उनका अङ्ग-अङ्ग पुलकित हो गया। उन्होंने साष्टाङ्ग दण्डवत्-प्रणाम किया और भक्तिभावसे परिक्रमा करके बारंबार मस्तक झुकाया। फिर हर्षसे उछलकर हिमवान्‌ने जब पुनः देखा तो वही भिक्षुक सामने था। वास्तवमें वह भिक्षुक ही है—ऐसा उन्हें दिखायी दिया। भगवान् विष्णुकी मायासे शैलराज उसके नाना रूप-धारण-सम्बन्धी सब बातोंको भूल गये। भिक्षुक उनसे भीख माँगने लगा। उसके पास भिक्षाका पात्र था। उसने रक्त वस्त्र धारण किया था। हाथोंमें शृङ्ग और विचित्र डमरूके बाजे थे। वह भिक्षामें केवल दुर्गाको ग्रहण करनेके लिये उत्सुक था, दूसरी किसी वस्तुको नहीं, परंतु विष्णु-मायासे मोहित हुए शैलराजने उसकी याचना स्वीकार नहीं की। भिक्षुने भी और कुछ नहीं लिया। वह वहीं अन्तर्धान हो गया। प्रिये! उस समय मेना और गिरिराजको ज्ञान हुआ। वे बोले—'अहो! हमने विश्वनाथको दिनमें स्वप्नकी भाँति देखा है। भगवान् शिव हम दोनोंको वञ्चित करके अपने स्थानको चले गये।'

उन दोनों पति-पत्नीकी भगवान् शिवमें भक्ति बढ़ रही है—यह देख सब देवताओंको चिन्ता हो गयी। इन्द्र आदि देवता भारसे सुमेरुकी रक्षाके लिये युक्ति करने लगे। वे आपसमें कहने लगे—'यदि हिमवान् अनन्य भक्तिसे भारतमें भगवान् शिवको कन्यादान करेंगे तो निश्चय ही निर्वाण—मोक्षको प्राप्त होंगे। अनन्त रत्नोंका आधार हिमालय यदि पृथ्वीको छोड़कर चला जायगा तो इसका 'रत्नगर्भा' नाम अवश्य ही मिथ्या हो जायगा। शूलपाणि शिवको अपनी कन्या दे स्थावरत्वका परित्याग और दिव्य रूप

धारण करके वे विष्णुलोकको चले जायँगे। फिर तो अनायास ही उन्हें नारायणका सारूप्य प्राप्त हो जायगा। वे भगवान्‌के पार्षदभावको पाकर हरिदास हो जायँगे।' यह सब सोचकर देवताओंने आपसमें सलाह की और वे गुरु बृहस्पतिको हिमालयके घर भेजनेके लिये गये। उन सबने गुरुको प्रणाम करके निवेदन किया—'गुरुदेव! आप हिमालयके यहाँ जाकर उनके समक्ष भगवान् शिवकी निन्दा कीजिये। यह तो निश्चय है कि दुर्गा शिवके सिवा दूसरे किसी वरका वरण नहीं करेगी। उस दशामें हिमवान् अनिच्छासे ही अपनी पुत्री शिवको देंगे। ऐसा करनेसे कन्यादानका फल कम हो जायगा। कालान्तरमें गिरिराज भले ही मुक्त हो जायँ; परंतु इस समय तो इन्हें पृथ्वीपर रहना ही चाहिये। भगवन्! आप ही अनन्त रत्नोंके आधारभूत हिमालयको भारतवर्षमें रखिये। (इन्हें यहाँसे जाने न दीजिये।)

देवताओंका वचन सुनकर गुरु बृहस्पतिजीने दोनों हाथ कानोंमें लगा लिये और 'नारायण!' 'नारायण!' का स्मरण करते हुए उनकी प्रार्थना अस्वीकार कर दी। वेद-वेदान्तके विद्वान् बृहस्पति हरि और हरके महान् भक्त थे। उन्होंने देवताओंको बारंबार फटकारकर कहा।

बृहस्पति बोले—स्वार्थ-साधनमें तत्पर रहनेवाले देवताओ! मेरी सच्ची बात सुनो। मेरा यह वचन नीतिका सारतत्त्व, वेदोंद्वारा प्रतिपादित तथा परिणाममें सुख देनेवाला है। जो पापी शिव और विष्णुके भक्तकी, भूदेवता ब्राह्मणोंकी, गुरु और पतिव्रताकी, पति, भिक्षु, ब्रह्मचारी तथा सृष्टिके बीजभूत देवताओंकी निन्दा करते हैं; वे चन्द्रमा और सूर्यके रहनेतक कालसूत्र नामक नरकमें पकाये जाते हैं। उन्हें कफ तथा मल-मूत्रमें दिन-रात सोना पड़ता है। उन्हें कीड़े खाते हैं और वे कातर वाणीमें आर्तनाद करते हैं। जो सृष्टिकर्ता जगद्गुरु ब्रह्माकी निन्दा करते हैं; जो सर्वश्रेष्ठ शिव, दुर्गा, लक्ष्मी, सरस्वती, गीता, तुलसी, गङ्गा, वेद, वेदमाता सावित्री, व्रत, तपस्या, पूजा, मन्त्र तथा मन्त्रदाता गुरुमें दोष बताते हैं; वे अन्धकूप नामक नरकमें यातना भोगते हैं और वहाँ उन्हें ब्रह्माकी आधी आयुतक रहना पड़ता है तथा वे सर्प-समूहोंसे भक्षित हो सदा चीखते-चिल्लाते रहते हैं। जो दूसरे देवताओंके साथ तुलना करके भगवान् हृषीकेशकी निन्दा करते हैं; विष्णुभक्ति प्रदान करनेवाले पुराणमें, जो श्रुतिसे भी उत्कृष्ट है, दोष निकालते हैं; राधा तथा उनकी कायव्यूहरूपा गोपियोंकी और सदा पूजित होनेवाले ब्राह्मणोंकी भी निन्दा करते हैं; वे देवता ही क्यों न हों, ब्रह्माजीकी आयुपर्यन्त नरकके गड्ढेमें पकाये जाते हैं। उनके मुँह नीचे लटकाये जाते हैं और उनकी जाँघें ऊपरकी ओर होती हैं। विकृताकार सर्पसमूह तथा सर्पकी-सी आकृतिवाले कीट उनके सारे अङ्गोंमें लिपटकर काटते रहते हैं और वे अत्यन्त कातर तथा भयभीत हो सदा आर्तनाद किया करते हैं। निश्चय ही वहाँ उन्हें क्षोभपूर्वक कफ एवं मल-मूत्र खाने पड़ते हैं। रोषसे भरे हुए यमराजके किङ्कर उनके मुँहमें जलती हुई लुआठी डाल देते हैं। तीनों संध्याओंके समय उन्हें डाँट बताते हुए डंडोंसे पीटते हैं। डंडोंके प्रहारसे जब उन्हें प्यास लगती है, तब वे उन यमदूतोंके भयसे मूत्र-पान करते हैं। जब दूसरा कल्प आरम्भ होता है और पहले-पहल सृष्टिका आयोजन किया जाता है, उस समय उन पापियोंके पापोंका निवारण होता है—ऐसा ब्रह्माजीका कथन है। निश्चय ही शिवकी निन्दा करनेवाले देवता नरकमें पड़ेंगे। मेरे बच्चो! क्या तुमलोग मेरा यही उपकार करना चाहते हो? ब्रह्माजीकी आज्ञासे दक्ष प्रजापतिने शूलपाणि शंकरको अपनी पुत्री दी। उसीके पुण्यसे शिवकी निन्दा करनेपर भी उन्हें पाप नहीं लगा; अपितु परम ऐश्वर्यकी प्राप्ति हुई। उन्होंने अनिच्छासे ही

भगवान् शंकरको कन्यादान किया था। इसलिये उन्हें चौथाई पुण्यकी ही प्राप्ति हुई। अतएव वे सारूप्य मोक्षको न पाकर तुच्छ सृष्टिका ही अधिकार प्राप्त कर सके। देवताओ! तुम्हीं लोगोंमेंसे कोई हिमवान्‌के घर जाकर अपने मतके अनुसार कार्य करे और प्रयत्नपूर्वक शैलराजके मनमें अश्रद्धा उत्पन्न करे। अनिच्छासे कन्यादान करके गिरिराज हिमवान् सुखपूर्वक भारतवर्षमें स्थित रहें। भक्तिपूर्वक शिवको पुत्री देकर तो वे निश्चय ही मोक्ष प्राप्त कर लेंगे। अश्रद्धा उत्पन्न होनेके बाद अरुन्धतीको साथ ले सब सप्तर्षि अवश्य ही गिरिराजके घर जाकर उन्हें समझायेंगे। दुर्गा शिवके सिवा दूसरे किसी वरका वरण नहीं करेगी। उस दशामें पुत्रीके आग्रहसे वे अनिच्छापूर्वक शिवको अपनी कन्या देंगे। इस प्रकार मैंने अपना सारा विचार व्यक्त कर दिया। अब देवतालोग अपने-अपने घरको पधारें।

यों कहकर बृहस्पतिजी शीघ्र ही तपस्याके लिये आकाशगङ्गाके तटपर चले गये।

(अध्याय ४०)

ब्रह्माजीकी आज्ञासे देवताओंका शिवजीसे शैलराजके घर जानेका अनुरोध करना, शिवका ब्राह्मण-वेषमें जाकर अपनी ही निन्दा करके शैलराजके मनमें अश्रद्धा उत्पन्न करना, मेनाका पुत्रीको साथ ले कोप-भवनमें प्रवेश और शिवको कन्या न देनेके लिये दृढ़ निश्चय, सप्तर्षियों और अरुन्धतीका आगमन तथा शैलराज एवं मेनाको समझाना, वसिष्ठ और हिमवान्‌की बातचीत, शिवकी महत्ता तथा देवताओंकी प्रबलताका प्रतिपादन, प्रसङ्गवश राजा अनरण्य, उनकी पुत्री पद्मा तथा पिप्पलाद मुनिकी कथा

श्रीकृष्ण कहते हैं—तब देवतालोग आपसमें विचार करके ब्रह्माजीके निकट गये। वहाँ उन्होंने उन लोकनाथ ब्रह्मासे अपना अभिप्राय निवेदन किया।

देवता बोले—संसारकी सृष्टि करनेवाले पितामह! आपकी सृष्टिमें हिमालय सब रत्नोंका आधार है। वह यदि मोक्षको प्राप्त हो जायगा तो पृथ्वी रत्नगर्भा कैसे कहलायेगी? शूलपाणि शंकरको भक्तिपूर्वक अपनी पुत्री देकर शैलराज स्वयं नारायणका सारूप्य प्राप्त कर लेंगे—इसमें संशय नहीं है। अतः आप शिवकी निन्दा करके गिरिराजके मनमें अश्रद्धा उत्पन्न कीजिये। प्रभो! आपके सिवा दूसरा कोई यह कार्य करनेमें समर्थ नहीं है। इसलिये आप उनके घर जाइये।

देवताओंकी यह बात सुनकर स्वयं ब्रह्माजी उनसे कानोंको अमृतके समान मधुर प्रतीत होनेवाला तथा नीतिका सारभूत उत्तम वचन बोले।

ब्रह्माजीने कहा—बच्चो! मैं शिवकी निन्दा करनेमें समर्थ नहीं हूँ। यह अत्यन्त दुष्कर कार्य है। शिवकी निन्दा सम्पत्तिका नाश करनेवाली और विपत्तिका बीज है। तुमलोग भूतनाथ शिवको ही वहाँ भेजो। वे स्वयं अपनी निन्दा करें। परायी निन्दा विनाशका और अपनी निन्दा यशका कारण होती है*।

प्रिये! ब्रह्माजीका वचन सुनकर उन्हें प्रणाम

* परनिन्दा विनाशाय स्वनिन्दा यशसे परम्। (४१। ७)

करके देवतालोग शीघ्र ही कैलास पर्वतको गये और वहाँ पहुँचकर भगवान् शिवकी स्तुति करने लगे। स्तुति करके उन सबने करुणानिधान शंकरको अपना अभिप्राय बताया। उनकी बात सुनकर भगवान् शंकर हँसे और उन्हें आश्वासन दे स्वयं शैलराजके पास गये; फिर तो सब देवता शीघ्र ही अपने घर लौटकर आनन्दका अनुभव करने लगे। क्यों न हो, इष्टसिद्धि आनन्द देनेवाली और अभीष्ट वस्तुकी असिद्धि सदा दुःख बढ़ानेवाली होती है।

उधर शैलराज अपनी सभामें बन्धुवर्गसे घिरे हुए प्रसन्नतापूर्वक बैठे थे। उनके साथ पार्वती भी थी। इसी बीच स्वयं भगवान् शिव ब्राह्मणका रूप धारण करके सहसा वहाँ आ पहुँचे। उनके मुख और नेत्रोंसे प्रसन्नता प्रकट हो रही थी। ब्राह्मणके हाथमें दण्ड और छत्र था। उनका वस्त्र लंबा था। उन्होंने ललाटमें उत्तम तिलक लगा रखा था। उनके एक हाथमें स्फटिकमणिकी माला थी और उन्होंने गलेमें भगवान् शालग्रामको धारण कर रखा था। उन्हें देखते ही हिमवान् अपने सेवकगणोंसहित उठकर खड़े हो गये। उन्होंने भूमिपर दण्डकी भाँति पड़कर भक्तिभावसे उस अपूर्व अतिथिको प्रणाम किया। पार्वतीने भी विप्ररूपधारी प्राणेश्वरको भक्तिपूर्वक मस्तक झुकाया। फिर ब्राह्मणने सबको प्रसन्नतापूर्वक आशीर्वाद दिये। गिरिराजके दिये हुए आसनपर वे शीघ्रतापूर्वक बैठे और आतिथ्यमें मधुपर्क आदि जो कुछ भी मिला, वह सब उन्होंने प्रेमपूर्वक ग्रहण किया। शैलराजने ब्राह्मणका कुशल-समाचार पूछते हुए कहा—'विप्रवर! आपका परिचय क्या है?' तब उन द्विजराजने गिरिराजको आदरपूर्वक सब कुछ बताया।

ब्राह्मण बोले—गिरिराज! मैं घटक[१]-वृत्तिका आश्रय लेकर भूमण्डलमें घूमता रहता हूँ। मेरी मनके समान तीव्र गति है। गुरुदेवके वरदानसे मैं सर्वत्र पहुँचनेमें समर्थ एवं सर्वज्ञ हूँ। मुझे ज्ञात हुआ है कि तुम अपनी इस लक्ष्मी-सरीखी दिव्य कन्याको शंकरके हाथमें देना चाहते हो, जिसके शील और कुलका कुछ भी पता नहीं है। शंकर निराश्रय हैं—उनका कहीं भी ठौर-ठिकाना नहीं है। वे असङ्ग—सदा अकेले रहनेवाले हैं। उनके न रूप है, न गुण। वे श्मशानमें विचरनेवाले, सम्पूर्ण भूतोंके अधिपति तथा योगी हैं। शरीरपर वस्त्रतक नहीं है। सदा दिगम्बर—नंग-धड़ंग रहते हैं। उनके शरीरमें सर्पोंका वास है। अङ्गरागके स्थानमें राख—भभूत ही उनके अंगोंको विभूषित करती है। उनका स्वरूप ही व्यालग्राही (दुष्टों अथवा सर्पोंको ग्रहण करनेवाला) है। वे कालका व्यापादन (नाश या अपव्यय) करनेवाले हैं। अज्ञातमृत्यु, ज्ञ[३] अथवा अज्ञ, अनाथ[४] और अबन्धु[५] हैं। भव (संसारकी उत्पत्तिके कारण) अथवा अभव (जन्मरहित) हैं। वे सिरपर तपाये हुए सुवर्णकी-सी कान्तिवाली जटाओंका बोझ धारण करनेवाले (विरक्त) तथा निर्धन हैं। उनकी अवस्था कितनी

१- जो वरके लिये योग्य कन्या और कन्याके लिये योग्य वरका पता देकर उन दोनोंमें सगाई या वैवाहिक सम्बन्ध पक्का कराते हैं, उन्हें 'घटक' कहते हैं। उनकी वृत्ति ही घटक या घाटिका-वृत्ति है।

२- निन्दापक्षमें अज्ञातमृत्युका अर्थ है, जिसकी मृत्युका किसीको ज्ञान नहीं है अर्थात् जन्मकुण्डली आदि न होनेसे जिनकी आयुका पता लगाना असम्भव है। कन्या उसको दी जाती है, जिसके दीर्घायु होनेका निश्चय कर लिया गया हो। स्तुतिपक्षमें—जिन्हें मृत्युका कभी अनुभव नहीं हुआ अर्थात् जो अमर एवं मृत्युञ्जय है।

३- निन्दापक्षमें 'अज्ञ' पदच्छेद है और स्तुतिपक्षमें 'ज्ञ'।

४- निन्दापक्षमें अनाथका अर्थ असहाय है और स्तुतिपक्षमें जो नाथरहित है—स्वयं ही सबके नाथ हैं।

५- अबन्धु—बन्धुहीन, बेसहारा अथवा अद्वितीय।

है, इसका ज्ञान किसीको नहीं है। वे अत्यन्त वृद्ध हैं। विकारशून्य हैं। सबके आश्रय हैं अथवा सभी उनके आश्रय हैं। व्यर्थ घूमते रहते हैं। सर्पोंका हार धारण किये भीख माँगते हैं। (यही उनका परिचय है, जिन्हें तुम अपनी पुत्री देने जा रहे हो।) भगवान् नारायण ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ तथा कुलीन हैं। (अथवा समस्त कुलोंकी उत्पत्तिके स्थान हैं।) तुम उनके महत्त्वको समझो। पार्वतीका दान करनेके निमित्त वे ही तुम्हारे लिये योग्य पात्र हैं। पार्वतीका विवाह शंकरसे हो रहा है, यह सुनते ही बड़े-बड़े लोगोंके मुखपर उपहाससूचक मुस्कराहट दौड़ जायगी। एक तुम हो, जो लाखों पर्वतोंके राजाधिराज हो और एक शिव हैं, जिनके एक भी भाई-बन्धु नहीं है। तुम अपने बन्धु-बान्धवोंसे तथा धर्मपत्नी मेनासे भी शीघ्र ही पूछो और इन सबकी सम्मति जाननेका प्रयत्न करो। भैया! और सबसे तो यत्नपूर्वक पूछना, किंतु पार्वतीसे इस विषयमें न पूछना; क्योंकि उसे शंकरके अनुरागका रोग लगा हुआ है। रोगीको दवा नहीं अच्छी लगती। उसे सदा कुपथ्य ही रुचिकर जान पड़ता है।

वृन्दावनविनोदिनी राधे! यों कह शान्त स्वभाववाले ब्राह्मणने शीघ्र ही स्नान और भोजन करके प्रसन्नतापूर्वक अपने घरका रास्ता लिया। ब्राह्मणकी पूर्वोक्त बात सुनकर मेना शोकयुक्त हो नेत्रोंसे आँसू बहाने लगीं। उनका हृदय व्यथित हो उठा। वे हिमालयसे बोलीं।

मेनाने कहा—शैलराज! मेरी बात सुनिये, जो परिणाममें सुख देनेवाली है। आप इन श्रेष्ठ पर्वतोंसे पूछिये, इनकी क्या राय है। मैं तो अपनी बेटीको शंकरके हाथमें नहीं दूँगी। देखिये, मैं सारे विषयोंको त्याग दूँगी, विष खा लूँगी और पार्वतीके गलेमें फाँसी लगाकर भयानक वनमें चली जाऊँगी।

ऐसा कह मेना रोषपूर्वक पार्वतीका हाथ पकड़कर कोपभवनमें चली गयीं। खाना-पीना छोड़कर रोने लगीं और भूमिपर ही सो गयीं। इसी समय भाइयोंसहित वसिष्ठ वहाँ आये। उन सबके साथ अरुन्धती भी थीं। शैलराजने उन सब महर्षियोंको प्रणाम करके बैठनेके लिये सोनेका सिंहासन दिया और सोलह उपचार अर्पित करके भक्तिभावसे उनका पूजन किया। ऋषिलोग सभाके बीच उस सुखद सिंहासनपर बैठे और अरुन्धतीदेवी तत्काल वहाँ चली गयीं, जहाँ मेना और पार्वती थीं। जाकर उन्होंने देखा, मेना शोकसे अचेत हो पृथ्वीपर सो रही हैं। तब उन साध्वी देवीने मधुर वाणीमें कहा।

अरुन्धती बोलीं—पतिव्रते मेनके! उठो। मैं अरुन्धती तुम्हारे घर आयी हूँ। मुझे पितरोंकी मानसी कन्या तथा ब्रह्माजीकी पुत्रवधू समझो।

अरुन्धतीका स्वर सुनकर मेना शीघ्र ही उठकर खड़ी हो गयीं। उन्होंने लक्ष्मीके समान तेजस्विनी देवी अरुन्धतीके चरणोंमें मस्तक रखकर उन्हें प्रणाम किया और इस प्रकार कहा।

मेना बोलीं—अहो! हमारा जन्म बड़ा ही पुण्यमय है। हम लोगोंका यह कौन-सा पुण्य आज फलित हुआ है, जिससे ब्रह्माजीकी पुत्रवधू तथा वसिष्ठजीकी धर्मपत्नीने मेरे घरमें पदार्पण किया है। देवि! मैं आपकी किङ्करी हूँ। यह घर आपका है। हमारे बड़े पुण्यसे आपका यहाँ शुभागमन हुआ है।

सम्भ्रमपूर्वक इतना ही कहकर मेनाने सती अरुन्धतीको सोनेकी चौकीपर बिठाया और उनके चरण पखारकर उन्हें मिष्टान्न भोजन कराया। फिर स्वयं भी पुत्रीके साथ भोजन किया। तदनन्तर अरुन्धतीने मेनाको शिवके लिये नीतिकी बातें समझायीं और प्रसङ्गवश उनके साथ सम्बन्ध जोड़नेवाले वचन भी कहे। इधर उन महर्षियोंने भी शैलराजको उत्तम वाणीमें नीतिका सारतत्त्व समझाया और प्रसङ्गवश ऐसी बातें कहीं, जो

शिव और पार्वतीके सम्बन्धको जोड़नेवाली थीं।

ऋषि बोले—शैलराज! हमारी बात सुनो। यह तुम्हारे लिये शुभकारक है। तुम पार्वतीका विवाह शिवके साथ कर दो और उन लोकसंहारक महादेवके श्वशुर बनो। देवेश्वर शिव तुमसे याचना नहीं करेंगे। तुम यत्नपूर्वक शीघ्र ही उन्हें समझाओ—विवाहके लिये तैयार करो। तुम्हारी शंकाका निवारण करनेके लिये ब्रह्माजी स्वयं विवाह स्थिर करानेके निमित्त प्रयत्न करें। योगियोंमें श्रेष्ठ शंकर कभी विवाहके लिये इच्छुक नहीं हैं। ब्रह्माजीकी प्रार्थनासे ही वे तुम्हारी पुत्रीको ग्रहण करेंगे। उसे ग्रहण करनेका दूसरा कारण यह है कि तुम्हारी कन्याकी तपस्याके अन्तमें उन्होंने उसे अपनानेकी प्रतिज्ञा कर ली है। इन दो कारणोंसे ही योगिराज शिव विवाह करेंगे।

ऋषियोंकी यह बात सुनकर हिमवान् हँसे और कुछ भयभीत हो अत्यन्त विनयपूर्वक बोले।

हिमालयने कहा—मैं शिवके पास कोई राजोचित सामग्री नहीं देखता। न रहनेके लिये कोई घर है, न ऐश्वर्य। यहाँतक कि उनके कोई स्वजन-बान्धव भी नहीं हैं। जो अत्यन्त निर्लिप्त योगी हो, उसके हाथ कन्या देना उचित नहीं है। आप लोग ब्रह्माजीके पुत्र हैं। अतः अपना सत्य एवं निश्चित मत प्रकट कीजिये। यदि पिता कामना, लोभ, भय अथवा मोहके वशीभूत हो सुयोग्य पात्रके हाथमें अपनी कन्या नहीं देता है तो सौ वर्षोंतक नरकमें पड़ा रहता है;* अतः मैं स्वेच्छासे शूलपाणिको अपनी कन्या नहीं दूँगा। ऋषियो! इस विषयमें जो उचित कार्य हो; वह आप कीजिये।

हिमवान्‌की बात सुनकर वेद-वेदाङ्गोंके विद्वान् ब्रह्मपुत्र वसिष्ठ वेदोक्त मत प्रकट करनेके लिये उद्यत हुए।

वसिष्ठजीने कहा—शैलराज! लोक और वेदमें तीन प्रकारके वचन कहे गये हैं। शास्त्रज्ञ पुरुष अपनी निर्मल ज्ञानदृष्टिसे उन सभी वचनोंको जानता है। पहला वचन वह है, जो वर्तमान कालमें कानोंको सुन्दर लगे और जल्दी समझमें आ जाय; किंतु पीछे असत्य और अहितकर सिद्ध हो। ऐसी बात केवल शत्रु कहता है। इससे कदापि हित नहीं होता। दूसरे प्रकारका वचन वह है, जो आरम्भमें सहसा दुःखजनक जान पड़े; परंतु परिणाममें सुख देनेवाला हो। ऐसा वचन दयालु और धर्मशील पुरुष ही अपने भाई-बन्धुओंको समझानेके लिये कहता है। तीसरी उत्कृष्ट श्रेणीका वचन वह है जो कानोंमें पड़ते ही अमृतके समान मधुर प्रतीत हो तथा सर्वदा सुखकी प्राप्ति करानेवाला हो। उसमें सारतत्त्व सत्य होता है और उसमें सबका हित होता है। ऐसा वचन सर्वश्रेष्ठ तथा सभीको अभीष्ट होता है। गिरिराज! इस प्रकार नीतिशास्त्रमें तीन प्रकारके वचनोंका निरूपण किया गया है। अब तुम्हीं कहो इन तीनोंमेंसे कौन-सा वचन तुमसे कहूँ? तुम्हें कैसी बात सुननेकी इच्छा है? देवेश्वर शंकर वास्तवमें बाह्य धन-सम्पत्तिसे रहित हैं; क्योंकि उनका मन एकमात्र तत्त्वज्ञानके समुद्रमें निमग्न रहता है। बाह्य धन-सम्पत्ति आपाततः रमणीय जान पड़ती है; परंतु वह बिजलीकी चमककी भाँति शीघ्र ही नष्ट हो जानेवाली है। नित्यानन्दस्वरूप स्वात्माराम परमेश्वरको इस तरहकी सम्पत्तिके लिये क्या इच्छा होगी? गृहस्थ मनुष्य ऐसे पुरुषको अपनी पुत्री देता है, जो राज्य-वैभवसे सम्पन्न हो। जिसके मनमें स्त्रीसे द्वेष हो, ऐसे वरको कन्या देनेवाला पिता कन्याघाती होता है; परंतु कौन कह सकता है कि भगवान् शंकर दुःखी हैं? क्योंकि धनाध्यक्ष कुबेर भी उनके किङ्कर हैं।

---

*नानुरूपाय पात्राय पिता कन्यां ददाति चेत्। कामाल्लोभाद्भयान्मोहाच्छताब्दं नरकं व्रजेत्॥ (४१। ४९)

जो भगवान् भ्रूभङ्गकी लीलामात्रसे सृष्टिका निर्माण एवं संहार करनेमें समर्थ हैं; जो ईश प्रकृतिसे परे, निर्गुण, परमात्मा एवं सर्वेश्वर हैं; जो समस्त जन्तुओंसे निर्लिप्त और उनमें लिप्त भी हैं; जो अकेले ही समस्त सृष्टिके संहारकर्म तथा सृष्टिकर्ममें भी समर्थ हैं एवं सर्वरूप हैं; निराकार, साकार, सर्वव्यापी और स्वेच्छामय हैं; जो ईश्वर स्वयं सृष्टिकार्यका सम्पादन करनेके लिये तीन रूप धारण करते हैं तथा सृष्टिकर्ता 'ब्रह्मा', पालनकर्ता 'विष्णु' एवं संहारकर्ता 'शिव'-नामसे प्रसिद्ध होते हैं; जो 'ब्रह्मा'-रूपसे ब्रह्मलोकमें, 'विष्णु'-रूपसे क्षीरसागरमें तथा 'शिव'-रूपसे कैलासमें वास करते हैं; वे परब्रह्म परमेश्वर ही 'श्रीकृष्ण' कहे गये हैं। ब्रह्मा आदि सब रूप उन्हींकी विभूतियाँ हैं। श्रीकृष्णके दो रूप हैं—द्विभुज और चतुर्भुज। चतुर्भुज-रूपसे तो वे वैकुण्ठमें निवास करते हैं और स्वयं द्विभुज-रूपसे गोलोकमें विराजमान हैं। ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर उन भगवान् श्रीकृष्णके अंश हैं। कोई देवता उनकी कला है और कोई कलांश। श्रीकृष्णने सृष्टिके लिये उन्मुख होकर स्वयं अपनी प्रकृति (शक्तिस्वरूपा श्रीराधा)-को प्रकट किया और उनमें अपने तेजोमय वीर्यकी स्थापना की। उस गर्भसे एक डिम्बका प्रादुर्भाव हुआ, जिसके भीतरसे महाविराट् (नारायण) प्रकट हुए। उन्हींको महाविष्णु जानना चाहिये। वे श्रीकृष्णके सोलहवें अंश हैं। वे ही जब एकार्णवके जलमें शयन करते थे, उस समय उनके नाभिकमलसे ब्रह्माका प्रादुर्भाव हुआ। सृष्टिकर्ता ब्रह्माके भाल-देशसे चन्द्रशेखर शंकर प्रकट हुए हैं। महाविष्णुके वामपार्श्वसे विष्णु (लघु विराट्)-का प्राकट्य हुआ। शैलराज! इस प्रकार प्रकृतिसे उत्पन्न होनेके कारण ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि प्राकृतिक कहे गये हैं।

श्रीकृष्णसे प्रकट हुई प्रकृतिने मुख्यतः चार प्रकारकी मूर्ति धारण की। इसके सिवा सृष्टि-संचालनके लिये लीलापूर्वक अपने अंश और कलाद्वारा उन्होंने और भी बहुतसे रूप धारण किये। श्रीकृष्णके वामाङ्गसे प्रकट हुई प्रकृतिदेवी स्वयं तो रासेश्वरी राधाके रूपमें प्रतिष्ठित हैं। वे ही स्वयं श्रीकृष्णके मुखसे प्रकट हो वाणी सरस्वती कहलायीं, जो राग-रागिनियोंकी अधिष्ठात्री देवी हैं। श्रीकृष्णके वक्षःस्थलसे प्रकट हुई वे सर्वसम्पत्स्वरूपिणी लक्ष्मीके नामसे प्रसिद्ध हुईं तथा सम्पूर्ण देवताओंके तेजमें उन्होंने अपने-आपको ही शिवारूपसे अभिव्यक्त किया और समस्त दानवोंका वध करके उन्होंने देवताओंको राज्यलक्ष्मी प्रदान की। तत्पश्चात् कल्पान्तरमें दक्षपत्नीके गर्भसे जन्म ले वे ही सती नामसे प्रसिद्ध हुईं और शिवकी पत्नी बनीं। दक्षने स्वयं ही सतीको शिवके हाथमें दिया; परंतु पिताके यज्ञमें पतिकी निन्दा सुनकर सतीने योगसे अपने शरीरको त्याग दिया। पितरोंकी मानसी कन्या मेनका तुम्हारी पत्नी हैं। उनके गर्भसे उन्हीं जगदम्बिका सतीने जन्म ग्रहण किया है। शैलराज! यह शिवा जन्म-जन्ममें और कल्प-कल्पमें शिवकी पत्नी रही हैं। यह पराशक्ति जगदम्बा ज्ञानियोंकी बुद्धिरूपा है। इसे पूर्वजन्मकी बातोंका स्मरण बना रहता है। यह सर्वज्ञा, सिद्धिदायिनी और सिद्धिरूपिणी है। इसकी अस्थि और चिताभस्मको भगवान् शिव स्वयं भक्तिपूर्वक धारण करते हैं। कल्याणस्वरूप गिरिराज! तुम स्वेच्छासे अपनी कन्या शिवको दे दो, दे दो। नहीं तो, वह स्वयं अपने प्राणवल्लभके स्थानको चली जायगी और तुम देखते रह जाओगे। पूर्वजन्मसे जो जिसकी पत्नी है, दूसरे जन्ममें वह अपने उस प्रियतमको अवश्य पाती है। प्रजापतिके इस नियमका कोई भी खण्डन नहीं कर सकता। भगवान् शिव स्वात्माराम और तत्त्वज्ञ हैं; अतः विवाहके लिये उत्सुक नहीं हैं। तारकासुरसे

पीड़ित हुए समस्त देवताओंने इसके लिये उनका स्तवन किया है। देवताओंकी पीड़ा देखकर ब्रह्माजीके प्रार्थना करनेपर कृपालु भगवान् शिवने कृपापूर्वक उनके इस अनुरोधको स्वीकार किया है। विवाहकी प्रतिज्ञा करके योगीन्द्र शिवने जब शिवाको असंख्य क्लेश उठाते देखा, तब तुम्हारी पुत्रीकी तपस्याके स्थानमें वे स्वयं ब्राह्मणका रूप धारण करके आये और उसे आश्वासन तथा वर देकर पुनः अपने स्थानको लौट गये।

गिरिराज! इस समाचारको सुनकर ही इन्द्र आदि सब देवता प्रसन्नतापूर्वक यहाँ आये थे। भगवान् नारायण, ब्रह्मा, धर्म, ऋषि-मुनि, गन्धर्व, यक्ष और राक्षस सब इस समय एक स्थानपर मिले और इस विषयपर सबने अच्छी तरह विचार किया। उन्हीं लोगोंने हमें शीघ्र यहाँ भेजा है। देवी अरुन्धती अपने कर्तव्यका पालन करके उऋण हो चुकी हैं। तुम्हें समझानेमें हमें सदा ही अधिक प्रसन्नता होती है; तुम्हारे सामने शिवाके विवाहका शुभ कार्य प्राप्त है, जो सब कालमें सुख देनेवाला है। शैलेन्द्र! यदि स्वेच्छापूर्वक शिवाका विवाह शिवके साथ नहीं करोगे तो भी वह होकर ही रहेगा; क्योंकि भवितव्यता प्रबल होती है। वे महादेवजी रत्नसारनिर्मित रथपर योगीन्द्रोंमें श्रेष्ठ, ज्ञानियोंके गुरुके भी गुरु, आदि-मध्य और अन्तसे रहित, निर्विकार एवं अजन्मा परब्रह्मस्वरूप श्रीकृष्णको बिठाकर यहाँ विवाहके लिये पधारेंगे। नारायणको साथ ले तपस्याके स्थानमें शिवने शिवाको वर दिया है। ईश्वरकी दुर्लभ प्रतिज्ञा कभी विफल नहीं हो सकती। ब्रह्मासे लेकर कीटपर्यन्त सारा जगत् नश्वर और अस्थिर है; परंतु साधु पुरुषोंकी प्रतिज्ञा दुर्लङ्घ्य और अमिट होती है।

हिमालय! एक ही इन्द्रने लीलापूर्वक समस्त पर्वतोंके पंख काट डाले। पवनदेवने खेल-खेलमें ही मेरु पर्वतके एक शिखरको भंग कर दिया। अतः तुम्हीं बताओ पर्वतोंमें कौन-से ऐसे हैं, जो देवताओंसे युद्ध कर सकें। पवनसे प्रेरित हो समस्त पर्वत एक ही क्षणमें समुद्रोंके भीतर जा गिरेंगे। शैलेन्द्र! यदि एकके लिये सारी सम्पत्तिका विनाश हो रहा हो तो उस एकको देकर शेष सबकी रक्षा कर लेनी चाहिये; परंतु यह नियम शरणागतके लिये लागू नहीं है। शरणागतकी रक्षाके लिये तो अपने प्राणोंका परित्याग कर देना भी उचित है। फिर स्त्री, पुत्र, धन आदि अन्य सब वस्तुओंकी तो बात ही क्या है? ऐसा नीतिवेत्ताओंका मत है। महाराज अनरण्य ब्राह्मणको अपनी पुत्री देकर शापसे मुक्त हुए और अपनी समस्त सम्पदाओंकी रक्षा कर सके। अनरण्य ब्राह्मणोंके हितकारी थे; परंतु उन्हींके शापमें डूबकर अत्यन्त कातर हो गये थे। उस समय नीतिशास्त्रके विद्वानोंने उन्हें शीघ्र ही कर्तव्यका बोध कराया और उसको पालन करके वे संकटसे मुक्त हुए। शैलेन्द्र! तुम भी शिवको अपनी पुत्री देकर समस्त बन्धुजनोंकी रक्षा करो और देवताओंको भी अधीन बना लो।

वसिष्ठजीकी बात सुनकर पर्वतेश्वर हँसे; उन्होंने व्यथित हृदयसे राजा अनरण्यका वृत्तान्त पूछा।

हिमालय बोले—ब्रह्मन्! राजाधिराज अनरण्य किस कुलमें उत्पन्न हुए थे और उन्होंने किस प्रकार अपनी पुत्री देकर समस्त सम्पदाओंकी रक्षा की थी?

वसिष्ठजीने कहा—शैलराज! नृपेश्वर अनरण्य मनुवंशी राजा थे। वे चिरंजीवी, धर्मात्मा, वैष्णव तथा जितेन्द्रिय थे। पहले मनुका नाम स्वायम्भुव है, जो ब्रह्माजीके पुत्र और अत्यन्त धर्मात्मा थे। उन्होंने इकहत्तर चतुर्युगतक धर्मपूर्वक राज्य किया था। तदनन्तर वे शतरूपाके साथ वैकुण्ठधाममें चले गये और श्रीहरिका दास्य एवं सामीप्य पाकर उनके दास हो गये। तत्पश्चात् स्वारोचिष मनु हुए,

जो एक महान् पुरुष थे। उनका काल व्यतीत हो जानेपर उत्तम मनुका राज्य आया। उत्तमके भी चले जानेपर धर्मात्मा तामस मनुके पदपर प्रतिष्ठित हुए। उनके बाद ज्ञानिशिरोमणि रैवतका मन्वन्तर आया। तत्पश्चात् छठे चाक्षुष मनु और सातवें श्राद्धदेव मनु उस पदके अधिकारी हुए हैं। आठवें मनुका नाम सावर्णि समझना चाहिये, जो सूर्यके ज्येष्ठ पुत्र हैं। वे ही पूर्वजन्ममें भूतलपर चैत्रवंशी राजा सुरथके नामसे प्रसिद्ध थे। नवें मनुका नाम दक्षसावर्णि और दसवेंका ब्रह्मसावर्णि है। ग्यारहवें श्रेष्ठ मनुको धर्मसावर्णि कहते हैं। तत्पश्चात् रुद्रसावर्णिका मन्वन्तर आता है। रुद्रसावर्णि भगवान् शिवके भक्त और जितेन्द्रिय थे। उनके बाद क्रमशः देवसावर्णि और इन्द्रसावर्णि तेरहवें तथा चौदहवें मन्वन्तरोंके अधिकारी हुए हैं। भैया! इस प्रकार मैंने तुम्हें चौदह मनुओंका परिचय दिया। इन सबके व्यतीत हो जानेपर ब्रह्माजीका एक दिन पूरा होता है। अब तुम इन्द्रसावर्णिका सारा वृत्तान्त मुझसे सुनो।

इन्द्रसावर्णि सब मनुओंमें श्रेष्ठ, धर्मात्मा तथा गदाधारी भगवान् विष्णुके अनन्य भक्त थे। उन्होंने इकहत्तर युगोंतक धर्मपूर्वक राज्य किया। इसके बाद वे अपने पुत्र सुरेन्द्रको राज्य देकर तपस्याके लिये वनमें चले गये। सुरेन्द्रका पुत्र महाबली श्रीमान् श्रीनिकेत हुआ। उसका पुत्र महायोगी पुरीषतरु और उसका पुत्र अत्यन्त तेजस्वी गोकामुख हुआ। गोकामुखके वृद्धश्रवा, वृद्धश्रवाके भानु, भानुके पुण्डरीक, पुण्डरीकके जिह्वल, जिह्वलके शृङ्गी, शृङ्गीके भीम और भीमके पुत्र यशश्चन्द्र हुए; जिन्होंने अपने यशसे चन्द्रमाको जीत लिया था। संतपुरुष तथा देवतालोग सदा ही उनकी निर्मल कीर्तिका गान करते हैं। उनका पुत्र वरेण्य और वरेण्यका पुत्र पुरारण्य हुआ। पुरारण्यके धार्मिक पुत्रका नाम धरारण्य था। धरारण्यके पुत्र मङ्गलारण्य हुए, जो ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ और तपस्वी थे। नृपश्रेष्ठ मङ्गलारण्यके कोई पुत्र नहीं था; अतः वे तपस्याके लिये पुष्करमें गये। वहाँ दीर्घकालतक तप करके महेश्वरसे वर पाकर वे घर आये। वहाँ उन्हें अनरण्य नामक पुत्र प्राप्त हुआ, जो भगवान् विष्णुका भक्त और जितेन्द्रिय था। उस पुत्रको राज्य देकर मङ्गलारण्य तपस्याके लिये वनमें चले गये। नृपश्रेष्ठ अनरण्य सातों द्वीपोंसे युक्त पृथ्वीका पालन करने लगे; उन्होंने भृगुजीको पुरोहित बनाकर सौ यज्ञोंका अनुष्ठान किया; परंतु इन्द्रपदको नश्वर और अत्यन्त तुच्छ मानकर उन्होंने उसे ग्रहण नहीं किया। उन शुद्धबुद्धिवाले नरेशने अपने प्रज्वलित तेजसे इन्द्र, बलि तथा समस्त दानवेन्द्रोंको लीलापूर्वक जीत लिया।

हिमालय! उन महाराजके सौ पुत्र और एक सुन्दरी कन्या हुई, जो लक्ष्मीके समान लावण्यमयी थी। उसका नाम पद्मा रखा गया था। वह पिताके घरमें रहकर धीरे-धीरे युवावस्थामें प्रविष्ट हुई। तब महाराजने वरकी खोजके लिये दूत भेजा। एक दिन अपने आश्रमको जानेके लिये उत्सुक हुए पिप्पलाद मुनिने तपस्याके निर्जन स्थानमें एक गन्धर्वको देखा, जो स्त्रियोंसे घिरा था। उसका चित्त शृङ्गाररसके समुद्रमें डूबा हुआ था। कामसे अत्यन्त मतवाले हुए उस गन्धर्वको दिन-रातका भान नहीं होता था। उसे देखकर मुनिवर पिप्पलादके मनमें कामभावका उदय हुआ। उनका चित्त तपस्यासे विचलित हो गया और वे पत्नी-प्राप्तिका उपाय सोचने लगे। एक दिन पुष्पभद्रा नदीमें स्नानके लिये जाते हुए मुनीश्वर पिप्पलादने युवती पद्माको देखा, जो पद्मा (लक्ष्मी)-के समान मनोरम जान पड़ती थी। मुनिने आसपास खड़े हुए लोगोंसे पूछा—'यह कन्या कौन है?' लोगोंने बताया—'ये महाराज अनरण्यकी पुत्री हैं।' मुनिने स्नान करके अपने इष्टदेव राधावल्लभका पूजन किया और कामनापूर्वक भिक्षा माँगनेके लिये वे अनरण्यकी सभामें गये।

मुनिको आया देख राजाने शीघ्र ही उनके चरणोंमें प्रणाम किया और भयसे व्याकुल हो मधुपर्क आदि देकर भक्तिपूर्वक उनकी पूजा की।

वह सब कुछ ग्रहण करके मुनिने कामनापूर्वक राजकन्याको माँगा। उनकी याचना सुनकर राजा चुप हो गये। उनसे कुछ भी उत्तर देते नहीं बना। मुनिने फिर याचना की। नरेश्वर! अपनी कन्या मुझे दीजिये; अन्यथा मैं एक ही क्षणमें सबको भस्म कर डालूँगा। मुनिके तेजसे राजाके समस्त सेवक आच्छन्न हो गये। मुनिको वृद्ध और जरा-जीर्ण हुआ देख भृत्यगणोंसहित राजा रोने लगे। सब रानियाँ भी रोदन करने लगीं। इस समय क्या करना चाहिये, इसका निर्णय करनेकी शक्ति किसीमें नहीं रह गयी। कन्याकी माता महारानी शोकसे व्याकुल हो मूर्च्छित हो गयीं। तब नीतिशास्त्रके ज्ञाता राजपण्डितने राजा, रानी, राजकुमारों और कन्याको उत्तम नीतिका उपदेश देते हुए कहा—'नरेश्वर! आज या दूसरे दिन आप अपनी कन्या किसी-न-किसीको देंगे ही। इस ब्राह्मणको छोड़कर और किसको आप कन्या देना उचित समझते हैं? मैं तो तीनों लोकोंमें इस ब्राह्मणके सिवा दूसरे किसीको कन्यादानका उत्तम पात्र नहीं देखता हूँ। आप मुनिको अपनी पुत्री देकर समस्त सम्पदाओंकी रक्षा कीजिये; अन्यथा राजकन्याके कारण सारी सम्पत्ति नष्ट हो जायगी। शरणागतके सिवा दूसरे किसी भी एक मनुष्यका त्याग करके सर्वस्वकी रक्षा की जा सकती है।'

पण्डितजीकी बात सुनकर राजाने बारंबार विलापके पश्चात् राजकन्याको वस्त्राभूषणोंसे अलंकृत करके मुनीन्द्रके हाथमें दे दिया। प्राणवल्लभाको पाकर मुनि प्रसन्नतापूर्वक अपने आश्रमको लौट गये। राजा भी शोकके कारण सबका त्याग करके तपस्याके लिये चले गये। पति और पुत्रीके शोकसे सुन्दरी महारानीने अपने प्राणोंको त्याग दिया। राजाके बिना उनके पुत्र, पौत्र और भृत्यगण शोकसे अचेत हो गये। राजा अनरण्य गोलोकनाथ राधावल्लभका चिन्तन और सेवन करते हुए तप करके गोलोकधामको चले गये। उनका ज्येष्ठ पुत्र कीर्तिमान् राजा हुआ। वह भूतलपर समस्त प्रजाका पुत्रकी भाँति पालन करने लगा। (अध्याय ४१)

अनरण्यकी पुत्री पद्माकी धर्मद्वारा परीक्षा, सती पद्माका उनको शाप देना तथा उस शापसे उनकी रक्षाकी भी व्यवस्था करना, वसिष्ठजीका हिमवान्‌को संक्षेपसे सतीके देह-त्यागका प्रसङ्ग सुनाना

वसिष्ठजी कहते हैं—गिरिराज! जैसे लक्ष्मी नारायणकी सेवा करती हैं, उसी प्रकार अनरण्यकी कन्या पद्मा मन, वाणी और क्रियाद्वारा भक्तिभावसे पिप्पलादमुनिकी सेवा करने लगी। एक दिन वह सती राजकुमारी स्नान करनेके लिये गङ्गाजीके तटपर गयी। मार्गमें राजाका वेष धारण किये हुए साक्षात् धर्मने उसके मनके भावोंको जाननेके लिये पवित्र भावनासे ही कामी पुरुषकी भाँति कुछ बातें कहीं। उन्हें सुनकर पद्मा बोली—'ओ पापिष्ठ नृपाधम! दूर चला जा, दूर चला जा। यदि तू मेरी ओर कामदृष्टिसे देखेगा तो तत्काल भस्म हो जायगा। जिनका शरीर तपस्यासे परम पवित्र हो गया है; उन मुनिश्रेष्ठ पिप्पलादको छोड़कर क्या मैं तेरे-जैसे स्त्रीके गुलाम तथा रति-लम्पटकी सेवा स्वीकार करूँगी? मैं तेरे लिये माताके समान हूँ तो भी तू भोग्या स्त्रीका भाव लेकर मुझसे बात कर रहा है। इसलिये मैं शाप देती हूँ कि कालक्रमसे तेरा क्षय हो जायगा।'

सतीका शाप सुनकर देवेश्वर धर्म काँपने लगे और राजाका रूप छोड़ अपनी मूर्ति धारण करके उससे बोले।

धर्मने कहा—मातः! आप मुझे धर्मज्ञोंके गुरुका भी गुरु धर्म समझिये। पतिव्रते! मैं सदा परायी स्त्रीके प्रति माताका ही भाव रखता हूँ। मैं आपके आन्तरिक भावको समझनेके लिये ही आया था। यद्यपि आप-जैसी सतियोंका मन कैसा होता है, यह मैं जानता था; तथापि दैवसे प्रेरित होकर परीक्षा करनेके लिये चला आया। साध्वि! आपने जो मेरा दमन किया है, वह नीतिके विरुद्ध नहीं है; सर्वथा उचित ही है; क्योंकि कुमार्गपर चलनेवालोंके लिये दण्डका विधान साक्षात् परमेश्वर श्रीकृष्णने ही किया है। जो धर्मको भी स्वधर्मका ज्ञान कराने और कालकी भी कलना (गणना) तथा स्रष्टाकी भी सृष्टि करनेमें समर्थ हैं, उन भगवान् श्रीकृष्णको नमस्कार है। जो समयपर संहर्ताका भी संहार करनेकी शक्ति रखते हैं और अनायास ही स्रष्टाकी भी सृष्टि कर सकते हैं, उन भगवान् श्रीकृष्णको नमस्कार है। जो शत्रुको भी मित्र बना सकते हैं, कलहको भी उत्तम प्रेममें परिणत कर सकते हैं तथा सृष्टि और विनाशकी भी क्षमता रखते हैं; उन भगवान् श्रीकृष्णको नमस्कार है। जो सबको शाप, सुख, दुःख, वर, सम्पत्ति और विपत्ति भी देनेमें समर्थ हैं; उन भगवान् श्रीकृष्णको नमस्कार है। जिन्होंने प्रकृतिको प्रकट किया है, महाविष्णु तथा ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश्वर आदिको उत्पन्न किया है; उन भगवान् श्रीकृष्णको नमस्कार है। जिन्होंने दूधको श्वेत, जलको शीतल और अग्निको दाहिका शक्तिसे सम्पन्न बनाया है; उन भगवान् श्रीकृष्णको नमस्कार है। जो अत्यन्त तेजःपुञ्जसे प्रकट होते हैं, जिनकी मूर्ति तेजोमयी है तथा जो गुणोंसे श्रेष्ठ एवं निर्गुण हैं; उन भगवान् श्रीकृष्णको नमस्कार है और जो सर्वरूप, सर्वबीजस्वरूप, सबके अन्तरात्मा तथा समस्त जीवोंके लिये बन्धुस्वरूप हैं; उन भगवान् श्रीकृष्णको नमस्कार है।

यों कहकर जगद्गुरु धर्म पद्माके सामने खड़े हो गये। शैलराज! धर्मका परिचय पाकर वह साध्वी सहसा बोल उठी।

पद्माने कहा—भगवन्! क्या आप ही सबके समस्त कर्मोंके साक्षी, सबके भीतर रहनेवाले, सर्वात्मा, सर्वज्ञ तथा सर्वतत्त्ववेत्ता धर्म हैं? फिर मेरे मनको जाननेके लिये मुझ दासीकी विडम्बना क्यों करते हैं? धर्मदेव! आपके प्रति मैंने जो कुछ किया है, वह मेरा अपराध है। प्रभो! मैंने स्त्री-स्वभाववश आपको न जाननेके कारण क्रोधपूर्वक शाप दे दिया है। उस शापकी क्या व्यवस्था होगी; यही इस समय मेरा चिन्ताका विषय है। आकाश, सम्पूर्ण दिशाएँ और वायु भी यदि नष्ट हो जायँ तो भी पतिव्रताका शाप कभी नष्ट नहीं हो सकता*। मेरे शापसे यदि आप नष्ट हो जाते हैं तो सम्पूर्ण सृष्टिका ही नाश हो जायगा। यह सोचकर मैं किंकर्तव्यविमूढ़ हो रही हूँ; तथापि आपसे कहती हूँ। देवेश्वर! जैसे पूर्णिमाको चन्द्रमा पूर्ण होते हैं, उसी प्रकार सत्ययुगमें आप चारों चरणोंसे परिपूर्ण रहेंगे। उस युगमें सर्वत्र और सर्वदा दिन-रात आप विराजमान होंगे। किंतु भगवन्! त्रेतायुग आनेपर आपके एक चरणका नाश हो जायगा। प्रभो! द्वापरमें दो पैर क्षीण होंगे और कलियुगमें आपका तीसरा पैर भी नष्ट हो जायगा। कलिके अन्तमें आपका चौथा चरण भी छिप जायगा। फिर सत्ययुग आनेपर आप चारों चरणोंसे परिपूर्ण हो जायँगे। सत्ययुगमें आप सर्वव्यापी होंगे और उससे भिन्न युगोंमें भी कहीं-कहीं पूर्णरूपमें विद्यमान रहेंगे। प्रभो! जहाँ आपका स्थान या

*आकाशोऽसौ दिशः सर्वा यदि नश्यन्ति वायवः। तथापि साध्वीशापस्तु न नश्यति कदाचन॥ (४२। ३४)

आधार होगा, उसे बताती हूँ, सुनिये।

सम्पूर्ण वैष्णव, यति, ब्रह्मचारी, पतिव्रता स्त्री, ज्ञानी पुरुष, वानप्रस्थ, भिक्षु (संन्यासी), धर्मशील राजा, साधु-संत, श्रेष्ठ वैश्यजाति तथा सत्पुरुषोंके संसर्गमें रहनेवाले द्विज, सेवक, शूद्र—इन सबमें आप सदा पूर्णरूपसे विराजमान रहेंगे। युग-युगमें जहाँ भी पुण्यात्मा पुरुष होंगे, वे आपके आधार रहेंगे। पीपल, वट, बिल्व, तुलसी, चन्दन—इन वृक्षोंपर; दीक्षा, परीक्षा, शपथ, गोशाला और गोपद भूमियोंमें; विवाहमें, फूलोंमें, देववृक्षोंमें, देवालयोंमें, तीर्थोंमें तथा साधु पुरुषोंके गृहोंमें आपका सदा निवास होगा। वेद-वेदाङ्गोंके श्रवणकालमें, जलमें, सभाओंमें, श्रीकृष्णके नाम और गुणोंके कीर्तन, श्रवण तथा गानके स्थानोंमें; व्रत, पूजा, तप, न्याय, यज्ञ एवं साक्षीके स्थानोंमें; गोशालाओंमें तथा गौओंमें विद्यमान रहकर आप अपनेको पूर्णरूपसे प्रतिष्ठित देखेंगे। धर्म! उन स्थानोंमें आप क्षीण नहीं होंगे। इनसे भिन्न स्थानोंमें आपकी कृशता देखी जायगी। जो स्थान आपके लिये अगम्य हैं; उनका वर्णन सुनिये। सम्पूर्ण व्यभिचारिणियोंमें, नरघाती मनुष्योंके घरोंमें, नरहत्या करनेवाले नीच पुरुषोंमें, मूर्ख और दुष्टोंमें, देवता, गुरु, ब्राह्मण, इष्टदेव तथा पालनीय मनुष्योंके धनका अपहरण करनेवालोंमें; दुष्टों, धूर्तों और चोरोंमें, रति-स्थानोंमें; जूआ, मदिरापान और कलहके स्थानोंमें; शालग्राम, साधु, तीर्थ और पुराणोंसे रहित स्थलोंमें; डाकुओंके स्नेहमें, वाद-विवादमें, ताड़की छायामें, गर्वीले मनुष्योंमें, तलवारसे जीविका चलानेवाले तथा स्याहीसे जीवन-निर्वाह करनेवाले, देवालयोंमें पूजाकी वृत्तिसे जीनेवाले तथा ग्राम-पुरोहितोंमें; बैल जोतनेवालों, सुनारों और जीव-हिंसासे जीविका चलानेवालोंमें; भर्तृनिन्दित नारियों तथा नारीके वशमें रहनेवाले पुरुषोंमें; दीक्षा, संध्या तथा विष्णुभक्तिसे हीन द्विजोंमें; अपनी पुत्री तथा पत्नी बेचनेवालोंमें; शालग्राम और देवमूर्तियोंका विक्रय करनेवालोंमें; मित्रद्रोही, कृतघ्न, सत्यनाशक तथा विश्वासघातियोंमें; शरणागतकी रक्षासे दूर रहनेवालों तथा शरणमें आये हुए लोगोंका नाश करनेवालोंमें; सदा झूठ बोलनेवाले, सीमाका अपहरण करनेवाले, काम, क्रोध और लोभवश झूठी गवाही देनेवाले, पुण्यकर्महीन तथा पुण्यकर्मके विरोधी मनुष्योंमें आप नहीं रहेंगे। प्रभो! इन निन्दनीय स्थानोंमें रहनेका आपको अधिकार नहीं होगा। ऐसी व्यवस्था होनेसे मेरी बात भी सच्ची हो जायगी। तात! अब मैं पतिसेवाके लिये जाऊँगी। आप भी अपने घरको पधारिये।

ऐसी बातें कहनेवाली पद्माके वचन सुनकर ब्रह्मपुत्र श्रीमान् धर्मका मुखारविन्द प्रसन्नतासे खिल उठा। वे उस पतिव्रतासे अत्यन्त विनयपूर्वक बोले।

धर्मने कहा—मेरी रक्षा करनेवाली देवि! तुम धन्य हो। पतिपरायणा हो। तुम्हारा सदा ही कल्याण हो। मैं तुम्हें वर देता हूँ; ग्रहण करो। बेटी! तुम्हारे पति युवावस्थासे सम्पन्न तथा रतिकर्ममें समर्थ हों। साध्वि! वे रूपवान् और गुणवान् हों। उनका यौवन सदा ही स्थिर रहे। वत्से! तुम भी उत्तम ऐश्वर्यसे युक्त एवं स्थिरयौवना हो जाओ। तुम्हारे पति मार्कण्डेयके बाद दूसरे चिरंजीवी पुरुष हों। वे कुबेरसे भी धनी और इन्द्रसे भी बढ़कर ऐश्वर्यवान् हों। शिवके समान विष्णुभक्त तथा कपिलके बाद उन्हींकी श्रेणीके सिद्ध हों। तुम जीवनभर पतिके सौभाग्यसे सम्पन्न बनी रहो। साध्वि! तुम्हारे घर कुबेरके भवनसे भी अधिक सुन्दर हों। तुम अपने पतिसे भी अधिक गुणवान् और चिरंजीवी दस पुत्रोंकी माता बनोगी; इसमें संशय नहीं है।

शैलराज! यों कहकर धर्मराज चुपचाप खड़े हो गये। पद्मा उनकी परिक्रमा और प्रणाम करके अपने घरको चली गयी। धर्म भी उसे आशीर्वाद दे अपने धामको गये और प्रत्येक सभामें

पतिव्रताकी प्रशंसा करने लगे। पद्मा अपने तरुण पतिके साथ सदा एकान्तमें मिलन-सुखका अनुभव करने लगी। पीछे उसके दस श्रेष्ठ पुत्र हुए जो उसके पतिसे भी अधिक गुणवान् थे। गिरिराज! इस प्रकार मैंने सारा पुरातन इतिहास कह सुनाया। अनरण्यने अपनी पुत्री देकर समस्त सम्पत्तिकी रक्षा कर ली। तुम भी सबके ईश्वर भगवान् शिवको अपनी कन्या देकर अपने समस्त बन्धुओं तथा सम्पूर्ण सम्पत्तिकी रक्षा करो। शैलराज! एक सप्ताह बीतनेपर अत्यन्त दुर्लभ शुभ क्षणमें, जब चन्द्रमा लग्नेश होकर लग्नमें अपने पुत्र बुधके साथ विराजमान होंगे; रोहिणीका संयोग पाकर प्रसन्नताका अनुभव करते होंगे; चन्द्र और तारा सर्वथा शुद्ध होंगे; मार्गशीर्ष मासका सोमवार होगा; लग्न सब प्रकारके दोषोंसे रहित, समस्त शुभग्रहोंकी दृष्टिसे लक्षित और असत् ग्रहोंसे शून्य होगा; उत्तम संतानप्रद, पतिसौभाग्यदायक, वैधव्यनिवारक, जन्म-जन्ममें सुख प्रदान करनेवाला तथा प्रेमका कभी विच्छेद न होने देनेवाला अत्यन्त श्रेष्ठतम योग उपस्थित होगा; उस समय तुम अपनी पुत्री मूलप्रकृति ईश्वरी जगदम्बाको जगत्पिता महादेवजीके हाथमें देकर कृतकृत्य हो जाओ।

गिरिराज! कल्पान्तरकी बात है; वह मूलप्रकृति ईश्वरी भगवान् श्रीकृष्णकी आज्ञासे दक्षकन्या सतीके रूपमें आविर्भूत हुई। दक्षने उस देवीको विधि-विधानके साथ शूलपाणि शिवके हाथमें दे दिया। तदनन्तर मेरे पिताके यज्ञमें, जहाँ समस्त देवताओंकी सभा जुड़ी हुई थी, दक्षका उन शूलपाणि महादेवजीके साथ सहसा महान् कलह हो गया। उस कलहसे रुष्ट हो त्रिनेत्रधारी शिव ब्रह्माजीको नमस्कार करके चले गये। दक्षके मनमें भी रोष था; अतः वे भी अपने गणोंके साथ उसी क्षण अपने घरको चल दिये। घर जाकर दक्षने रोषपूर्वक ही यज्ञकी सामग्री एकत्र की और उसके द्वारा महान् यज्ञका आयोजन किया। उस यज्ञमें उन्होंने द्वेषवश शूलपाणि शंकरको भाग नहीं दिया। यह देख सतीके मनमें पिताके प्रति बड़ा क्रोध हुआ। उसकी आँखें लाल हो गयीं। उसने व्यथित-हृदयसे पिताको बहुत फटकारा और यज्ञस्थानसे उठकर वह माताके पास गयी। उस परात्परा देवीको तीनों कालोंका ज्ञान था; अतः उसने भविष्यमें घटित होनेवाली घटनाका वहाँ वर्णन किया। यज्ञका विध्वंस, पिता दक्षका पराभव, यज्ञस्थानसे देवताओं, मुनियों, ऋत्विजों तथा पर्वतोंका पलायन, शंकरके सैनिकोंकी विजय, अपनी मृत्यु, पत्नीके विरहसे आतुर-चित्त होकर शोकवश पतिका पर्यटन, उनके नेत्रोंके जलसे सरोवरका निर्माण, भगवान् जनार्दनके समझानेसे उनका धैर्य धारण करना, दूसरे शरीरसे पुनः शिवकी प्राप्ति, उनके साथ विहार तथा अन्य सब भावी वृत्तान्त बताकर सती माता और बहनोंके मना करनेपर भी दुःखी हो घरसे चली गयी। वह सिद्धयोगिनी थी। अतः योगबलसे सबकी दृष्टिसे ओझल हो गयी। गङ्गाजीके तटपर जाकर शंकरके ध्यान और पूजनके पश्चात् उनके चरणारविन्दोंका चिन्तन करती हुई सुन्दरी सतीने शरीरको त्याग दिया और गन्धमादन पर्वतकी गुफामें विद्यमान उस दिव्य विग्रहमें प्रवेश किया, जिसके द्वारा उसने पूर्वकालमें दैत्योंके समस्त कुलका संहार किया था। वह घटना देख सब देवता अत्यन्त विस्मित हो हाहाकार कर उठे। शंकरके सैनिक दक्ष-यज्ञका विनाश तथा सबका पराभव करके शोकसे व्याकुल हो लौट गये और शीघ्र ही सारा वृत्तान्त अपने स्वामीसे कह सुनाया। वह समाचार सुनकर समस्त रुद्रगणोंसे घिरे हुए संहारकारी महेश्वर गङ्गाजीके उस तटपर गये, जहाँ देवी सतीका शरीर पड़ा था।

(अध्याय ४२)

शिवका सतीके शवको लेकर शोकवश समस्त लोकोंमें भ्रमण, भगवान् विष्णुका उन्हें समझाना और प्रकृतिकी स्तुतिके लिये कहना, शिवद्वारा की हुई स्तुतिसे संतुष्ट हुई प्रकृतिरूपिणी सतीका शिवको दर्शन एवं सान्त्वना देना

श्रीनारायण कहते हैं—नारद! तदनन्तर महादेवजीने गङ्गाजीके तटपर सोयी हुई दुर्गास्वरूपा सतीकी मनोहर मूर्ति देखी, जिसके मुखारविन्दकी कान्ति अभी मलिन नहीं हुई थी। वह शरीरपर श्वेत वस्त्र धारण किये और हाथमें अक्षमाला लिये दिव्य तेजसे प्रकाशित हो रही थी। उसके अङ्गोंसे तपाये हुए सुवर्णकी-सी कमनीय कान्ति फैल रही थी। सतीके उस प्राणहीन शरीरको देखकर भगवान् शिव विरहकी आगसे जलने लगे। वे मूर्तिमान् तत्त्वराशि होनेपर भी सतीके वियोगमें कभी मूर्च्छित, कभी चेतन होते हुए भाँति-भाँतिसे विलाप करने लगे। तदनन्तर उनके स्वर्णप्रतिम मृत देहको वक्षपर धारण करके सप्तद्वीप, लोकालोक पर्वत तथा सप्तसिन्धुमें भ्रमण करते हुए भारतमें शतशृङ्ग-गिरिके पास जम्बूद्वीपमें निर्जन प्रदेशस्थ अक्षयवटके नीचे नदीतीरपर पहुँचे। वहाँसे महायोगी शंकर विरहाकुलचित्त होकर पूरे एक वर्षतक पृथ्वीपर परिभ्रमण करते रहे। सती देवीके उस मृत देहके अङ्ग-प्रत्यङ्ग जिस-जिस स्थानपर गिरे, वे स्थान कामनाप्रद सिद्धपीठ हो गये। तदनन्तर शंकरने सतीके अवशिष्ट अङ्गोंका संस्कार किया। अस्थियोंकी माला गूँथकर उसे अपना कण्ठभूषण बना लिया और प्रतिदिन सतीका शरीर-भस्म अपने शरीरपर लगाने लगे। इसके बाद वे निश्चेष्ट-से होकर एक वटमूलमें पड़ गये। तब लक्ष्मीपूजित भगवान् नारायण अपने पार्षदों, देवताओं और ऋषि-मुनियोंके साथ वहाँ पधारकर श्रीशंकरको गोदमें लेकर उन्हें समझाने लगे।

श्रीभगवान्‌ने कहा—स्वात्माराम शिव! मेरी बात सुनो और उसपर ध्यान दो। वह हितकारक, अध्यात्मज्ञानका सार, दुःख-शोकका नाश करनेवाली तथा सम्पूर्ण अध्यात्मज्ञानका विद्यमान बीज है। यद्यपि तुम स्वयं ज्ञानकी निधि, विधि, सर्वज्ञ तथा स्रष्टाओंके भी स्रष्टा हो, तथापि मैं तुम्हें ज्ञानका उपदेश दे रहा हूँ। प्राण-संकटके समय विद्वान् पुरुष विद्वान्‌को भी समझा सकता है। लोकमें यह व्यवहार है कि सब लोग सबको परस्पर समझाते-बुझाते हैं। शम्भो! महेश्वर! दुर्दिनमें दुःख, शोक और भयकी प्राप्ति होती है। जब दुर्दिन बीत जाता और सुदिन आ जाता है, तब उनकी प्राप्ति कैसे हो सकती है? उस समय तो हर्ष और ऐश्वर्यविषयक दर्पकी ही निरन्तर वृद्धि होती है; परंतु विद्वान् पुरुष इन सबको स्वप्नकी भाँति मिथ्या समझते हैं। महादेव! तुम ज्ञानकी उत्पत्तिके कारण तथा सनातन हो। ज्ञान प्राप्त करो—अपने स्वरूपका स्मरण करो। तुम्हारा कल्याण हो, तुम सचेत होओ—होशमें आओ। निश्चय ही तुम्हें सतीकी प्राप्ति होगी। जैसे शीतलता जलको, दाहिका शक्ति अग्निको, तेज सूर्यको तथा गन्ध पृथ्वीको कभी नहीं छोड़ती है; उसी तरह सती तुम्हें छोड़कर अलग नहीं रह सकती है।

सनातन ज्ञानानन्दस्वरूप ज्ञाननिधे शंकर! मैं जो कहता हूँ, उसे सुनो। तुम परात्पर परमेश्वर हो, परंतु शोकवश अपने-आपको भूल गये हो। प्रत्येक जगत्‌में तथा जन्म-जन्ममें सुदिन और दुर्दिनका चक्र निरन्तर चला करता है। वे सुदिन और दुर्दिन ही समस्त प्राकृत प्राणियोंके लिये सुख-दुःखकी प्राप्तिके मुख्य कारण होते हैं। सुखसे हर्ष, दर्प, शौर्य, प्रमाद, राग, ऐश्वर्यकी अभिलाषा और विद्वेष निरन्तर प्रकट होते रहते

हैं। दुःख, शोक और उद्वेगसे सदा भयकी प्राप्ति होती है। महेश्वर! यदि इनके बीज नष्ट हो जायँ तो ये सब स्वतः नष्ट हो जाते हैं। चञ्चल मन ही पुण्य और पापका बीज है। शम्भो! सम्पूर्ण इन्द्रियोंसहित मन मेरा अंश है। सबका जनक जो अहंकार है, उसके अधिष्ठाता चेतन तुम हो और ये ब्रह्मा बुद्धिके अधिष्ठाता हैं। परब्रह्म परमात्मा एक हैं। गुण-भेदसे ही सदा उसके भिन्न-भिन्न रूप होते हैं। वह ब्रह्मतत्त्व एक होनेपर भी अनेक प्रकारका है। शिव! वह सगुण भी है और निर्गुण भी। जो मायारूप उपाधिका आश्रय लेता है, वह सगुण और जो मायातीत है, वह निर्गुण कहलाता है। भगवान् स्वेच्छामय हैं। वे अपनी इच्छासे ही विविध रूपोंमें प्रकट होते हैं। उनकी इच्छाशक्तिका ही नाम प्रकृति है। वह नित्यस्वरूपा और सदा सबकी जननी है। कुछ लोग ज्योतिःस्वरूप सनातन ब्रह्मको एक ही बताते हैं तथा कुछ दूसरे विद्वान् उसे प्रकृतिसे युक्त होनेके कारण द्विविध कहते हैं। जो एक बताते हैं, उनका मत सुनो। ब्रह्म माया तथा जीवात्मा दोनोंसे परे है। उस ब्रह्मसे ही वे दोनों (माया और जीवात्मा) प्रकट होते हैं; अतः ब्रह्म ही सबका कारण है। वह परब्रह्म एक होकर भी स्वेच्छासे दो हो जाता है। उसकी इच्छाशक्ति ही प्रकृति है, जो सदा सम्पूर्ण शक्तियोंकी जननी होती है। उससे संयुक्त होनेके कारण वे परमात्मा 'सगुण' कहे जाते हैं। वे ही सबके आधार, सनातन, सर्वेश्वर, सर्वसाक्षी तथा सर्वत्र फलदाता होते हैं। शम्भो! शरीर भी दो प्रकारका होता है—एक नित्य और दूसरा प्राकृत। नित्य शरीरका विनाश नहीं होता; परंतु प्राकृत शरीर सदा नश्वर होता है। भगवन्! हम दोनोंके शरीर नित्य हैं। हमारे अंशभूत जो अन्य जीव हैं, उनके शरीर त्रिगुणात्मिका प्रकृतिसे उत्पन्न होनेके कारण प्राकृत कहलाते हैं। प्राकृत शरीर सदा ही विनाशशील हैं। रुद्र आदि तुम्हारे अंश हैं और विष्णुरूपधारी मेरे अंश। मेरे भी दो रूप हैं—द्विभुज और चतुर्भुज। चतुर्भुज मैं हूँ और वैकुण्ठधाममें लक्ष्मी तथा पार्षदोंके साथ रहता हूँ। द्विभुजरूपसे मैं श्रीकृष्ण कहलाता हूँ और गोलोकमें गोपियों तथा राधाके साथ निवास करता हूँ।

जो ब्रह्मको द्विविध बताते हैं, उनके मतमें दो प्रधान तत्त्व हैं—नित्य पुरुष तथा नित्या प्रकृति ईश्वरी। शिव! वे दोनों सदा परस्पर संयुक्त रहते हैं। वे ही सबके माता-पिता हैं। वे दोनों अपनी इच्छाके अनुसार कभी साकार और कभी निराकार होते हैं। दोनों ही सर्वस्वरूप हैं। जैसे पुरुषकी नित्य प्रधानता है, उसी तरह प्रकृतिकी भी है। शम्भो! यदि तुम सतीको पाना चाहते हो तो प्रकृतिका स्तवन करो। तुमने पूर्वकालमें दुर्वासाको प्रसन्नतापूर्वक जिस स्तोत्रका उपदेश दिया था, वह दिव्य है और उसका कण्वशाखामें वर्णन किया गया है। तुम उसीके द्वारा जगदम्बाकी आराधना करो। शिव! मेरे आशीर्वादसे तुम्हारे शोकका नाश हो। तुम्हें कल्याणकी प्राप्ति हो और तुम्हारे लिये विप्लवका कारण बना हुआ पत्नीके वियोगका यह रोग दूर हो जाय।

गिरिराज! ऐसा कहकर लक्ष्मीपति भगवान् विष्णु चुप हो गये। तदनन्तर महेश्वरने प्रकृतिके स्तवनका कार्य आरम्भ किया। उन्होंने स्नान करके श्रीकृष्ण और ब्रह्माको भक्तिपूर्वक हाथ जोड़ नमस्कार किया। उस समय उनका अङ्ग-अङ्ग पुलकित हो उठा था।

महेश्वर बोले—'ॐ नमः प्रकृत्यै'

ॐ (सच्चिदानन्दमयी) प्रकृतिदेवीको नमस्कार है।

ब्राह्मि! तुम ब्रह्मस्वरूपिणी हो। सनातनि!

परमात्मस्वरूपे! परमानन्दरूपिणि! तुम मुझपर प्रसन्न हो जाओ। भद्रे! तुम भद्र अर्थात् कल्याण प्रदान करनेवाली हो। दुर्गे! तुम दुर्गम संकटका निवारण तथा दुर्गतिका नाश करनेवाली हो। भवसागरसे पार उतारनेके लिये नूतन एवं सुदृढ़ नौकास्वरूपिणी देवि! मुझपर कृपा करो। सर्वस्वरूपे! सर्वेश्वरि! सर्वबीजस्वरूपिणि! सर्वाधारे! सर्वविद्ये! विजयप्रदे! मुझपर प्रसन्न होओ। सर्वमङ्गले! तुम सर्वमङ्गलरूपा, सभी मङ्गलोंको देनेवाली तथा सम्पूर्ण मङ्गलोंकी आधारभूता हो; मेरे ऊपर कृपा करो। भक्तवत्सले! तुम निद्रा, तन्द्रा, क्षमा, श्रद्धा, तुष्टि, पुष्टि, लज्जा, मेधा और बुद्धिरूपा हो; मुझपर प्रसन्न होओ। वेदमातः! तुम वेदस्वरूपा, वेदोंका कारण, वेदोंका ज्ञान देनेवाली और सम्पूर्ण वेदाङ्ग-स्वरूपिणी हो; मेरे ऊपर कृपा करो। जगदम्बिके! तुम दया, जया, महामाया, क्षमाशील, शान्त, सबका अन्त करनेवाली तथा क्षुधा-पिपासारूपिणी हो; मुझपर प्रसन्न होओ। विष्णुमाये! तुम नारायणकी गोदमें लक्ष्मी, ब्रह्माके वक्षः-स्थलमें सरस्वती और मेरी गोदमें महामाया हो; मेरे ऊपर कृपा करो। दीनवत्सले! तुम कला, दिशा, दिन तथा रात्रिस्वरूपा एवं कर्मोंके परिणाम (फल)-को देनेवाली हो; मुझपर प्रसन्न होओ। राधिके! तुम सभी शक्तियोंका कारण, श्रीकृष्णके हृदयमन्दिरमें निवास करनेवाली, श्रीकृष्णकी प्राणोंसे भी अधिक प्रिया तथा श्रीकृष्णसे पूजित हो। मेरे ऊपर कृपा करो। देवि! तुम यशःस्वरूपा, सभी यशकी कारणभूता, यश देनेवाली, सम्पूर्ण देवीस्वरूपा और अखिल नारीरूपकी सृष्टि करनेवाली हो। शुभे! तुम अपनी कलाके अंशमात्रसे सम्पूर्ण कामिनियोंका रूप धारण करनेवाली, सर्वसम्पत्स्वरूपा तथा समस्त सम्पत्तिको देनेवाली हो; मुझपर प्रसन्न होओ। देवि! तुम परमानन्दस्वरूपा, सम्पूर्ण सम्पत्तियोंका कारण, यशस्वियोंसे पूजित और यशकी निधि हो; मेरे ऊपर कृपा करो। देवि! तुम समस्त जगत् एवं रत्नोंकी आधारभूता वसुन्धरा हो, चर और अचरस्वरूपा हो; मुझपर शीघ्र ही प्रसन्न होओ। सिद्धयोगिनि! तुम योगस्वरूपा, योगियोंकी स्वामिनी, योगको देनेवाली, योगकी कारणभूता, योगकी अधिष्ठात्री देवी और देवियोंकी ईश्वरी हो; मेरे ऊपर कृपा करो। सिद्धेश्वरि! तुम सम्पूर्ण सिद्धिस्वरूपा, समस्त सिद्धियोंको देनेवाली तथा सभी सिद्धियोंका कारण हो; मुझपर प्रसन्न होओ। महेश्वरि! विभिन्न मतोंके अनुसार जो समस्त शास्त्रोंका व्याख्यान है, उसका तात्पर्य तुम्हीं हो। ज्ञानस्वरूपे परमेश्वरि! मैंने जो कुछ अनुचित कहा हो, वह सब तुम क्षमा करो। कुछ विद्वान् प्रकृतिकी प्रधानता बतलाते हैं और कुछ पुरुषकी। कुछ विद्वान् इन दो प्रकारके मतोंमें व्याख्याभेदको ही कारण मानते हैं। पहले प्रलयकालमें एकार्णवके जलमें शयन करनेवाले महाविष्णुके नाभिदेशसे प्रकट हुए कमलपर, उसीसे उत्पन्न हुए जो ब्रह्माजी बैठे थे, उन्हें महादैत्य मधु और कैटभ खेल-खेलमें ही मारनेको उद्यत हो गये। तब ब्रह्माजी अपनी रक्षाके लिये तुम्हारी स्तुति करने लगे। उन्हें स्तुति करते देख तुमने उन दोनों महादैत्योंके विनाशके लिये जलशायी महाविष्णुको जगा दिया। तब नारायणने तुम शक्तिकी सहायतासे उन दोनों महादैत्योंको मार डाला। ये भगवान् तुम्हारा सहयोग पाकर ही सब कुछ करनेमें समर्थ हैं। तुम्हारे बिना शक्तिहीन होनेके कारण ये कुछ भी नहीं कर सकते। सुरेश्वरि! पूर्वकालमें त्रिपुरोंसे संग्राम करते समय जब मैं आकाशसे नीचे गिर पड़ा, तब तुमने ही विष्णुके साथ आकर मेरी रक्षा की थी। ईश्वरि! इस समय मैं विरहाग्निसे जल रहा हूँ; तुम मेरी रक्षा करो। परमेश्वरि! अपने दर्शनके पुण्यसे मुझे क्रीत दास बना लो।

यह कहकर शम्भु मौन हो गये। तब उन्होंने आकाशमें विराजमान उस देवी प्रकृतिको प्रसन्नता-पूर्वक देखा, जो रत्नसारनिर्मित रथपर बैठी थीं। उनके सौ भुजाएँ थीं। उनकी अङ्गकान्ति तपाये हुए स्वर्णके समान देदीप्यमान थी। वे रत्नमय आभूषणोंसे विभूषित थीं और उनके प्रसन्न-मुखपर मन्द हासकी छटा छा रही थी। उन जगन्माता सतीको देखकर विरहासक्त शंकरने पुनः शीघ्र ही उनकी स्तुति की और रोते हुए अपने विरहजनित दुःखको निवेदन किया। तदनन्तर उन्होंने सतीकी अस्थियोंसे बनी हुई अपनी माला उन्हें दिखायी और उनके शरीरजनित

भस्मको, जो शिवने अपने अङ्गोंका भूषण बना रखा था; उसकी ओर भी उनकी दृष्टि आकर्षित की। फिर अनेक प्रकारसे मनुहार करके उन्होंने सुन्दरी सतीको संतुष्ट किया। उस समय नारायण, ब्रह्मा, धर्म, शेषनाग, देवता और ऋषियोंने भी 'हे ईश्वरि! शिवकी रक्षा करो' ऐसा कहकर उन देवीका स्तवन किया। उन सबके स्तवनसे वे देवी तत्काल प्रसन्न हो गयीं तथा शिवकी उन प्राणवल्लभाने प्राणेश्वर शम्भुसे कृपापूर्वक कहा।

प्रकृति बोलीं—महादेव! आप धैर्य धारण करें। प्रभो! आप मेरे लिये प्राणोंसे भी बढ़कर प्रिय हैं। योगीश्वर! आप ही आत्मा तथा जन्म-जन्ममें मेरे स्वामी हैं। महेश्वर! मैं पर्वतराज हिमालयकी भार्या मेनकाके गर्भसे जन्म लेकर आपकी पत्नी बनूँगी; अतः आप इस विरह-ज्वरको त्याग दीजिये।

यों कह तथा शिवको आश्वासन दे वे अन्तर्धान हो गयीं और देवता भी उन्हें सान्त्वना देकर चले गये। उस समय लज्जासे भगवान् शिवका मस्तक झुका हुआ था। उनका चित्त हर्षसे उत्फुल्ल हो रहा था। वे कैलास पर्वतपर चले गये और शीघ्र ही विरहज्वरको त्यागकर अपने गणोंके साथ प्रसन्नतासे नाचने लगे।

जो मनुष्य शिवद्वारा किये गये इस प्रकृतिके स्तोत्रका पाठ करता है, उसका प्रत्येक जन्ममें अपनी पत्नीसे कभी वियोग नहीं होता। इहलोकमें सुख भोगकर वह शिवलोकमें चला जाता है तथा धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष—चारों पुरुषार्थोंको प्राप्त कर लेता है; इसमें संशय नहीं है। (अध्याय ४३)

पार्वतीके विवाहकी तैयारी, हिमवान्‌के द्वारपर दूलह शिवके साथ बारातमें विष्णु आदि देवताओंका आगमन, हिमालयद्वारा उनका सत्कार, वरको देखनेके लिये स्त्रियोंका आगमन, वरके अलौकिक रूप-सौन्दर्यको देख मेनाका प्रसन्न होना, स्त्रियोंद्वारा दुर्गाके सौभाग्यकी सराहना, दुर्गाका रूप, दम्पतिका एक-दूसरेकी ओर देखना, गिरिराजद्वारा दहेजके साथ शिवके हाथमें कन्याका दान तथा शिवका स्तवन

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—वसिष्ठजीके पूर्वोक्त वचनको सुनकर सेवकगणों तथा पत्नीसहित हिमालयको बड़ा विस्मय हुआ; किंतु स्वयं पार्वती मन-ही-मन हँस रही थी। अरुन्धतीने भी उन मेनादेवीको, जो शोकसे कातर हो खाना-पीना छोड़कर रो रही थीं; समझाया। तब उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक शोकका त्याग कर दिया तथा अरुन्धतीको उत्तम भोजन कराकर स्वयं भी भोजन किया। इसके बाद वे प्रसन्न-चित्तसे समस्त मङ्गलकार्योंका सम्पादन करने लगीं। प्रिये! तदनन्तर वसिष्ठजीकी आज्ञासे हिमालयने वैवाहिक सामग्री एकत्रित की और बड़ी उतावलीके साथ विभिन्न स्थानोंमें निमन्त्रणपत्र भेजवाया। तत्पश्चात् उन्होंने शिवके पास मङ्गलपत्रिका पठवायी। इसके बाद शैलराजने विवाहके लिये भोज्यपदार्थ, मिष्टान्न, दिव्य वस्त्र तथा स्वर्ण-रत्न आदिका अपार संग्रह किया। पार्वतीको स्नान करवाकर वस्त्राभूषणोंसे अलंकृत किया गया। उसके नेत्रोंमें काजल और पैरोंमें महावर लगाया गया। इधर देवेश्वरगण विविध वाहनोंपर सवार हो रत्नमय रथपर आरूढ़ हुए भगवान् शंकरको साथ लिये हिमालय-भवनके समीप पहुँचे। वहाँ भाँति-भाँतिसे सबका स्वागत-सत्कार किया गया। देवेश्वरोंको सामने देख हिमालयने उन्हें प्रणाम किया और सेवकोंको आज्ञा दी कि 'इन सम्माननीय अतिथियोंके लिये सिंहासन प्रस्तुत किये जायँ।' तत्पश्चात् विनतानन्दन गरुड़की पीठसे तत्काल ही उतरकर चार-भुजाधारी भगवान् नारायण अपने पार्षदोंसहित सिंहासनपर बैठे। रत्नमय आभूषणोंसे विभूषित चतुर्भुज पार्षद रत्नमयी मुट्ठीमें बँधे हुए श्वेत चामरोंद्वारा उनकी सेवा कर रहे थे। उस समाजमें श्रेष्ठतम ऋषि और बड़े-बड़े देवता उनके गुण गा रहे थे। भगवान्‌का प्रसन्नमुख मन्द मुस्कानसे सुशोभित था और वे भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये कातर जान पड़ते थे। उनके पास ही देवताओंके साथ ब्रह्माजी भी बैठे। ऋषि और मुनि भी मङ्गलमय स्थानपर विराजमान हुए। इसी समय भगवान् शिव रथसे उतरकर रत्नमय सिंहासनपर बैठे। बैठकर उन्होंने पर्वतराज हिमालयकी ओर देखा। तत्पश्चात् भगवान् शिवको देखनेके लिये वस्त्राभूषणोंसे विभूषित हो शैलेन्द्र-नगरकी स्त्रियाँ आयीं। उनमें बालिकाएँ, युवतियाँ और वृद्धाएँ भी थीं। ऋषियों, देवों, नागों, गन्धर्वों, पर्वतों और राजाओंकी भी मनोहर कन्याएँ वहाँ आ पहुँचीं। मेनाने कुमारी कन्याओंके साथ दूलह शंकरका दर्शन किया। उनके श्रीअङ्गोंकी कान्ति मनोहर चम्पाके समान गौर थी। वे एक मुख तथा तीन नेत्रोंसे सुशोभित थे। उनके प्रसन्न-मुखपर मन्द मुस्कानकी छटा छा रही थी। वे रत्नमय आभूषणोंसे विभूषित थे। उनके अङ्ग चन्दन, अगुरु, कस्तूरी तथा सुन्दर कुंकुमसे

अलंकृत थे। उन्होंने मालतीकी माला धारण कर रखी थी। उनका मस्तक श्रेष्ठ रत्नमय मुकुटसे प्रकाशमान था। अग्निशोधित, अनुपम, अत्यन्त सूक्ष्म, सुन्दर, विचित्र और बहुमूल्य दो वस्त्रोंसे उनकी बड़ी शोभा हो रही थी। उन्होंने हाथमें रत्नमय दर्पण ले रखा था। अञ्जनसे अञ्जित होनेके कारण उनके नेत्रोंकी शोभा बढ़ गयी थी। पूर्ण प्रभासे आच्छादित होनेके कारण वे अत्यन्त मनोहर दिखायी देते थे। उनकी अवस्था अत्यन्त तरुण (नवीन) थी। वे भूषणभूषित रमणीय अङ्गोंसे बड़ी शोभा पा रहे थे। उस समय उन्होंने भगवान् नारायणकी आज्ञासे परम सुन्दर अनुपम रूप धारण कर रखा था। भगवान् शंकर योगस्वरूप, योगेश्वर, योगीन्द्रोंके गुरुके भी गुरु, स्वतन्त्र, गुणातीत तथा सनातन ब्रह्मज्योति हैं। वे गुणोंके भेदसे अनन्त भिन्न-भिन्न रूप धारण करते हैं, तथापि रूपरहित हैं। भवसागरमें डूबे हुए प्राणियोंका उद्धार करनेवाले हैं तथा जगत्की सृष्टि, पालन एवं संहारके कारण हैं। वे सर्वाधार, सर्वबीज, सर्वेश्वर, सर्वजीवन तथा सबके साक्षी हैं। उनमें किसी प्रकारकी इच्छा या चेष्टा नहीं है। वे परमानन्दस्वरूप, अविनाशी, आदि, अन्त और मध्यसे रहित, सबके आदिकारण तथा सर्वरूप हैं। ऐसे दिव्य जामाताको देखकर आनन्दमग्न हुई मेनाने शोकको त्याग दिया। 'सती धन्य है, धन्य है'—कहकर वहाँ आयी हुई युवतियोंने पार्वतीके सौभाग्यकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। कुछ कन्याएँ कहने लगीं—'अहो! दुर्गा बड़ी भाग्यशालिनी है।' कुछ कामिनियाँ कामभावसे युक्त हो मौन एवं स्तब्ध रह गयीं और कितनी ही बोल उठीं—'अरी सखी! हमने अपने जीवनमें ऐसा वर कभी नहीं देखा था।'

बाजे बजानेवालोंने भाँति-भाँतिकी कलाएँ दिखाते हुए वहाँ अनेक प्रकारके सुन्दर और मधुर वाद्य बजाये। इसी समय हिमवान्के अन्तःपुरकी परिचारिकाएँ दुर्गाको बाहर ले आयीं। वह रत्नमय सिंहासनपर बैठी थी। उसके सामने रत्नमयी वेदी शोभा पा रही थी। उसके मुख-मण्डलका कस्तूरी तथा स्निग्ध सिन्दूरके बिन्दुओंसे शृङ्गार किया गया था। चारु चन्दनसे चर्चित चन्द्रसदृश आभावाले आनम्र भालदेशसे उसकी बड़ी शोभा हो रही थी। श्रेष्ठ रत्नोंके सारसे निर्मित हार उसके वक्षःस्थलकी शोभा बढ़ा रहा था। वह त्रिलोचन शिवकी ओर कनखियोंसे देख रही थी। उनके सिवा और कहीं उसकी दृष्टि नहीं जाती थी। उसके मुखपर अत्यन्त मन्द मुस्कानकी आभा बिखरी हुई थी। वह कटाक्षपूर्वक देखनेके कारण बड़ी मनोहर जान पड़ती थी। उसकी भुजाएँ और हाथ रत्ननिर्मित केयूर, कड़े तथा कंगनसे विभूषित थे। उसके कटिप्रदेशमें रत्नोंकी बनी हुई करधनी शोभा दे रही थी। झनकारते हुए मञ्जीर चरणोंका सौन्दर्य बढ़ाते थे। वह बहुमूल्य, तुलनारहित, विचित्र एवं कीमती दो वस्त्रोंसे सुशोभित थी। उसके सुन्दर कपोल श्रेष्ठ रत्नमय कुण्डलोंसे जगमगा रहे थे। दन्तपङ्क्ति मणिके सारभागकी प्रभाको छीने लेती थी। वह एक हाथमें रत्नमय दर्पण लिये हुए थी और दूसरेमें क्रीडाकमल लेकर घुमा रही थी। उसके अङ्ग चन्दन, अगुरु, कस्तूरी और कुंकुमसे चर्चित थे। ऐसी अलौकिक रूपवाली जगत्की आदिकारणभूता जगदम्बाको सब लोगोंने प्रसन्नताके साथ देखा। हर्षसे युक्त भगवान् त्रिलोचनने भी नेत्रके कोनेसे पार्वतीकी ओर देखा। देखकर वे आनन्द-विभोर हो उठे। उसकी सम्पूर्ण आकृति सतीसे सर्वथा मिलती-

जुलती थी। उसे देखकर भगवान् शंकरने विरह-ज्वरका परित्याग कर दिया। उन्होंने अपना मन दुर्गाको अर्पित कर दिया और स्वयं सब कुछ भूल गये। उनके सारे अङ्ग पुलकित हो गये तथा नेत्रोंमें आनन्दके आँसू छलक आये।

इसी समय हर्षसे भरे हुए हिमवान्ने पुरोहितके साथ जाकर वस्त्र, चन्दन और आभूषणोंद्वारा उनका वरके रूपमें वरण किया। भक्तिभावसे पाद्य आदि उपचार अर्पित किये तथा दिव्य गन्धवाली मनोहर मालाओंसे दूलहको अलंकृत किया। तत्पश्चात् यथासम्भव शीघ्र वेदमन्त्रोंके उच्चारणपूर्वक उनके हाथमें अपनी कन्याका दान कर दिया। राधिके! तदनन्तर हर्षसे भरे हुए हिमालयने उदारतापूर्वक दहेजमें उन्हें अनेक प्रकारके रत्न, सुन्दर रत्नोंके बने हुए मनोहर पात्र, एक लाख गौ, रत्नजटित झूल और अंकुशसे युक्त एक सहस्र गजराज, सजे-सजाये तीन लाख घोड़े, श्रेष्ठ रत्नोंसे अलंकृत लाखों अनुरक्त दासियाँ, पार्वतीके लिये छोटे भाईके समान प्रिय एक सौ ब्राह्मण वटु और श्रेष्ठ रत्नोंके सारतत्त्वसे निर्मित सौ रमणीय रथ दिये। पूर्वोक्त वस्तुओंके साथ शैलराजद्वारा यत्नपूर्वक दी हुई पार्वतीको भगवान् शंकरने प्रसन्न-मनसे 'स्वस्ति' कहकर ग्रहण किया। हिमालयने कन्यादान करके भगवान् शंकरकी परिहार नामक स्तुति की। उन्होंने दोनों हाथ जोड़ माध्यन्दिन-शाखामें वर्णित स्तोत्रको पढ़ते हुए उनका स्तवन किया।

हिमालय बोले—सर्वेश्वर शिव! आप दक्ष-यज्ञका विध्वंस करनेवाले तथा शरणागतोंको नरकके समुद्रसे उबारनेवाले हैं, सबके आत्मस्वरूप हैं और आपका श्रीविग्रह परमानन्दमय है; आप मुझपर प्रसन्न हों; गुणवानोंमें श्रेष्ठ महाभाग शंकर! आप गुणोंके सागर होते हुए भी गुणातीत हैं; गुणोंसे युक्त, गुणोंके स्वामी और गुणोंके आदि कारण हैं; मेरे ऊपर प्रसन्न होइये। प्रभो! आप योगके आश्रय; योगरूप, योगके ज्ञाता, योगके कारण, योगीश्वर तथा योगियोंके आदिकारण और गुरु हैं; आप मेरे ऊपर कृपा करें। भव! आपमें ही सब प्राणियोंका लय होता है, इसलिये आप 'प्रलय' हैं। प्रलयके एकमात्र आदि तथा उसके कारण हैं। फिर प्रलयके अन्तमें सृष्टिके बीजरूप हैं और उस सृष्टिका पूर्णतः परिपालन करनेवाले हैं; मुझपर प्रसन्न होवें। भयंकर संहार-कालमें सृष्टिका संहार करनेवाले आप ही हैं। आपके वेगको रोकना किसीके लिये भी अत्यन्त कठिन है। आराधनाद्वारा आपको रिझा लेना भी सहज नहीं है तथापि आप भक्तोंपर शीघ्र ही प्रसन्न हो जाते हैं; प्रभो! आप मुझपर कृपा करें। आप कालस्वरूप, कालके स्वामी, कालानुसार फल देनेवाले, कालके एकमात्र आदिकारण तथा कालके नाशक एवं पोषक हैं; मुझपर प्रसन्न हों। आप कल्याणकी मूर्ति, कल्याणदाता तथा कल्याणके बीज और आश्रय हैं। आप ही कल्याणमय तथा कल्याणस्वरूप प्राण हैं; सबके परम आश्रय शिव! मुझपर कृपा करें।

इस प्रकार स्तुति कर हिमालय चुप हो गये, उस समय समस्त देवताओं और मुनियोंने गिरिराजके सौभाग्यकी सराहना की। राधिके! जो मनुष्य सावधान-चित्त होकर हिमालयद्वारा किये गये स्तोत्रका पाठ करता है, उसके लिये शिव निश्चय ही मनोवाञ्छित वस्तु प्रदान करते हैं।

(अध्याय ४४)